विवेक चूणामणि - हिंदी काव्य

मूल संस्कृत श्लोक सहित

(हिंदी भावार्थ के साथ)

हिंदी काव्यान्तरण

डॉ यतेंद्र शर्मा

मूल संस्कृत ग्रन्थ

आदिगुरु श्री भगवान् शंकराचार्य जी कृत विवेक चूणामणि

विवेक चूणामणि - हिंदी काव्य
मूल संस्कृत श्लोक सहित
(हिंदी भावार्थ के साथ)

हिंदी काव्यान्तरण
डॉ यतेंद्र शर्मा

मूल संस्कृत ग्रन्थ
आदिगुरु श्री भगवान् शंकराचार्य जी कृत विवेक चूणामणि

GIRI

GIRI TRADING AGENCIES

VIVEK CHUMAMANI -HINDI KAVYA
(HINDI)
ISBN:

Author: Dr. Yatendra Sharma

1st Edition: July 2025
Pages 226/ Demy 1/8 /N.S. Maplitho/ 1000 Copies

Published by: GIRI TRADING AGENCY PRIVATE LIMTED

© Author / All rights Reserved

Regd and Admin Office:
No. 372/1 Mangadu Pattur Koot Road
Mangadu, Chennai – 600 122
Telephone: 080-6979 8989
Email: publications@giri.in

www.giri.in / www.giriaus.com /www.giriuae.com

SHOWROOMS
Mumbai – Chennai -Kanchipuram – Coimbatore – Madurai – Hosur – Salem – Kumbakonam -Puducherry – Secundrabad – Bangalore – New Delhi -Pune

क्रमावली

अस्वीकरण 8
समर्पण 9
प्राक्कथन 10
प्रार्थना 13
१. स्तुति 16
२. ब्रह्मनिष्ठा महत्व 17
३. ज्ञान उपलब्धि का साधन 19
४. अधिकारिनिरुपण 21
५. चार साधन 22
६. गुरु भक्ति और प्रश्न विधि 27
७. उपदेश विधि 30
८. प्रश्न निरूपण 32
९. शिष्य प्रशंसा 33
१०. स्व-प्रयत्न की प्रधानता 34
११. आत्म-ज्ञान का महत्व 35
१२. अपरोक्षानुभव (प्रत्यक्ष ज्ञान) की आवश्यकता 37
१३. प्रश्न विचार 39
१४. स्थूल शरीर का वर्णन 41
१५. विषय निंदा 42
१६. देहासक्ति की निंदा 45
१७. स्थूल शरीर 46
१८. दस इन्द्रियां 48
१९. अन्तःकरणचतुष्टय 48
२०. पंचप्राण 49
२१. सूक्ष्म शरीर 49
२२. प्राण के धर्म 52
२३. अहंकार 52
२४. प्रेम की आत्मार्थता 53
२५. माया निरूपण 54

२६. रजोगुण 55
२७. तमोगुण 56
२८. सत्वगुण 58
२९. कारण शरीर 59
३०. अनात्म-निरूपण 60
३१. आत्म-निरूपण 61
३२. अध्यास 65
३३. आवरणशक्ति और विक्षेपणशक्ति 68
३४. बंध-निरूपण 69
३५. आत्मानात्म-विवेक 70
३६. अन्नमय कोष 72
३७. प्राणमय कोष 76
३८. मनोमय कोष 77
३९. विज्ञानमय कोष 83
४०. आत्मा की उपाधि से असंगता 84
४१. मुक्ति उपाय 86
४२. मुक्ति का उपाय -आत्मज्ञान 86
४३. आनंदमय कोष 91
४४. आत्म स्वरुप विषयक प्रश्न 93
४५. आत्म स्वरुप निरूपण 93
४६. ब्रह्म और विश्व की एकता 98
४७. ब्रह्म निरूपण 102
४८. महावाक्य विचार 103
४९. ब्रह्म भावना 106
५०. वासना त्याग 112
५१. अध्याय-निरास 116
५२. अहं पदार्थ निरूपण 121
५३. अहंकार निंदा 123
५४. क्रिया, चिंता और वासना का त्याग 127
५५. प्रमाद निंदा 130
५६. असत परिहार 133

५७. आत्मनिष्ठा का विधान 137
५८. अधिष्ठान निरूपण........ 141
५९. समाधि निरूपण 143
६०. वैराग्य निरूपण 150
६१. ध्यान-विधि 153
६२. आत्म-दृष्टि 155
६३. प्रपंचका बाध 160
६४. आत्म चिंतन का विधान 164
६५. दृश्य की उपेक्षा 166
६६. आत्मज्ञान का फल 168
६७. जीवन मुक्त के लक्ष्यण 171
६८. प्रारब्ध विचार 177
६९. नानात्व-निषेध 184
७०. आत्मानुभव का उपदेश 186
७१. बोधोपलब्धि 189
७२. उपदेश का उपसंहार 203
७३. शिष्य की विदाई 222
७४. अनुबंध चतुष्टय 223
७५. ग्रन्थ प्रशंसा 223
कवि: डॉ यतेंद्र शर्मा 226

अस्वीकरण

इस काव्य पुस्तक की सामग्री जनहित एवं सामान्य ज्ञान के लिए प्रदान की गई है। हमारा तद्भाव पाठक को कोई परामर्श देने का नहीं है| इस काव्य पुस्तक की सामग्री किसी भी तरह से विशिष्ट परामर्श का विकल्प नहीं है| आपको इस ज्ञान के आधार पर कोई भी निर्णय लेने से पहले प्रासंगिक निपुण या विशेषज्ञ का परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिए|

इस काव्य पुस्तक के रचयिता, प्रकाशक और उनका कोई प्रतिनिधि किसी भी विषय में इस काव्य पुस्तक से सम्बंधित कोई प्रत्याभूति नहीं लेते| इस काव्य पुस्तक का पठन-पाठन-गायन-श्रवण पाठक स्वयं के संज्ञान से दायित्व ले कर ही करें|

यद्यपि हमने इस काव्य पुस्तक में सटीक ज्ञान देने का पूर्ण प्रयास किया है लेकिन किसी भी प्रकार कोई त्रुटि अथवा अकृता रह गई हो तो उसके लिए रचयिता एवं प्रकाशक क्षमा प्रार्थी हैं और इसके परिणाम स्वरूप किसी विधि, सामाजिक, धार्मिक, इत्यादि का दायित्व नहीं लेते|

समर्पण

श्री रामनरायणन स्वर्णगिरीश्वरं

यथार्थ नाम श्री रामनरायणन स्वर्णगिरीश्वरम ।
हैं समाहित आपमें शक्ति राम और नारायन ।।
हैं आप निःसंदेह आर्षपुरुष प्राज्ञ विचक्षन ।
करो स्वीकार हमारा सादर यह पुस्तक समर्पन ।।
ज्ञानी ग्रन्थ वेद वेदांत पुराण सनातन दर्शन ।
धनी अतुलनीय वाक् पटुता और भाषा नियोजन ।।
किए समर्पित आप जीवन हेतु सेवा धर्म सनातन ।
करो स्वीकार आभार भक्तमय हमारा भद्र महन ।।
हैं आप भक्त शिव शंकर करते आदि गुरु अनुसरन ।
दें प्रभु आपको स्वास्थ्य कर सकें आप सेवा लौकिन ।।

प्राक्कथन

प्रोफ़ेसर डॉ पुष्पा रानी
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी - विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

भारतीय दार्शनिक चिंतन में अद्वैत वेदांत की स्थापना करने वाले आदि शंकराचार्य का स्थान भारतीय दार्शनिकों में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥

इस श्लोक के उद्घोष से आचार्य शंकर ने जीवमात्र के एकत्व: एवं ब्रह्म से उसके अभेद को स्थापित किया है। जगत एवं जागतिक व्यवहारों की व्यावहारिक सत्यता को स्वीकार करते हुए तथा सनातन धर्म की एकता और पुनरुद्धार के लिए 8वीं शताब्दी में भारत की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना का महान कार्य कर देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया जो निम्नवत् है - उत्तर में जोशीमठ , (बद्रीनाथ, उत्तराखण्ड), दक्षिण में श्रृंगेरी शारदा पीठ (कर्नाटक), पूर्व में गोवर्धन मठ (जगन्नाथपुरी,उड़ीसा), पश्चिम में द्वारका शारदा मठ (द्वारका,गुजरात)। आचार्य शंकर कृत 'विवेकचूड़ामणि' ग्रंथ अज्ञान से मुक्ति की यात्रा का मार्गदर्शक है।

यह विविध रुपात्मक जगत् एवं जगत् व्यवहार रज्जू सर्प भ्रम या स्वप्न के सदृश है। अंधेरे में दूर से जो रस्सी साँप दिख रही थी वही पर्याप्त प्रकाश में समीप से रस्सी दिखाई देती है।

ठीक ऐसे ही स्वप्न में दिखाई देने वाले दृश्य जाग्रतावस्था में समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार ज्ञान के उदय होने पर सम्पूर्ण नानरूपात्मक जगत् एवं जगत् व्यवहार का मिथ्यात्व सिद्ध हो जाता है तथा एकमात्र ब्रह्म की प्रतीति होती है तथा जीव एवं ब्रह्म

का एकत्व सिद्ध होता है। इसी बात को जन सामान्य तक पहुंचाने एवं इसका बोध कराने के लिए आदि शंकराचार्य जी ने 'विवेकचूड़ामणि' ग्रंथ का प्रणयन किया।

मनुष्य इस संसार में अपने आपको शरीर, इन्द्रियां और बुद्धि के साथ अभिन्न मानकर सुख - दुःख के अनगिनत अनुभवों से बंध जाता है, किन्तु यह बंधन वास्तविक नहीं है। इसे ही वास्तविक मान लेना अविद्या एवं इसकी वास्तविकता को जान लेना ही विद्या है।यही अविद्या एवं अज्ञान ही समस्त दोषों का कारण है।इस अज्ञान के नाश हेतु ज्ञान का प्रकाश आवश्यक है और वही ज्ञान इस ग्रंथ 'विवेकचूड़ामणि' का विषय है।'विवेक' अर्थात् नित्य एवं अनित्य का भेद जानने की क्षमता। एकमात्र ब्रह्म ही नित्य है इतर सब कुछ अनित्य है इसलिए विवेक को ज्ञान का चूड़ामणि (शिरोमणि) कहा गया है। यह ग्रंथ उसी विवेक को जागृत करने का एक साधन है। इसके लिए आदि शंकराचार्य जी ने साधक को साधन से सम्पन्न होकर योग्य गुरु के निर्देशन में श्रद्धापूर्वक ज्ञान ग्रहण करने की सलाह दी, तभी आत्म साक्षात्कार या ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है।

- **नित्यानित्य वस्तु विवेक** -नित्य एवं अनित्य के बीच अंतर करने की क्षमता।
- **इहामृतार्थ भोग विराग -** इहलोक़ एवं परलोक के भोगों के प्रति वैराग्य।
- **शमदमादि साधन सम्पन्न -** शम - मन का नियंत्रण, दम - इंद्रियों पर नियंत्रण, उपरति - सांसारिक विषयों से उदासीनता, तितिक्षा – सुख, दुःख को सहने की शक्ति, श्रद्धा - गुरु एवं शास्त्रों में अटूट विश्वास, समाधान - मन की एकाग्रता । इन छः आंतरिक गुणों का विकास।
- **मुमुक्षुत्व -** मोक्ष प्राप्ति की तीव्र इच्छा।

आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित यही आत्मसाक्षात्कार का मार्ग है जिससे अविद्या निवृत्ति स्वत: हो जाती है । आचार्य शंकराचार्य ने इसे सुलभ बनाने के लिए संस्कृत भाषा में 'विवेकचूड़ामणि' ग्रंथ का प्रणयन किया जो अद्वैत वेदांत का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

डॉ यतेन्द्र शर्मा जी ने 'विवेकचूड़ामणि' ग्रंथ का गवेषणात्मक अध्ययन किया है तथा इसे सर्वजन सुलभ बनाने के लिए अत्यंत सरल रूप में प्रस्तुत किया है जो अत्यंत

लाभदायक सिद्ध होगा। अपने समय में आचार्य शंकर जी की भी यही दृष्टि रही होगी परन्तु संस्कृत भाषा के लोक व्यवहार में कम व्यवहार एवं कम लोकप्रिय होने से यह कठिनाई उत्पन्न हुई जो मूल ग्रंथ को क्लिष्ट बना देती है तथा आमजन की समझ से यह दूर हो जाता है। डॉ यतेन्द्र शर्मा जी ने सरल हिन्दी में उन श्लोकों का अर्थ करने के साथ ही उन्हें हिन्दी पद्य रूप में भी रूपांतरित किया है जो निश्चय ही महान कार्य है और इस दृष्टि से तत्वज्ञान के आमजन तक प्रसार में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। विद्वान लेखक ने इस ग्रंथ के कठिन विषयों को भी सरलता से प्रस्तुत करके इसे जन सुलभ बना दिया है। भारतीय दर्शन के सिरमौर , अद्वैत वेदांत के सार को वैश्विक क्षितिज पर प्रसार एवं लोक व्यवहार की दृष्टि से यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा। मुझे विश्वास है कि इससे प्रेरित होकर भारतीय ज्ञान परंपरा के मौलिक वेदों, ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों एवं ज्योतिष वैदिक गणित आदि का भी लोकभाषा में अनुवाद एवं प्रसार बढ़ेगा जो पूरे विश्व के लिए कल्याणकारी एवं शांति स्थापित करने में सहायक होगा।

प्रोफ़ेसर डॉ पुष्पा रानी
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी - विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
मो. 9896206889
ईमेल : pushpa33966@gmail.com

प्रार्थना

मनुष्य शरीर की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। ८४ लाख योनियों में व्यथित दुःखित भ्रमण करते रहने के पश्चात संचित शुभ कर्म हेतु हमें मनुष्य योनि प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी श्री रामचरितमानस में कहते हैं:

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

भगवान् आदि गुरु शंकराचार्य जी भी कहते हैं:

है दुर्लभ जन्म मनुष्य तन। दुस्तर पुरुषत्व परिगमन।।
दुर्धर गृह ब्राह्मण जन्म। है कठिन पाएं ज्ञान ब्रह्म।।

प्रभु ने अनेक जन्मों के शुभ संचित कर्मों के फल स्वरुप हमें यह मनुष्य योनि प्रदान की है, अतः हमें मनुष्य जीवन प्राप्त कर इस जीवन के मुख्य लक्ष्य अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए, न कि विनाशी लौकिक सुख भोग हेतु।

यह ब्रह्म क्या है, इसको भगवान् आदिगुरु श्री शंकराचार्य जी ने अपनी पुस्तक 'विवेक चूणामणि' में भली भांति समझाया है। ब्रह्म (ईश्वर) के अस्तित्व और स्वरुप का विवेचन किया है। ब्रह्मसूत्र (उत्तर मीमांसा) के प्रथम सूत्र में भगवान् वेदव्यास के वचन 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (अर्थात ब्रह्म जानने की जिज्ञासा) के महत्व को समझाया है।

ब्रह्म के स्वरुप के बारे में द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि अनेक विचारधाराएँ हैं। 'अहम् ब्रह्मास्मि' या अद्वैत वेदांत इन्हीं में से एक है। जब पैर में कांटा चुभता है तब नेत्रों में जल भर आता है और हाथ कांटे को निकालने के लिए स्वतः ही तत्पर हो जाते हैं, यह अद्वैत का एक उत्तम उदाहरण है। 'विवेक चूणामणि' में भगवान् श्री शंकराचार्य ने इस अद्वैत वेदांत के सिद्धांत का सुलभ विवरण किया है।

भगवान् श्री शंकराचार्य जी कहते हैं कि इस दुर्लभ मांस शरीर को पाकर जो स्वार्थ साधन में प्रमाद करता है, उससे अधिक मूढ़ कौन होगा? उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भले

ही कोई प्राणी शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का यजन करे, नाना शुभ कर्म करे, पर जब तक उसे ब्रह्म और आत्मा में एकता का बोध नहीं होता तब तक उसे मनुष्य जीवन का लक्ष्य अर्थात मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मोक्ष न योग से सिद्ध होता है, न सांख्य से, न कर्म से और न विद्या से। वह केवल 'ब्रह्मात्मैक्य बोध' (अर्थात ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान) से ही होता है। जिस प्रकार वीणा का रूप, लावण्य तथा उसको बजाने का सुंदर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कोई साम्राज्य प्राप्ति नहीं हो जाती, उसी प्रकार विद्वानों की वाणी कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र व्याख्यान की कुशलता और विद्वता भोग का ही कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं। भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार औषधि को बिना पिए केवल औषधि शब्द के उच्चारण मात्र से रोग ठीक नहीं होता उसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल 'ब्रह्म ब्रह्म' कहने से कोई मोक्ष नहीं पा सकता।

भगवान् शंकराचार्य मोक्ष का प्रथम हेतु अनित्य वस्तुओं में अत्यंत वैराग्य, तदन्तर शम, दम, तितिक्षा और सम्पूर्ण आसक्ति युक्त कर्मों का सर्वथा त्याग, मुनियों के प्रवचन का श्रवण, मनन और चिरकाल तक नित्य निरंतर आत्म-तत्व का मनन बताते हैं।

भगवान् शंकाराचर्य कहते हैं कि ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है, ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (तृण) पर्यंत समस्त उपाधियाँ मिथ्या हैं। आप ही ब्रह्मा है, आप ही विष्णु हैं, आप ही इंद्र हैं और आप ही यह सारा विश्व हैं। आप से भिन्न और कुछ भी नहीं है।

भगवान् शंकराचार्य ने माया की व्याख्या बहुत अच्छे ढंग से की है। जो अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की परा-शक्ति है, वही माया है जिससे यह सारा जगत उत्पन्न हुआ है। माया वास्तव में न सत है और न असत है, न उभयरूप है, न भिन्न है न अभिन्न है, किन्तु अत्यंत अद्भुत और अनिर्वचनीयरूपा (जो कही न जा सके) है। रस्सी के ज्ञान से सर्प भ्रम के समान वह अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से ही नष्ट होने वाली है। स्व-कर्मों के अनुसार प्राणी सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से सम्बंधित होता है

मनुष्य का शरीर पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से निर्मित है और इन्हीं के स्वरुप, भोजन, जल, वायु आदि माध्यम को मनुष्य ग्रहण करता है और इन्हीं की तन्मात्राएँ भोक्ता जीव के भोग रूप सुख के लिए शब्दादि 'पांच विषय' हो जाती हैं। तदनंतर सांसारिक अथवा मूढ़ मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार शब्दादि पांच विषयों में किसी विषय अथवा विषयों से बंधा और जकड़ा रहता है।

भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि यदि दोष के अनुसार विचार करें तो देहासक्ति, विषय वासना, अहंकार और माया, यह सभी त्याग करने योग्य हैं। जो अनादि अविद्याकृत बंधन से छूटने का प्रयास न कर प्रतिक्षण इस देह के पोषण में ही लगा रहता है, वह स्वयं अपना ही घात करता है। विषय वासना सर्प के विष से भी अधिक विषैली है क्योंकि विष तो खाने वाले को ही मारता है, परन्तु विषय तो आँखों से देखने वाले को भी मार डालते हैं। अतः जो विषयों के बंधन को त्याग देता है वही मोक्ष का अधिकारी है।

भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि यद्यपि ब्रह्म ज्ञान मोक्ष का हेतु है, पर इसका यथार्थ ज्ञान श्रुति अथवा गुरु भी केवल तटस्थ रूप से ही बोध करा सकते हैं। यह पूर्णतः विद्वान शिष्य के ऊपर है कि वह अपनी ईश्वरानुगृहीत बुद्धि से अनुभव कर इस ज्ञान को प्राप्त कर भव-सागर से तर जाए।

गुरुदेव के आदेश से मैंने मूल संस्कृत भाषा में भगवान् शंकाराचार्य द्वारा रचित 'विवेक चूणामणि' का हिंदी छंद में काव्यान्तरण कर इस अमूल्य रत्न महाकाव्य ‘विवेक चूणामणि - हिंदी काव्य मूल संस्कृत श्लोक सहित (हिंदी भावार्थ के साथ)’ की रचना की है| आशा है कि आपको मेरा प्रयास रुचिकर लगेगा| विद्वानों का मत है कि इस महारत्न काव्य का मनन करने से मरण पश्चात मोक्ष की प्राप्ति होती है|

ॐ शांतिः शांतिः शान्तिः

आपका अपना,
डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

विवेक चूणामणि

नन्दितानि दिगन्तानि यस्यानन्दाम्बुविन्दुना ।
ॐ पूर्णानन्दं प्रभुं वन्दे स्वानन्दैकस्वरूपिणम् ॥

करूँ मैं उस हरि का पूजन । करें जो बूँद जल सुखद गगन ।।
हैं जो स्थित सतत कृतपुण्य । रूप पूर्णानंद और दिव्य ।।

भावार्थ: मैं उस प्रभु का पूजन करता हूँ जो जलक की बूंदों से आकाश को आनंदित करता है। जो सदैव पुण्य कृत्यों में स्थित है। जो पूर्णानंद रूप और दिव्य है।

१. स्तुति

सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥

नमः नमः सद्गुरु वासुदेव । हैं आप आनंददाता देव ।।
विख्यात विश्व हैं आप अज्ञेय । पर ब्रह्म वेद ज्ञान से ज्ञेय ।। (१)

भावार्थ: हे आनंद प्रदान करने वाले सद्गुरु वासुदेव, मैं आपको प्रणाम करता हूं। आप अज्ञेय हें, ऐसा विश्व विख्यात है। परन्तु ब्रह्म एवं वेद ज्ञान से आप ज्ञेय हैं (आपको जाना जा सकता है)।

२. ब्रह्मनिष्ठा महत्व

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थितिः
मुक्तिर्नो शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥ २ ॥

है दुर्लभ जन्म मनुष्य तन । दुस्तर पुरुषत्व परिगमन ।।
दुर्धर गृह ब्राह्मण जन्म । है कठिन पाएं ज्ञान ब्रह्म ।।
है दुष्कर कर सकें आकलन । विवेक एवं अनुभव सत्यवन् ।।
भाव ब्रह्म और निर्मोचन । आत्म अनात्म ज्ञान भूजन ।।
नहीं सुलभ बाद कोटि जन्म । कर प्राप्त फल अपि शुभ कर्म ।।
है दुष्कर अति बोध भगवन । हैं जो ब्रह्मयोग में विद्यमन ।। (२)

भावार्थ: मनुष्य शरीर में जन्म लेना कठिन है। पुरुषत्व पाना अत्यंत कठिन है। ब्राह्मण गृह में जन्म लेना दुर्गम है। ब्रह्म ज्ञान पाना अत्यंत कठिन है। आत्मा एवं अनात्मा के विवेक, उचित अनुभव, ब्रह्म भाव और मुक्ति के ज्ञान का आकलन करना प्राणियों के लिए दुष्कर है। यह करोड़ों जन्म के अति कर्मों के फल के पश्चात भी सुलभ नहीं है। भगवान् का बोध होना अत्यंत कठिन है जो ब्रह्मयोग में स्थिति हैं।

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥ ३ ॥

है दुर्लभ सत्संग संत महन । पाना नरत्व व् इच्छा मोचन ।।
है संभव यह कृपा भगवन । नहीं मिले बिन हरि स्वस्त्ययन ।। (३)

भावार्थ: महापुरुषों का सत्संग, नरत्व (मानवता) और मुक्ति की इच्छा (मुमुक्षुत्व), भगवान् की कृपा से ही संभव है। उनकी कृपा के बिना असंभव है।

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम् ।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ॥ ४ ॥

यदि पा सका जन्म मनुज तन । एवं लिया ज्ञान श्रुति भूजन ।।
पा नरत्व इस भांति भाग्यवन । न करे प्रयास मोक्ष आत्मन ।।
है वह मूढ़ बुद्धि निश्चयन । हो नष्ट हेतु असत अवधारन ।। (४)

भावार्थः यदि प्राणी ने मनुष्य तन पा लिया और श्रुति का ज्ञान भी ले लिया, इस भांति जो सौभाग्यशाली मनुष्यत्व को प्राप्त कर आत्मा के मोक्ष का प्रयास नहीं करता, वह अवश्य ही मूढ़ बुद्धि है। वह असत्य आस्था के कारण नष्ट होता है।

इतः को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥ ५ ॥

पा कर अति दुर्लभ मनुज तन । पा नरत्व सम उपरोक्त कथन ।।
करता प्रमाद स्वार्थ साधन । नहीं सम मूढ़ कोई उस जन ।। (५)

भावार्थः अत्यंत दुर्लभ मनुष्य का शरीर पा कर एवं उपरोक्त कथन के अनुसार पुरुषत्व पाकर जो स्वार्थ साधनों में लिप्त रहता है, उस प्राणी के समान मूर्ख कोई नहीं है।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।
आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिः न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥ ६ ॥

चाहे करे कोई भाष्य ग्रंथन । करे यजन देव युक्त शुद्ध मन ।।
पर नहीं यदि बोध अंतर्मन । हैं एक ब्रह्म और आत्मन ।।
नहीं पा सकता निर्मोचन । ले चाहे यदि कल्प सौ जनन ।। (६)

भावार्थः चाहे कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, शुद्ध हृदय से देवताओं की स्तुति करे, पर यदि उसके अंतर्मन में ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान नहीं है, तो वह सौ कल्पों में भी जन्म लेकर मोक्ष नहीं पा सकता।

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेनेत्येव हि श्रुतिः ।
ब्रवीति कर्मणो मुक्तेरहेतुत्वं स्फुटं यतः ॥ ७ ॥

नहीं दे सकता अमरत्व धन । नहीं दे सकता कर्म निर्मोचन ।।
यह स्पष्ट श्रुति आदि ग्रंथन । समझो भूजन यह सत्य कथन ।। (७)

भावार्थः धन अमरत्व नहीं दे सकता। कर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती। हे प्राणी, इस सत्य कथन को समझो जो श्रुति आदि ग्रंथों में स्पष्ट है।

३. ज्ञान उपलब्धि का साधन

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत्विद्वान् संन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः सन् ।
सन्तं महान्तं समुपेत्य देशिकं तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा ॥ ८ ॥

इस कारण करें त्याग मन्मन् । सभी बाह्य भोग बुद्धिवन ।।
ले कर शिरोमणि सद्गुरु शरन । करते उनकी आज्ञा पालन ।।
लगा ध्यान विषय श्री भगवन । करें प्रयास पाएं निर्मोचन ।। (८)

भावार्थः इस कारण बुद्धिमान (व्यक्ति) सभी बाह्य भोगों की इच्छा का त्याग कर शिरोमणि सद्गुरु की शरण लें। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए भगवद् विषयों में ध्यान लगाएं और मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करें।

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया ॥ ९ ॥

हो कर योगारूढ़ निरंतर । कर स्थित सत्य तत्व चित् अंदर ।।
करो उद्धार तुम स्व-आत्मन । डूबी हुई जो जग जल-लवन ।। (९)

भावार्थः निरंतर योगारूढ़ हो एवं सत्य वस्तु आत्मा को (हृदय के) अंदर स्थित कर संसार समुद्र में डूबी हुई अपनी आत्मा का उद्धार करो।

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये ।
यत्यतां पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः ॥ १० ॥

धीर विद्वान् सुनो यह वचन । हो तत्पर आत्माभ्यास गहन ।।
कर सम्पूर्ण कर्मों का न्यसन । हो जाओ निवृत भव-बंधन ।। (१०)

भावार्थः धीर विद्वान (प्राणियों) यह वचन सुनो। गहन आत्माभ्यास में तत्पर हो, सम्पूर्ण कर्मों का त्याग कर, भव-बंधन से मुक्त हो जाओ।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः ॥ ११ ॥

होता कर्म हेतु चित्त पावन । नहीं हेतु तत्वद्रष्टि लम्भन ।।
हो संभव स्व-ज्ञान हेतु मनन । असंभव हेतु कोटि कोटि करन ।। (११)

भावार्थः कर्म आत्मा को पवित्र करने के लिए होता है, तत्वद्रष्टि (आत्मज्ञान) लाभ के लिए नहीं। आत्मज्ञान चिंतन से संभव है। करोड़ों कर्म करने पर भी नहीं मिलता।

सम्यग्विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा ।
भ्रान्तोदितमहासर्पभयदुःखविनाशिनी ॥ १२ ॥

किए सिद्ध रजुतत्व जो भूजन । कर हृदय सम्यक् गहन मनन ।।
हों दूर सर्प दुःख भय वर्पन् । हुआ उत्पन्न हेतु विस्मापन ।। (१२)

भावार्थः जिन प्राणियों ने भली भांति गहन चिंतन कर रजोगुण पर विजय पा ली है (अर्थात सुख भोगों का त्याग कर दिया है), उनके भ्रम से उत्पन्न सर्प भय रूपी दुःख दूर हो जाते हैं।

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः ।
न स्नानेन न दानेन प्राणायमशतेन वा ॥ १३ ॥

हो संभव लाभ ज्ञान आत्मन । हेतु हितकर यह कथित मनन ।।
नहीं संभव हेतु स्वच्छ तन । या करें दान यज्ञ आदि कर्मन ।। (१३)

भावार्थ: आत्म-ज्ञान का लाभ कल्याणप्रद कथित मनन से संभव है, न कि शरीर को स्वच्छ (नहाने) करने अथवा दान, यज्ञ आदि करने से।

४. अधिकारिनिरुपण

अधिकारिणमाशास्ते   फलसिद्धिर्विशेषतः ।
उपाया देशकालाद्याः सन्त्यस्मिन्सहकारिणः ॥ १४ ॥

करते शुभ कर्म जो भूजन । अधिकारी वह सिद्धि कर्मन ।।
होते सहाय काल अध्यासन । हो चित्त जब समर्पित भगवन ।। (१४)

भावार्थ: जो प्राणी शुभ कर्म करते हैं, वह कर्म फल के अधिकारी होते हैं। इसमें काल और स्थान भी सहायक होते हैं जब मन प्रभु को समर्पित हो।

अतो विचारः कर्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुनः ।
समासाद्य दयासिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम् ॥ १५ ॥

पाओ ज्ञान आत्म जा शरन । ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु   महन ।।
कर सकें वह शांत जिज्ञासा । करें पूर्ण शिष्य की आशा ।। (१५)

भावार्थ: महान ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु की शरण में जा आत्मज्ञान पाओ। वही शिष्य की आशा को पूर्ण करते हुए जिज्ञासा को शांत कर सकते हैं।

मेधावी पुरुषो विद्वानुहापोहविचक्षणः ।
अधिकार्यात्मविद्यायामुक्तलक्ष्यणलक्षितः ॥ १६ ॥
विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः ।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता ॥ १७ ॥

हों अविगत जिनमें यह लक्षन । हैं अधिकारी ज्ञान आत्मन ।।
तर्क वितर्क में अति निपुन । जिज्ञासु विद्वान् बुद्धिवन ।। (१६)
सात्विक सत्यवादी तपस्विन् । युक्त षट्सम्पत्ति संयमित मन ।।
मुमुक्ष इच्छा मन हरि मिलन । हैं यह ब्रह्मजिज्ञासु लक्षन ।। (१७)

भावार्थ: जिनमें यह लक्षण हों, वहीं आत्मज्ञान के अधिकारी हैं। तर्क वितर्क में अति निपुण, जिज्ञासु (ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो), विद्वान् और बुद्धिमान, सात्विक, सत्यवादी, योगी, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) से युक्त, संयमित मन, मोक्ष एवं मन में प्रभु से मिलने की इच्छा, यह ब्रह्म जिज्ञासु के लक्षण हैं।

५. चार साधन

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः ।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिध्यति ॥ १८ ॥

कहें मनुस्वी सुनो भक्तगन । हैं चत्वार जिज्ञासा साधन ।।
होती जाग्रत जब यह तृष्ना । हो कैसे मम मोक्ष संभावना ।।
होता उत्पन्न कौतुक तब मन । करे स्थित वह रुप आत्मन ।। (१८)

भावार्थ: मनुस्वी कहते हैं कि हे भक्तगण, यह सुनो। जिज्ञासा के चार साधन (प्रकार) हैं। जब यह जिज्ञासा जाग्रत होती है कि मुझे मोक्ष कैसे मिले, तब मन में कौतुक उत्पन्न होता है जो आत्म-रुप में स्थित कर देता है (आत्म-ज्ञान हो जाता है)।

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगम्यते ।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ॥ १९ ॥
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः ॥ २० ॥
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः
तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शनश्रवणादिभिः ॥ २१ ॥

देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ।
विरज्य विषयव्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते ।
विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके ॥ २३ ॥

समझो इसे तुम प्रथम साधन । बढ़े क्षमता जब हृदय भूजन ।।
कर सकें भेद नित्य अनित्यन । है दूजा साधन परम गरिमन् ।।
करें त्याग लौकिक विहारन । हो वैराग्य सुख भोग मन ।। (१९)
तृतीय हों युक्त षष्ठ संपत्ति । सम शम दम तितिक्षा उपरति ।।
श्रद्धा समाधान आदि गुण । चतुर्थ इच्छा पाएं परिमोक्षण ।।
हो ज्ञान हिय एव सत्य ब्रह्म । हैं मिथ्या सब लौकिक कर्म ।। (२०)
करे कर्म भक्त कर भेद हिय । इस जगत में सत्य और असत्य ।।
हो विरक्त तन से त्रिभुवन । हेतु वह श्रवण और दर्शन ।। (२१)
हो बुद्धि विरुद्ध कर्म अनित्य । त्याग सुख हो लिप्त वैराग्य ।।
हो दोष-दृष्टि ओर जग विषय । करे समर्पित हरि स्व-हृदय ।। (२२)
रखे मन स्थिर लक्ष्य मनुज तन । कहें ग्रन्थ है यह शम गुन ।।
करे कर्म ज्ञानेन्द्रिय नियंत्रन । है यही दम भाव अंतर भूजन ।। (२३)

भावार्थ: जब प्राणी के हृदय में नित्य और अनित्य में भेद करने की क्षमता बढ़ जाती है, तब हे भक्तगण, इसे प्रथम साधन समझो। दूसरा साधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। लौकिक आनंद का त्याग करें। मन में सुख भोग का वैराग्य हो। तृतीय (साधन) षष्ठ संपत्ति जैसे शम, दम, तितिक्षा (धैर्य), उपरति (लौकिक वस्तुओं से विरक्ति), श्रद्धा और समाधान गुण से संपन्न हो। चतुर्थ मोक्ष पाने की इच्छा हो। हृदय में ज्ञान हो कि ब्रह्म ही सत्य है और संसार से सम्बंधित कार्य मिथ्या हैं (तात्पर्य है कि संसार से सम्बंधित कार्य करते रहने पर भी उनसे विरक्ति हो)। भक्त हृदय में इस संसार में सत्य और असत्य का भेद करते हुए कर्म करे (अर्थात असत्य को त्यागे और सत्य को स्वीकार करे)। श्रवण और दर्शन द्वारा (सुनने और देखने से) शरीर से तीनों लोकों की विरक्ति हो (अर्थात भूलोक से ब्रह्मलोक तक विरक्ति हो)। अनित्य कर्मों के विरुद्ध बुद्धि हो। सुख त्याग कर वैराग्य में लिप्त हो। सांसारिक विषयों (भोग विलास) के प्रति दोष-दृष्टि हो (अर्थात उनकी ओर न देखे)। अपने हृदय को प्रभु को समर्पित करें। मनुष्य शरीर के लक्ष्य (मोक्ष प्राप्ति) पर मन को स्थिर रखें। इसी को ग्रन्थ शम कहते

हैं। कर्म और ज्ञानेन्द्रियों (वाक्, हाथ, पैर, गुदा और जननांग, पांच कर्मेन्द्रियाँ एवं आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ) का नियंत्रण करे। यही प्राणियों में दम भाव है।

उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।
बाह्यानालम्बनं   वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा ॥ २४ ॥

हो   वैराग्य   लौकिक साधन । नहीं ले आश्रय बाह्य अध्वन् ।।
कहें   ग्रंथ   है   यह   उपरति । देती   संसार-सागर   निवृत्ति ।। (२४)

भावार्थ: लौकिक साधनों से वैराग्य हो । बाहरी साधनों को आश्रय न ले (अर्थात एक प्रभु का ही आश्रय हो)। इसे ग्रन्थ उपरति कहते हैं जो भव-सागर से तार देती है।

सहनं   सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् ।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते ॥ २५ ॥

हो रहित चिंता और खेदन । करे दूर सब रहित वैर विघ्न ।।
कहें ग्रन्थ है यही तितिक्षा । करे जाग्रत   हृदय मुमुक्षा ।। (२५)

भावार्थ: चिंता और शोक से रहित हो बिना शत्रुता की भावना (बदले की भावना) रखे सबके विघ्नों को दूर करे। इसे ग्रन्थ तितिक्षा कहते हैं जो हृदय में मोक्ष की इच्छा जाग्रत करती है।

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम् ।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते ॥ २६ ॥

हेतु ग्रन्थ और गुरु वचन । होती बुद्धि दिव्य और पावन ।।
कहें ग्रन्थ   श्रद्धा   इसको । हो प्राप्ति सत इससे जन को ।। (२६)

भावार्थ: शास्त्र एवं गुरु-वाक्य के माध्यम से बुद्धि शुद्ध और दिव्य होती है। इसे ग्रन्थ श्रद्धा कहते हैं जिससे प्राणियों को परमार्थ की प्राप्ति होती है।

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा ।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम् ॥ २७ ॥

हो बुद्धि स्थिर ब्रह्म पावन । कहें इसे समाधान भक्तगन ।।
समझो स्पष्ट इसे तुम भूजन । हो इच्छा पूर्ति नहीं लक्ष्य जन ।। (२७)

भावार्थः पवित्र ब्रह्म में बुद्धि स्थिर हो, इसे भक्तगण समाधान कहते हैं। हे प्राणियों, इसे भली भांति समझ लो कि इच्छा पूर्ति प्राणी का लक्ष्य नहीं होना चाहिए।

अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान् ।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता ॥ २८ ॥

देते अज्ञान जो भव-बंधन । सम अहंकार आदि दुर्गुन ।।
त्यागें सभी भाव दास्यता । कहें ग्रन्थ है यह मुमुक्षता ।। (२८)

भावार्थः अज्ञान देने वाले सभी लौकिक बंधन जैसे अहंकार आदि दुर्गुण से उत्पन्न दास्यता का त्याग करें। इसे ही ग्रन्थ मुमुक्षता कहते हैं।

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना ।
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम् ॥ २९ ॥

होती उत्पन्न हिय मुमुक्षा । चाहे मंद या मध्यम इच्छा ।।
शनैः शनैः दे यह वैराग्य । गुरु कृपा से दे फल दिव्य ।। (२९)

भावार्थः चाहे मंद अथवा मध्यम मोक्ष की इच्छा जब हृदय में उत्पन्न होती है, धीरे धीरे यह वैराग्य देती है और गुरु कृपा से उत्कृष्ट फल देती है।

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते ।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः ॥ ३० ॥

जब भाव त्याग और मोचन । हों तीव्र जिस भक्त अंतर्मन ।।
होते सिद्ध और चरितार्थ । गुण उसके शमादि परमार्थ ।। (३०)

भावार्थ: जिस भक्त के हृदय में मुमुक्ष और वैराग्य के भाव तीव्र होते हैं, उसके परमार्थ शमादि गुण सफल और चरितार्थ होते हैं।

एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः ।
मरौ सलीलवत्तत्र शमादेर्भानमात्रता ॥ ३१ ॥

पर जब चित्त जन हो मंदता । भाव वैराग्य और मुमुक्षता ।।
सम प्राप्ति जल मरू निलय । समझो दूर जीवन जन लक्ष्य ।। (३१)

भावार्थ: परन्तु जब प्राणी के चित्त में वैराग्य और मुमुक्षता की भावना मंद हो, तब मरुस्थल में जल की प्राप्ति के समान प्राणी के जीवन का लक्ष्य दूर होता है (अर्थात जिस प्रकार रेगिस्तान में जल की प्राप्ति कठिन है, उसी प्रकार प्राणी के जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति (मोक्ष) कठिन होती है)।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥ ३२ ॥

है भक्ति श्रेष्ठ हेतु मोचन । भक्ति से हों प्रभु के दर्शन ।।
कहते ग्रन्थ वेद आदि पावन । है भक्ति पा लेना स्व-वर्पन् ।। (३२)

भावार्थ: मोक्ष के लिए भक्ति ही श्रेष्ठ है। भक्ति से ही प्रभु के दर्शन होते हैं। पवित्र वेद, ग्रन्थ आदि कहते हैं कि अपने स्वरुप को पा लेना ही भक्ति है।

६. गुरु भक्ति और प्रश्न विधि

स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः ।
उक्तसाधनसंपन्नस्तत्त्व जिज्ञासुरात्मनः ॥ ३३ ॥

स्वात्म-तत्व ही भक्ति भगवन । कहते हैं ऐसा अति विद्ववन ।।
कर पालन उपरि चार साधन । पाएं आत्म-तत्व जिज्ञासुजन ।। (३३)

भावार्थ: स्वात्म-तत्व (का ज्ञान) ही प्रभु की भक्ति है, ऐसा बड़े विद्वान कहते हैं। उपरोक्त चार साधनों का पालन कर जिज्ञासु प्राणी आत्म-ज्ञान पाएं।

उपसीदेद्गुरुं प्राज्ञ्यं यस्माद्बन्धविमोक्षणम् ।
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ३४ ॥
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः ।
अहेतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम् ॥ ३५ ॥
तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्वप्रश्रयसेवनैः ।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः ॥ ३६ ॥

जाए समीप सद्गुरु विचक्षन । कर सके जो निवृत्ति भव-बंधन ।।
हो सद्गुरु युक्त पूर्ण वेदन । निष्पाप कृपालु रहित-मन्मन् ।।
उच्च ब्रह्मवेत्ता शरणापन्न । बिन ईंधन अग्नि सम सुषामन् ।। (३४)
ब्रह्मनिष्ठ आप्त अमानिन् । हृदय दया सिंधु अकारन ।।
पा सके हों भगवत दर्शन । करें स्वीकार शिष्य स्नेहन ।। (३५)
कर प्रणिपात इन गुरु महन । करें भक्ति पूर्वक आराधन ।।
हों जब प्रसन्न पुरुष पावन । पूछे ज्ञातव्य विनम्र शिष्यगन ।। (३६)

भावार्थ: आत्म-ज्ञान जिज्ञासु भक्त बुद्धिमान सद्गुरु के पास जाए जो उसे भव-बंधन से मुक्ति दिलाने में समर्थ हो। जो सद्गुरु पूर्ण ज्ञान में निपुण, निष्पाप, इच्छाओं से रहित, श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता (ब्रह्म-ज्ञान पूर्ण), आश्रय देने वाले, ईंधन रहित अग्नि समान शांत, ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्म में लीन), हितैषी, अहंकार रहित, जिनका हृदय अकारण ही दया सिंधु

समान हो, जिन्हें भगवद दर्शन हो चुके हों, स्नेह से शिष्य को स्वीकार करने वाले हों, ऐसे महान गुरु को साष्टांग प्रणाम कर भक्ति पूर्वक उनकी आराधना करें। जब वह पवित्र पुरुष प्रसन्न हों तब विनम्र शिष्य उनसे योग्य ज्ञान पूछे।

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो कारुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ ।
मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्ट्या ऋज्व्यातिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या ॥ ३७ ॥

बैठ समीप कर स्पर्श चरन । करें बारम्बार चरण वंदन ।।
हो विनम्र कहें तब यह वचन । हे शरणागत वत्सल दया रत्न ।।
हूँ दुःखी भव-सागर बंधन । आश्रयण शिष्य मुझे दो शरन ।।
हेतु करुण अमृत स्व-वचन । करो उद्धार मम पापात्मन् ।। (३७)

भावार्थ: उनके समीप बैठ, चरण स्पर्श कर, बार बार उनके चरणों की वन्दना करें। तब विनम्रता से यह वचन कहें, 'हे दया सिंधु शरणागत वत्सल, मैं भव-सागर बंधन से दुःखी हूँ। मुझे शिष्य स्वीकार कर, शरण में लो। अपनी करुणामय अमृत वाणी से इस पापी का उद्धार करो।'

दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टवातैः ।
भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यद्यदहं न जाने ॥ ३८ ॥

कठिन जिससे पाना मोचन । हूँ कम्पित कष्ट सम अनल वन ।।
कर रही भयभीत अति भीषन । अभग लौकिक प्रबल प्रभंजन ।।
पा रहा मैं कष्ट सम मरन । त्राहि त्राहि मैं आया शरन ।। (३८)

भावार्थ: 'जिससे मुक्ति पाना कठिन है, ऐसे दावानल समान कष्ट से मैं कम्पित हूँ। अति भीषण दुर्भाग्यरूपी सांसारिक तीव्र आंधी भयभीत कर रही है। मृत्यु के समान मैं कष्ट पा रहा हूँ। रक्षा कीजिए, मैं आपकी शरण में आया हूँ।'

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनान् अहेतुनान् यानपि तारयन्तः ॥ ३९ ॥

कर हरि दर्शन तर भव बंधन । हैं समर्थ्य यह सिद्ध दिव्य जन ।।
तार सकें युक्त अघ भूजन । करते सदा लोकहित आचरन ।।
हैं शम सम ऋतु महन वसंत । कृपालु करें सब कष्ट अंत ।। (३९)

भावार्थ: प्रभु दर्शन प्राप्त स्वयं भव-बंधन से परे, यह दिव्य पुरुष पापियों को तारने में समर्थ हैं। यह सदैव लोकहित में आचरण करते हैं यह ऋतुराज वसंत के समान शांत हैं। यह कृपालु सब कष्टों का अंत करते हैं।

अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम् ।
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल ॥ ४० ॥

है यह प्रकृति इन दिव्य जन । आता दीन जो इनकी शरन ।।
हर लेते श्रम वह उन भक्तगन । दे शान्ति करते हिय पावन ।।
सम शीतल करें चंद्र भुवन । तपती जब हेतु ताप द्युवन् ।। (४०)

भावार्थ: इन दिव्य महापुरुषों का स्वभाव होता है कि जो भी दीन उनकी शरण में आता है, उस भक्त का वह श्रम हर लेते हैं (सांसारिक कष्टों की थकान हर लेते है, अतः मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं)। शान्ति देकर वह (भक्त के) हृदय को पवित्र करते हैं उसी प्रकार जैसे चन्द्रमा सूर्य के ताप से जलती हुई भूमि को शीतल करते हैं।

ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः पूर्तैः सुशीतैर्युतैः
युष्मद्वाक्कलशोज्झितैः श्रुतिसुखैर्वाक्यामृतैः सेचय ।
संतप्तं भवतापदावदहनज्वालाभिरेनं प्रभो
धन्यास्ते भवदीक्षणक्षणगतेः पात्रीकृताः स्वीकृताः ॥ ४१ ॥

कर विनती पड़ इनके चरन । हे शिष्य कहो यह मधुर वचन ।।
दो आश्रय प्रभु इस कृपन । तप रहा भव दावानल गहन ।।
दो शम हेतु स्व-ब्रह्म वचन ।जो हैं शीतल परम पावन ।।
सुनने में सुखद सोम कथन । जो वाक्य स्वर्ण कलश वर्पन् ।।
पा सके जो दृष्टि पथ शिष्य । है वह धन्य पा कृपा दिव्य ।। (४१)

भावार्थ: हे शिष्य, विनीत भाव से इनके चरण पकड़ यह मधुर वचन बोलो, 'हे प्रभो, इस दीन को आश्रय दीजिए जो संसार के घोर दावानल में तप रहा है। अपने ब्रह्म वचनों से जो शीतल, परम पवित्र, सुनने में सुखदायी, अमृतमय, स्वर्ण कलश वाक्य रूपी हैं, उनसे शान्ति दीजिए। जो शिष्य आप का दिव्य मार्ग दर्शन पा सके और कृपा पात्र हुए, वह धन्य हैं।'

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं का वा गतिर्मे कतमोऽस्त्युपायः ।
जाने न किञ्चित्कृपयाव मां प्रभो संसारदुःखक्षतिमातनुष्व ॥ ४२ ॥

कैसे तरू मैं इस भव-बंधन । हो कैसे मेरी गति पावन ।।
भरा अज्ञान हृदय में भगवन । करें रक्षा आया मैं शरन ।।
करिए दूर भव दुःख इस कृपन । नहीं अन्य आश्रय हे महन ।। (४२)

भावार्थ: 'इस भव-बंधन से कैसे तरूं? मेरी गति शुद्ध कैसे हो? हे भगवन, मैं अज्ञान से भरा हूँ। मेरी रक्षा करें, मैं शरणागत हूँ। इस दुःखी के लौकिक दुःख दूर कीजिए। हे महात्मा, (मेरा) कोई और आश्रय नहीं है।'

७. उपदेश विधि

तथा वदन्तं शरणागतं स्वं संसारदावानलतापतप्तम् ।
निरीक्ष्य कारुण्यरसार्द्रदृष्ट्या दद्यादभीतिं सहसा महात्मा ॥ ४३ ॥

सुन विनती अथ कौतुकिन् । संतप्त भव-सागर शिष्यगन ।।
कर प्रदान अभय तब महन । कर कृपा लें उसे अपनी शरन ।। (४३)

भावार्थ: भव-सागर से पीड़ित शिष्य जिज्ञासु की इस प्रकार विनती सुनकर महात्मा उसे अभय प्रदान करें। कृपा कर उसे अपनी शरण में लें।

विद्वान् स तस्मा उपसत्तिमीयुषे मुमुक्षवे साधु यथोक्तकारिणे ।
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात् ॥ ४४ ॥

दें गुरु तत्व ज्ञान उस सुस्थित । अनुव्रत मुमुक्ष शांतचित्त ।।
युक्त गुण शमादि जो शिष्य । है लक्ष्य जिसका ओर दिव्य ।। (४४)

भावार्थ: उस संत समान आज्ञाकारी, मुमुक्ष, शांतचित्त, शमादि गुणों से युक्त शिष्य जिसका लक्ष्य दिव्य प्राप्ति है, उसे गुरु तत्व ज्ञान दें।

श्रीगुरुरुवाच
मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपायः संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः ।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं तमेव मार्गं तव निर्दिशामि ॥ ४५ ॥

श्रीगुरुरुवाच
कहें गुरु हे प्रिय शिष्यगन । हो अभय न हो तेरा विघटन ।।
दूँ ज्ञान टूटें भव-बंधन । पथ यही अपनाते यतिजन ।। (४५)

भावार्थ: गुरुदेव बोलें, 'हे शिष्य, अभय हो जाओ। तुम्हारा विनाश नहीं होगा। मैं ज्ञान दूंगा जिससे लौकिक बंधन टूट जाएंगे। इसी मार्ग को योगी अपनाते हैं।'

अस्त्युपायो महान् कश्चित्संसारभयनाशनः ।
तेन तीर्त्वा भवाम्भोधिं परमानन्दमाप्स्यसि ॥ ४६ ॥

है यही एक विधि अति पावन । करे जो विनाश त्रास भुवन ।।
कर प्राप्त परमानंद भूजन । तर भव-बंधन पाए निर्मोचन ।। (४६)

भावार्थ: यही एक विधि है (जो ज्ञान मैं दूंगा) जो इस लोक में भय का विनाश करती है। प्राणी परमानंद प्राप्त कर, भव-बंधन से तर, मोक्ष की प्राप्ति करता है।

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ।
तेनात्यन्तिकसंसारदुःखनाशो भवत्यनु ॥ ४७ ॥

करूँ वाक्य वेदांत विवेचन । है जो उत्कृष्ट ज्ञान स्नेहन ।।
होंगे नष्ट सम्पूर्ण खेदन । पाओगे दर्शन तुम भगवन ।। (४७)

भावार्थः हे प्रिय, वेदान्त वाक्यों का विवेचन करूंगा जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। जिससे दुःखों का सम्पूर्ण नाश होगा और प्रभु के दर्शन पाओगे।

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगाम्मुमुक्षोः मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः ।
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात् ॥ ४८ ॥

श्रद्धा भक्ति योग और मनन । कहे श्रुति साधन निर्मोचन ।।
हो जो मुमुक्ष स्थित इन लक्षन । टूट जाते उसके भव-बंधन ।। (४८)

भावार्थः श्रुति कहती है कि श्रद्धा, भक्ति, योग और साधना, मुक्ति के उपाय हैं। जो मोक्ष जिज्ञासु इन लक्षणों में स्थित हो जाता है (अर्थात इन गुणों की प्राप्ति कर लेता है), उसके लौकिक बंधन टूट जाते हैं।

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव ह्यनात्मबन्धस्तत एव संसृतिः ।
तयोर्विवेकोदितबोधवन्हिः अज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥ ४९ ॥

हेतु अज्ञान अनात्म बंधन । पड़ें चक्र जन्म-मरण भूजन ।।
हो ज्ञान जब आत्म अनात्मन । करे भस्म सम अग्नि मुग्धिमन् ।। (४९)

भावार्थः अज्ञान के कारण अनात्म (स्वयं से भिन्नता का) बंधन होता है (अर्थात प्राणी आत्म-स्वरुप को नहीं पहचान पाता)। इसी कारण प्राणी जन्म-मरण के चक्र में पड़ जाता है। जब आत्मा और अनात्मा का ज्ञान हो जाता है, तब अग्नि की भांति वह अविद्या को भस्म कर देता है (अर्थात तत्व-ज्ञान बोध हो जाता है)।

८. प्रश्न निरूपण

शिष्य उवाच
कृपया श्रूयतां स्वामिन् प्रश्नोऽयं क्रियते मया ।
यदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थः स्यां भवन्मुखात् ॥ ५० ॥

शिष्य उवाच
करबद्ध कहे तब शिष्य हे महन । कर कृपा मम सुनें मम प्रश्न ।।
पा उत्तर आपके पद्मानन । हूँगा कृत्यज्ञ और पावन ।। (५०)

भावार्थ: शिष्य करबद्ध बोले, 'हे महात्मा, मुझ पर कृपा कर मेरा प्रश्न सुनिए। आपके मुखारविंद से इसका उत्तर पाकर मैं कृतार्थ और शुद्ध हो जाऊँगा।'

को नाम बन्धः कथमेष आगतः कथं प्रतिष्ठास्य कथं विमोक्षः ।
कोऽसावनात्मा परमः क आत्मा तयोर्विवेकः कथमेतदुच्यताम् ॥ ५१ ॥

क्या बन्ध हो कैसे उत्पत्ति । होती कैसी इसकी स्थिति ।।
क्या अनात्मा और भगवन । कैसे मिलता है निर्मोचन ।।
दो मुझे आप परमात्व ज्ञान । हो दूर मेरा तम सम अज्ञान ।। (५१)

भावार्थ: 'बन्ध क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? इसकी स्थिति कैसी होती है? अनात्मा और भगवान् (परमात्मा) क्या हैं? मोक्ष कैसे मिलता है? आप मुझे तत्व ज्ञान दीजिए जिससे मेरा अंधकार रूपी अज्ञान दूर हो।'

९. शिष्य प्रशंसा

श्री गुरुरुवाच
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पावित ते कुलं त्वया ।
यदविद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मीभवितुमिच्छसि ॥ ५२ ॥

श्री गुरुरुवाच
कहें गुरु धन्य धन्य हे शिष्य । किया तूने कुल पावन दिव्य ।।
जागा भाव ब्रह्म करे पावन । छूटें अब रूप अविद्या बंधन ।। (५२)

भावार्थ: गुरु कहें, 'हे शिष्य, तू धन्य है, धन्य है। तूने अपने कुल को शुभ दिव्य किया। ब्रह्म को पाने का भाव जाग्रत हुआ जो शुद्ध करेगा। अब अविद्या रूपी बंधन छूट जाएंगे।

१०. स्व-प्रयत्न की प्रधानता

ऋणमोचनकर्तारः पितुः सन्ति सुतादयः ।
बन्धमोचनकर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ॥ ५३ ॥

चुकाएँ पितृ-ऋण संतति । हों तब दूर पितृ दुर्गति ।।
न कर सके मुक्त अन्य भव-बंधन । हो संभव केवल स्व-परीक्षन ।। (५३)

भावार्थ: संतान पितृ-ऋण चुकाती है तब पितरों की दुर्गति दूर होती है। (उसी प्रकार) भव-बंधन को कोई अन्य नहीं छुड़ा सकता। यह अपने प्रयास से ही संभव है।

मस्तकन्यस्त भारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते ।
क्षुधादिकृतदुःखं तु विना स्वेन न केनचित् ॥ ५४ ॥

समझो दे सकें सुख परजन । कर दूर बोझ सर दे जो खेदन ।।
पर यदि दुःखी क्षुदित तर्षन । कर सकें दूर स्वयं भूजन ।। (५४)

भावार्थ: समझो कि यदि सर पर बोझ कष्ट दे रहा है तो दूसरे प्राणी उसे दूर कर सुख दे सकते हैं। परन्तु यदि भूख और प्यास से प्राणी दुःखी हो, तो इसे स्वयं ही दूर कर सकता है (अर्थात स्वयं ही भोजन कर के और जल पी कर इस दुःख को दूर कर सकता है)।

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा ।
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यानुष्ठितकर्मणा ॥ ५५ ॥

हो यदि रोगी तुम भूजन । हो स्वस्थ्य लो स्वयं औषधिन ।।
करे यदि कोई अन्य भैषज्य । नहीं संभव हो तुम आरोग्य ।। (५५)

भावार्थः हे प्राणी, यदि तुम रोगी हो तो स्वास्थ्य लाभ के लिए तुम्हें ही औषधि लेनी पड़ेगी। यदि कोई और औषधि लेता है, तो तुम निरोग नहीं हो सकते।

वस्तुस्वरूपं स्फुटबोधचक्षुषा स्वेनैव वेद्यं न तु पण्डितेन ।
चन्द्रस्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम् ॥ ५६ ॥

मुमुक्षु जानो तत्व स्व-नयन । देख सको सम सोम स्वयं लोचन ।।
नहीं संभव हेतु मदद परिजन । करना पड़े कार्य स्व-प्रयत्न ।। (५६)

भावार्थः हे मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक, तत्व को स्वयं के नेत्र से जानो। जैसे चन्द्रमा को स्वयं के नेत्र से ही देख सकते हो, कोई और मदद नहीं कर सकता, उसी प्रकार यह कार्य (तत्व दर्शन) स्वयं के प्रयत्न से करना पड़ता है।

अविद्याकामकर्मादिपाशबन्धं विमोचितुम् ।
कः शक्नुयाद्विनात्मानं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥

अज्ञान काम कर्मादि बंधन । करो स्व-उद्यम हेतु उन्मूलन ।।
न कर सकें दूर अन्य भूजन । करें यदि कोटि कल्प प्रयत्न ।। (५७)

भावार्थः अज्ञान (अविद्या), काम (भावना), कर्मादि बंधनों को स्वयं के प्रयास से ही दूर किया का सकता है। कोई अन्य प्राणी चाहे करोड़ों कल्पों तक प्रयत्न करे, दूर नहीं कर सकता।

११. आत्म-ज्ञान का महत्व

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिध्यति नान्यथा ॥ ५८ ॥

मिले न मोक्ष करो यदि योग। सांख्य कर्म या त्यागो भोग।।
करो चाहे तुम ग्रन्थ अध्ययन। पर हो जब तुम्हें बोध पावन।।
ब्रह्म दैह्य एक तत्व बोधन। मिले तुरंत पथ अग्रवर्तिन्।।(५८)

भावार्थः योग, सांख्य ज्ञान, कर्म, भोग त्याग अथवा ग्रंथों के अध्ययन से मोक्ष नहीं मिलता। पर जब तुम्हें ब्रह्मात्मैक्य (ब्रह्म और आत्मा की एकता) का पवित्र बोध हो जाता है तो तुरंत अग्रिम मार्ग (मोक्ष प्राप्ति का मार्ग) मिल जाता है।

वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठवम्।
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते॥ ५९॥
वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥ ६०॥

वीणा वादन करे मनोरंजन। नहीं मिले राज हेतु वादन।।
उसी भांति वाणी विद्वन। धारावाहिक शब्द वाचन।। (५९)
शास्त्र व्याख्या निपुणता। करे आकर्षक व्यक्तित्वता।।
दें यह सब गुण भोग भूजन। नहीं दे सकते यह निर्मोचन।। (६०)

भावार्थः वीणा वादन मनोरंजन करता है, लेकिन राज पाट नहीं दे सकता। उसी प्रकार विद्वान पुरुषों की वाणी जो धारावाहिक शब्दों का उच्चारण करती है, निपुणता से शास्त्रों की व्याख्या करती है, व्यक्तित्व को आकर्षक करती है, यह सब गुण प्राणियों को भोग देते हैं, मोक्ष नहीं दे सकते।

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला॥ ६१॥

है निष्फल शास्त्र अध्ययन। यदि नहीं समझा तत्व भगवन।।
जान लिया यदि तत्व आत्मन। है अनावश्यक ग्रन्थ अध्ययन।। (६१)

भावार्थः यदि भगवन (परमात्म) तत्व नहीं समझा तो शास्त्र का अध्ययन निष्फल है। यदि परमात्म-तत्व को जान लिया तो ग्रन्थ पढ़ना आवश्यक नहीं है।

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञैस्तत्त्वमात्मनः ॥ ६२ ॥

नहीं पड़ो चक्र शब्द वञ्चन । दे तुम्हें कोई कथित विद्वन ।।
हो लक्ष्य केवल हे मुमुक्षजन । दें आत्म-ज्ञान ज्ञानी महन ।। (६२)

भावार्थ: किसी तथा-कथित विद्वान के शब्दजाल में मत पड़ो। हे मुमुक्ष प्राणी, केवल यही लक्ष्य हो कि ज्ञानी महात्मा आत्म-ज्ञान दें।

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना ।
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः ॥ ६३ ॥

जैसे डसा हुआ जो भूजन । सम सर्प अविद्या निरूपन ।।
नहीं देते लाभ मन्त्र योग । हो ब्रह्मज्ञान से ही अभोग ।। (६३)

भावार्थ: जैसे प्राणी को जब अविद्या समान सर्प डस लेता है, तो मन्त्र, योग आदि से कोई लाभ नहीं होता। केवल ब्रह्म ज्ञान से ही वह अभोग (बंधन मुक्त) होता है।

१२. अपरोक्षानुभव (प्रत्यक्ष ज्ञान) की आवश्यकता

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः ।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ॥ ६४ ॥

न खाएं पर कहें औषध आनन । न हों स्वस्थ्य कभी रुग्णगन ।।
सम कहें ब्रह्म ब्रह्म भूजन । बिन ज्ञान ब्रह्म न पाएं मोचन ।। (६४)

भावार्थ: मुख से औषधि बोलें पर औषधि ग्रहण न करें, तो रोगी स्वस्थ्य नहीं हो सकते। इसी भांति प्राणी ब्रह्म, ब्रह्म कहें, लेकिन ब्रह्म ज्ञान बिना (ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किए बिना) मुक्ति नहीं पा सकते।

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः ।
ब्रह्मशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्रफलैर्नृणाम् ॥ ६५ ॥

बिन किए त्याग माया भूजन । बिन किए प्राप्त तत्व बोधन ।।
केवल करें यह शब्द उच्चारन । नहीं पा सकते वह निर्मोचन ।। (६५)

भावार्थ: प्राणी को बिना माया का त्याग किए (अर्थात लौकिक सुख जो माया है उसका त्याग किए) और बिना तत्व ज्ञान पाए, केवल शब्द उच्चारण करने से मुक्ति नहीं मिल सकती।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम् ।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥ ६६ ॥

बिन किए वध इस भू द्वेषन । बिन पाए पूर्ण भू नियंत्रन ।।
कहे कोई जन है वह राजन । क्या संभव वह नियंत्रक भुवन ।। (६६)

भावार्थ: बिना शत्रुओं का वध किए एवं पृथ्वी पर नियंत्रण किए यदि कोई कहे कि वह राजा है, तो क्या वह पृथ्वी का नियंत्रक (सम्राट) हो सकता है?

आप्तोक्तिं खननं तथोपरिशिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं
निक्षेपः समपेक्षते नहि बहिः शब्दैस्तु निर्गच्छति ।
तद्वद्ब्रह्मविदोपदेशमनन ध्यानादिभिर्लभ्यते
मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः ॥ ६७ ॥

है विचार पाएं भू गढ़ा धन । करना पड़े प्रथम सर्वेक्षन ।।
फिर कर प्रयास खोदें भुवन । पा सकें तब छिपा गढ़ा धन ।।
नहीं मिलती निधि विकल्पन । सदृश्य हेतु ज्ञान आत्मन ।।
कर दूर प्रपंच हो पावन । है नितांत जाना गुरु शरन ।।
करें मनन सद्गुरु वचन । हो नित्य साधना से संपन्न ।।
नहीं संभव पाएं ज्ञान आत्मन । केवल तर्क वितर्क से भूजन ।। (६७)

भावार्थः यदि ऐसी कल्पना है कि पृथ्वी में धन गढ़ा है, तो पहले सर्वेक्षण कराना पड़ेगा, फिर प्रयत्न से भूमि खोदनी पड़ेगी, तब छिपा हुआ गढ़ा धन मिल सकेगा। केवल कल्पना से ही निधि नहीं मिलती। उसी प्रकार आत्म-ज्ञान पाने के लिए माया से दूर हो कर, पवित्र हो, सद्गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। सद्गुरु के उपदेशों पर निदिध्यासनादि (निरंतर साधना) से मनन करें। हे प्राणी, केवल तर्क वितर्क करने से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये ।
स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादाविव पण्डितैः ॥ ६८ ॥

हेतु निवृत्ति सभी भव-बंधन । करे साधक पूर्ण प्रयत्न ।।
नहीं संभव केवल कल्पन । करना पड़े घोर तप साधन ।। (६८)

भावार्थः सभी लौकिक बंधनों से छुटकारा पाने के लिए साधक को पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। केवल कल्पना से यह संभव नहीं है। इसके लिए घोर तप साधना करनी पड़ती है।

१३. प्रश्न विचार

यस्त्वयाद्य कृतः प्रश्नो वरीयाञ्छास्त्रविन्मतः ।
सूत्रप्रायो निगूढार्थो ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥ ६९ ॥

कर प्रशंसा कहें गुरु महन । हे मुमुक्ष किया जो प्रश्न ।।
कहें शास्त्रज्ञ है उत्तम । गंभीर यथार्थ योग्य ज्ञातुम् ।। (६९)

भावार्थः प्रशंसा करते हुए महात्मा गुरु कहें, 'हे मुमुक्ष (मोक्ष की इच्छा रखने वाले), जो तुमने प्रश्न किया है, उसे शास्त्रों के विद्वान् उत्तम, गंभीर, अर्थ पूर्ण एवं जानने योग्य कहते हैं।'

श्रृणुष्वावहितो विद्वन्यन्मया समुदीर्यते ।
तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबन्धाद्विमोक्ष्यसे ॥ ७० ॥

साधक सुनो तुम मेरे वचन । ध्यान मग्न तुम करो मनन ।।
हो निवृत सब लौकिक बंधन । पा सकोगे तुम ज्ञान आत्मन ।। (७०)

भावार्थः हे साधक, तुम मेरे वचन सुनो । तुम ध्यान मग्न हो मनन करो। सभी सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाकर तुम आत्म-ज्ञान पा सकोगे।

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु ।
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा न्यासः प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम् ॥ ७१ ॥
ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्व ध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुनेः ।
ततोऽविकल्पं परमेत्य विद्वान् इहैव निर्वाणसुखं समृच्छति ॥ ७२ ॥

प्रथम कर्म हेतु निर्मोचन । हो वैराग्य हृदय भव-बंधन ।।
हो विरक्ति वस्तु अस्थायिन् । कर शम दम धैर्य का पालन ।।
कर त्याग सब आसक्ति कृत्य । तदन्तर कर श्रवण गुरु दिव्य ।। (७१)
करे चिरकाल तक साधक मनन । पाए तब इच्छित ज्ञान आत्मन ।।
पा स्थिर अवस्था तब विद्वन । हो अधिकारी तब निर्मोचन ।। (७२)

भावार्थः मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रथम कर्म है कि हृदय में लौकिक बंधनों के लिए वैराग्य हो। अनित्य (अस्थायी) वस्तुओं के प्रति विरक्ति हो। शम, दम धैर्य का पालन करे। सभी आसक्ति देने वाले कर्मों का त्याग करे। फिर दिव्य गुरु (के वचनों) का श्रवण करे। चिरकाल (दीर्घ काल) तक साधक उस पर चिंतन करे। तब इच्छित आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होगी। स्थिर अवस्था (निर्विकल्पावस्था) पा कर तब वह विद्वान् मोक्ष का अधिकारी होता है।

यद्बोद्धव्यं तवेदानीमात्मानात्मविवेचनम् ।
तदुच्यते मया सम्यक्श्रुत्वात्मन्यवधारय ॥ ७३ ॥

करें गुरु तब वर्णन चेतन । सुनो जिज्ञासु धर ध्यान मन ।।
समझो भली भांति निर्देशन । पाए साधक कर मनन मन्मन् ।। (७३)

भावार्थ: तब गुरुदेव चेतना का वर्णन करेंगे। हे जिज्ञासु, उसे मन लगाकर ध्यान से सुनो। भली भांति (गुरु के) निर्देश समझो। तब इसका चिंतन करने से हे साधक, इच्छा पूर्ण होगी (अतः मोक्ष की प्राप्ति होगी)।

१४. स्थूल शरीर का वर्णन

मज्जास्थिमेदःपलरक्तचर्म त्वगाह्वयैर्धातुभिरेभिरन्वितम् ।
पादोरुवक्षोभुजपृष्ठमस्तकैः अङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ॥ ७४ ॥

मज्जा अस्थि वसा मांस असन् । चर्म शुक्र हैं सप्त धातु तन ।।
ऊरु वक्ष भुजा पीठ चरन । मस्तक आदि अंगों से अन्वयिन् ।। (७४)

भावार्थ: सात धातुओं - मज्जा, अस्थि, वसा, मांस, रुधिर, चर्म और शुक्र से यह शरीर बना है। यह जंघा, वक्ष, भुजा, पीठ, चरण और मस्तक आदि अंगों से युक्त है।

अहंममेतिप्रथितं शरीरं मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः ।
नभोनभस्वद्दहनाम्बुभूमयः सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि ॥ ७५॥

हेतु मोह कहें सब विद्वन । प्रसिद्ध 'मैं और मेरा' वर्पन् ।।
भू वायु अग्नि जल और गगन । हैं सूक्ष्म भूत जानो भूजन ।। (७५)

भावार्थ: मोह के कारण 'मैं और मेरा' रूप प्रसिद्ध है, ऐसा विद्वान् कहते हैं। पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और गगन यह सूक्ष्म भूत हैं, हे प्राणी, ऐसा समझो।

परस्परांशैर्मिलितानि भूत्वा स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतवः ।
मात्रास्तदीया विषया भवन्ति शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः ॥ ७६ ॥

जब मिलें परस्पर अवयविन् ।हो स्थूल बने तब मेदस तन ।।
इनकी तन्मात्रा हेतु भूजन । हैं पञ्च विषय कारण भव बंधन ।।(७६)

भावार्थ: जब इनके अंश परस्पर मिलते हैं तो यह स्थूल हो शारीरिक तन बनता है। प्राणियों के लिए इनकी तन्मात्रा भव बंधन के पञ्च विषय हैं।

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन ।
आयान्ति निर्यान्त्यध ऊर्ध्वमुच्चैः स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ॥ ७७॥

बंधते जो मूढ़ राग बंधन । इन विषय भोग लौकिक भूजन ।।
हो प्रेरित इन भोग कर्मन ।लेते जन्म विविध योनि भुवन ।।(७७)

भावार्थ: जो मूढ़ प्राणी इन लौकिक भोग राग बंधनों में बंध जाते हैं, वह इन भोग कर्मों से प्रेरित होकर इस पृथ्वी पर विभिन्न योनियों में जन्म लेते है।

१५. विषय निंदा

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीन भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥ ७८ ॥

करते हुए स्व-स्वभाव अनुसरन ।मध्य पञ्च विषय कथित ग्रंथन ।।
युक्त यदि शब्दादि एक अर्थन ।हो मरण पतंग भ्रमर हरिन ।।
गज मत्स्य आदि पशु कीटघ्न ।पर है युक्त पञ्च विषय भूजन ।।
कैसे बचे काल करो चिंतन ।है यह विधि विधान भगवन ।। (७८)

भावार्थ: अपने स्वभाव का अनुसरण करते हुए ग्रंथों में वर्णित पञ्च विषयों में से यदि शब्दादि एक विषय से भी कीट जैसे पतंग, भ्रमर, पशु जैसे हरिण, हाथी, मछली आदि मरण को प्राप्त होते हैं, फिर प्राणी जो पञ्च विषयों से युक्त है, वह काल से कैसे बच सकता है, इसका चिंतन करो। यह प्रभु का विधि-विधान है।

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि ।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम् ॥ ७९ ॥

विषय दोष भयावह बहुतर । विष नाग श्यामल उग्रकर ।।
हो मृत्यु भक्षण कर विष जन । पर मारे विषय हेतु वा नयन ।। (७९)

भावार्थः विषय दोष तीव्र काले सर्प के विष से भी अधिक भयावह है। विष तो इसे खाने वाले प्राणी को मारता है, परन्तु विषय तो नेत्रों के बाण से ही मार देता है।

विषयाशामहापाशाद्यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात् ।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि ॥ ८० ॥

जो हुआ मुक्त विषय भव-बंधन । है वह अधिकारी निर्मोचन ।।
नहीं पा सके मोक्ष अन्य जन । चाहे हो निपुण षष्ठ दर्शन ।। (८०)

भावार्थः जो विषय (रूपी) भव-बंधन से मुक्त है, वही मोक्ष का अधिकारी है। अन्य प्राणी चाहे वह छै दर्शन में निपुण हो, मोक्ष नहीं पा सकता।

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धिपारं प्रतियातुमुद्यतान् ।
आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात् ॥ ८१॥

हैं जो उद्यत तरें भव-बंधन । तपी मुमुक्ष यति शिष्यजन ।।
नहीं हों रत विषय एक क्षन । डुबोए पकड़ कंठ यह अवगुन ।। (८१)

भावार्थः जो वैरागी, मुमुक्ष, शिष्य भव-बंधन से तरने को उद्यत हैं, वह एक क्षण के लिए भी विषयों में रत नहीं हों। यह अवगुण उन्हें कंठ पकड़ कर डूबा देगा।

विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः ।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥ ८२ ॥

काटे जो शिष्य भव-सागर बंधन ।हेतु खड़ग वैराग्य निरूपन ।।
कर सके वह पार निर्विघ्न ।भव-सागर इस विषयी भुवन ।। (८२)

भावार्थ: जो शिष्य भव-सागर बंधन को वैराग्य रूपी तलवार से काट सकता है, वह इस विषयी पृथ्वी के भव-सागर से निर्विघ्न तर सकता है।

विषमविषय मार्गैर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः
प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि ।
हितसुजनगुरुक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या
प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि ॥ ८३ ॥

चले जो मूढ़ पथ विषय विषम ।हो प्राप्त पद पद मृत्यु जन्म ।।
है उचित समझो शिष्य यह सत्य । मिलती सिद्धि कर पालन दिव्य ।।(८३)

भावार्थ: जो मंद बुद्धि विषय के विषम मार्ग पर चलता है, वह पद पद पर मृत्यु-जन्म पाता है (अर्थात विभिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है)। हे शिष्य, इस सत्य को ठीक समझो कि दिव्य (गुरु) के पालन से सिद्धि (सफलता) मिलती है।

मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति त्यजातिदूराद्विषयान्विषं यथा ।
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥ ८४ ॥

यदि हिय इच्छा मोक्ष शिष्य । रखो समान विष दूर विषय ।।
करो नित्य तुम सम सोम सेवन । तृप्ति शम दम क्षमा मुग्धिमन ।।(८४)

भावार्थ: हे शिष्य, यदि हिय में मोक्ष की इच्छा है तो विष के समान विषय को दूर रखो। संतुष्टि, शम, दम, क्षमा और सरलता का अमृत के समान तुम नित्य सेवन करो।

१६. देहासक्ति की निंदा

अनुक्षणं यत्परिहृत्य कृत्यं अनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम् ।
देहः परार्थोऽयममुष्य पोषणे यः सज्जते स स्वमनेन हन्ति ॥ ८५ ॥

त्याग महत कर्तव्य जो भूजन । पड़ा अविद्याकृत आदि बंधन ।।
लगा रहे सदा स्व-तन पोषन । करता वह स्व-घात मूढ़जन ।।(८५)

भावार्थ: जो प्राणी मुख्य कर्तव्य का त्याग करता है, अविद्याकृत आदि बंधनों में पड़ा रहता है, सदैव अपने शरीर के पोषण में लगा रहता है, वह मूर्ख स्व-घात करता है।

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति ।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदि तर्तुं स गच्छति ॥ ८६ ॥

इच्छा प्राप्ति ज्ञान-आत्मन । पर पड़ा रहे स्व-तन पोषन ।।
समझो उसे काष्ठ विस्मापन । करना चाहे नदी उत्तरन ।। (८६)

भावार्थ: आत्म-ज्ञान की इच्छा है परन्तु अपने शरीर के पोषण में जो पड़ा है, उसे ऐसा समझो जैसा कि लकड़ी की कल्पना से (बिना नाव के) नदी पार करना चाहता है।

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु ।
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति ॥ ८७ ॥

रखे मोह जो शरीर भूजन । समझो तुम इसे मुमुक्ष मरन ।।
जीत सका जन जो मोह-बंधन । पा सके वही दिव्य निर्मोचन ।। (८७)

भावार्थ: जो प्राणी शरीर का मोह रखता है, उस मोक्ष की इच्छा रखने वाले का मरण समझो। जो मोह बंधन को जीत सकता है, वही दिव्य मोक्ष पा सकता है।

मोहं जहि महामृत्युं देहदारसुतादिषु ।
यं जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ८८ ॥

हे मुमुक्ष सुन यह सत्य वचन । छोड़ मोह पुत्र नारि तन ।।
हैं यह सम महामृत्यु भूजन । जीत इन्हें प्राप्त पद भगवन ।। (८८)

भावार्थ: हे मोक्ष की इच्छा रखने वाले प्राणी, पुत्र, स्त्री, शरीर का मोह छोड़। यह प्राणी के लिए महामृत्यु के समान हैं। इन्हें जीत भगवान् के परम पद को प्राप्त कर।

१७. स्थूल शरीर

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम् ।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः ॥ ८९॥

युक्त त्वचा मांस रक्त स्नावन । वसा स्निग्धा और अस्थिगन ।।
भरा हुआ मल मूत्र यह तन । समझो अति निंदनीय भूजन ।। (८९)

भावार्थ: त्वचा, मांस, रक्त, स्नायु, चर्बी, मज्जा और हड्डियों के समूह से युक्त, मल, मूत्र से भरा यह शरीर, हे प्राणी, अति निंदनीय है।

पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा ।
समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः
अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः ॥ ९० ॥

हुआ उत्पन्न हेतु पञ्चतत्व । गगन पवन जल भू अग्नितत्व ।।
कर्मानुसार पूर्व यह तन । समझो इसे चित्त भोग आयतन ।।
दे प्रतीति जाग्रत आसन । दे यह भौतिक विषय वेदन ।। (९०)

भावार्थः आकाश, वायु, जल, पृथ्वी और अग्नितत्व, इन पंचतत्वों के कारण पूर्व कर्मानुसार उत्पन्न हुए इस शरीर को आत्मा का भोग स्थान समझो। इसकी प्रतीति जाग्रत अवस्था है जो भौतिक विषयों का अनुभव देती है।

बाह्येन्द्रियैः स्थूलपदार्थसेवां स्रक्चन्दनस्त्र्यादिविचित्ररूपाम् ।
करोति जीवः स्वयमेतदात्मना तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषोऽस्य जागरे ॥ ९१॥

करता जब भोग लौकिक भूजन । समान माला नारि चन्दन ।।
नाना प्रकार भौतिक अर्थन । हेतु बाह्य इन्द्रियाँ सेवन ।।
कहते इसे जाग्रत आसन । है इसमें प्रधान स्थूल तन ।। (९१)

भावार्थः जब प्राणी लौकिक सुख माला, चन्दन, नारि आदि का भोग करता है, बाह्य इन्द्रियों के द्वारा भांति भांति के भौतिक विषयों का सेवन करता है, इसे जाग्रत अवस्था कहते हैं जिसमें स्थूल शरीर की प्रधानता है।

सर्वापि बाह्यसंसारः पुरुषस्य यदाश्रयः ।
विद्धि देहमिदं स्थूलं गृहवद्गृहमेधिनः ॥ ९२॥

हो आश्रय जब लौकिक विषय । होती प्रतीत जन जग बाह्य ।।
समान गृह गृहस्थ भूजन । समझो उसे तुम भौतिक तन ।। (९२)

भावार्थः जब इन भौतिक विषयों पर प्राणी आश्रित होता है, तब उसे बाह्य जगत की प्रतीति होती है (अतः अंतरात्मा को नहीं सुन सकता)। उसे तुम प्राणी के गृहस्थ घर के समान सांसारिक शरीर समझो।

स्थूलस्य संभवजरामरणानि धर्माः
स्थौल्यादयो बहुविधाः शिशुताद्यवस्थाः ।
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधामयाः स्युः
पूजावमानबहुमानमुखा विशेषाः ॥ ९३ ॥

हैं वृद्ध स्थूलता जन्म मरन । समझो जन धर्म भौतिक तन ।।
हैं बाल युवा वृद्ध स्थिति । वर्णाश्रम नियम यम प्रस्तुति ।।
समझो तुम इनकी विशेषता । मान अपमान और पूज्यता ।। (९३)

भावार्थ: हे प्राणी, वृद्ध, स्थूलता, जन्म, मरण, इन्हें भौतिक शरीर का धर्म समझो। बाल, युवा, वृद्ध, यह अवस्थाएं हैं। वर्णाश्रम प्राणियों के लिए नियम यम की प्रस्तुति हैं। इनकी विशेषता मान, अपमान, पूज्य भाव समझो।

१८. दस इन्द्रियां

बुद्धीन्द्रियाणि श्रवणं त्वगक्षि घ्राणं च जिव्हा विषयावबोधनात् ।
वाक्पाणिपादा गुदमप्युपस्थः कर्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु ॥ ९४ ॥

हैं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ श्रवन । त्वचा नासिका जिव्या नयन ।।
दें यह ज्ञान भौतिक अर्थन । पर जिनका झुकाव कर्मन ।।
वह पञ्च कर्मेन्द्रियाँ वचन । हस्त पग गुद्गह और जनन ।। (९४)

भावार्थ: पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, कर्ण, त्वचा, नासिका, जिव्या और नेत्र। यह भौतिक विषयों का ज्ञान देतीं हैं। परन्तु जिनका झुकाव कर्म की और है, वह पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय।

१९. अन्तःकरणचतुष्टय

निगद्यतेऽन्तःकरणं मनोधीः अहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः ।
मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभिः बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः ॥ ९५ ॥

हेतु स्व-आचरण है अंतःकरन । बुद्धि चित्त अहंकार और मन ।।
हेतु संकल्प विकल्प अपने मन । करे निश्चय पदार्थ भूजन ।। (९५)

भावार्थः स्व-आचरण के कारण अंतःकरण बुद्धि, चित्त, अहंकार और मन है। अपने मन के संकल्प विकल्प के कारण प्राणी पदार्थ का निश्चय करता है (अर्थात भौतिक विषयों के भोग का निश्चय करता है।

अत्राभिमाना दहमित्यहंकृतिः ।
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम् ॥ ९६ ॥

इस हेतु बुद्धि कहे अहम् अहम् । होता दर्प इस हेतु उत्पन्न ।।
और करे जब जन इष्ट चिंतन । कहें चैतन्य इसे बुद्धिवन ।। (९६)

भावार्थः इस कारण बुद्धि अहम् अहम् (मैं मैं) कहती है जिससे अहंकार उत्पन्न होता है। परन्तु जब प्राणी अपने इष्ट का चिंतन करता है तब इसको बुद्धिमान सच्चिदानंद (चित्त) कहते हैं।

२०. पंचप्राण

प्राणापानव्यानोदानसमाना भवत्यसौ प्राणः ।
स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतिभेदात्सुवर्णसलिलादिवत् ॥ ९७ ॥

है प्राण सम जल और कंचन । हेतु विकार वृत्ति विवेचन ।।
कहें पञ्च नाम जैसे अपान । प्राण व्यान उदान व् समान ।। (९७)

भावार्थः जल और स्वर्ण के समान प्राण को विकार के कारण वृत्ति भेद से पांच नामों से कहते हैं जैसे अपान, प्राण, व्यान, उदान और समान।

२१. सूक्ष्म शरीर

वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च प्राणादि पञ्चाभ्रमुखानि पञ्च ।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ ९८ ॥

वागादि पञ्च कर्मेन्द्रियाँ। श्रवणादि पञ्च ज्ञानेद्रियाँ ।।
प्राणादि पञ्च प्राण तत्व। नभ आदि पञ्च भूत अस्तित्व ।।
बुद्धि आदि भूजन अंतःकरन। समूह चतुष्ट्य हेतु साधन ।।
अविद्या काम और कर्मन। कहलाते हैं यह सूक्ष्म तन ।। (९८)

भावार्थः वागादि पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, श्रवणादि पञ्च ज्ञानेद्रियाँ, प्राणादि पञ्च प्राण तत्व, नभ आदि पञ्च भूत तत्व, बुद्धि आदि प्राणियों के अंतःकरण, साधना के लिए चार समूह (नित्य-अनित्य वस्तु विवेक, सुख दुःख में समान, वैराग्य और मुमुक्षुत्व), अविद्या, काम और कर्म, यह सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं।

इदं शरीरं श्रृणु सूक्ष्मसंज्ञितं लिङ्गं त्वपञ्चीकृतसंभवम् ।
सवासनं कर्मफलानुभावकं स्वाज्ञानतोऽनादिरुपाधिरात्मनः ॥ ९९ ॥

होता सूक्ष्म अथवा लिंग तन। हेतु अपंचीकृत भूत उत्पन्न ।।
है यह युक्त वासना दे वेदन। कर्म फल समझो तुम भूजन ।।
हेतु अज्ञान दिव्य स्व-निरूपन। है यह उपाधि अनादि आत्मन ।। (९९)

भावार्थः सूक्ष्म अथवा लिंग शरीर अपंचीकृत भूतों (जो पांच स्थूल पंचमहाभूतों - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश में विभाजित या मिश्रित न हुआ हो) के कारण उत्पन्न होता है। यह वासना से युक्त और कर्म फल देने वाला होता है, ऐसा हे प्राणी, समझो। दिव्य स्व-स्वरुप का ज्ञान न होने के कारण यह आत्मा की अनादि उपाधि है।

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र ।
स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत् कालीननानाविधवासनाभिः ॥
कर्त्रादिभावं प्रतिपद्य राजते यत्र स्वयं भाति ह्ययं परात्मा ॥ १०० ॥

कहें विद्वन इसे दशा स्वप्न। होता वह वहां उद्द्योतन ।।
यदि स्व-प्रकाश मध्य स्वप्न। है यह रुप परात्मा चेतन ।।
होता उस काल यह संवेदन। है बुद्धि दशा काल जाग्रन ।।
हों तब नाना वसन उत्पन्न। कर्ता आदि भावना लौकन ।। (१००)

भावार्थ: विद्वान् इस अवस्था को स्वप्न कहते हैं। वह (यह भावना) यहां (स्वप्न में) प्रकाशित होती है। यदि स्वप्न में स्व-प्रकाश है (अर्थात बुद्धि जाग्रत अवस्था में है) तो यह परात्मा चेतन स्वरुप है। उस समय ऐसी प्रतीति होती है कि बुद्धि जाग्रत काल अवस्था में है। यह नाना प्रकार की वासनाओं और कर्ता आदि लौकिक भावनाओं को जन्म देती है।

धीमात्रकोपाधिरशेषसाक्षी न लिप्यते तत्कृतकर्मलेशैः ।
यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभिः न लिप्यते किंचिदुपाधिना कृतैः ॥ १०१ ॥

बुद्धि जिसकी प्राज्ञ शिष्यगन । करे आवरण आत्मा पावन ।।
नहीं हो लिप्त वह सर्ववित । तनिक कर्मादि भौतिक अचित ।।
चूँकि पाता वह असंग स्थिति । अतः न लिप्त कर्म उपाधि कृति ।। (१०१)

भावार्थ: हे बुद्धिमान शिष्यगण, जिसकी बुद्धि शुद्ध आत्मा को सीमित कर देती है, वह सर्वज्ञ तनिक भी कर्मादि लौकिक कर्मों में लिप्त नहीं होता क्योंकि वह असंग स्थिति को पा लेता है जिससे कर्म आदि उपाधि विषयों (शरीर, मन, या माया) में लिप्त नहीं होता।

सर्वव्यापृतिकरणं लिङ्गमिदं स्याच्चिदात्मनः पुंसः ।
वास्यादिकमिव तक्षणस्तेनैवात्मा भवत्यसङ्गोऽयम् ॥ १०२ ॥

समझो करण कर्म लिंग तन । हेतु शुद्ध चिदात्म भूजन ।।
सम वसूला तक्षक बुद्धिवन । रहती इस हेतु असंग आत्मन ।। (१०२)

भावार्थ: शुद्ध चिदात्म पुरुष के लिए सम्पूर्ण कर्म का करण लिंग देह है। हे बुद्धिवान, यह बढ़ई के वसूले की भांति है। इस कारण आत्मा असंग रहती है (जिस प्रकार वसूला लकड़ी से असंग रहता है यद्यपि वह कृति की रचना करता है, उसी प्रकार यद्यपि आत्मा लिंग देह उत्पत्ति में हेतु है, परन्तु देह से असंग रहती है)।

अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः सौगुण्यवैगुण्यवशाद्धि चक्षुषः ।
बाधिर्यमूकत्वमुखास्तथैव श्रोत्रादिधर्मा न तु वेत्तुरात्मनः ॥ १०३ ॥

दिखता स्पष्ट धुंधला या घन । हेतु सदोष या निर्दोष नयन ।।
है यह धर्म न अन्य पर नयन । सदृश बहरा या गूंगापन ।।
है धर्म कर्ण पर नहीं अन्य । नहीं यह धर्म सर्वज्ञ आत्मन ।। (१०३)

भावार्थः स्पष्ट दिखना, धुंधला दिखना अथवा अंधापन, यह सदोष या निर्दोष नेत्र के कारण होता है। यह किसी अन्य का नहीं परन्तु नेत्र का धर्म हैं। उसी प्रकार बहरा अथवा गूंगापन कानों का धर्म है, किसी अन्य का नहीं। यह सर्वज्ञ आत्मा के धर्म नहीं हैं।

२२. प्राण के धर्म

उच्छ्वासनिःश्वासविजृम्भणक्षुत् प्रस्यन्दनाद्युत्क्रमणादिकाः क्रियाः ।
प्राणादिकर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः प्राणस्य धर्मावशनापिपासे ॥ १०४ ॥

श्वास प्रश्वास छींक जृम्भन । कम्पन प्लवन आदि भव कर्मन ।।
समझो तत्वज्ञ प्राण के धर्म । भूख प्यास भी इनके कर्म ।। (१०४)

भावार्थः श्वास, प्रश्वास, छींक, जम्भाई, कम्पन, कूदना आदि लौकिक कर्म तत्वज्ञ प्राण के समझो। भूख प्यास भी इन्हीं के कर्म हैं।

२३. अहंकार

अन्तःकरणमेतेषु चक्षुरादिषु वर्ष्मणि ।
अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासतेजसा ॥ १०५ ॥

इन्द्रियाँ आदि समान नयन । स्थित अंदर भूजन अंतःकरन ।।
करें व्याप्त तेज चिदाभास । रहता 'मैं पन' दर्प आभास ।। (१०५)

भावार्थः प्राणी के अंदर अंतःकरण में स्थित नेत्र समान इन्द्रियां आदि चिदाभास (ब्रह्म के प्रकाश का वह आभास जिसमें मैं पन का अनुभव होता है) के तेज को व्याप्त करती हैं जिससे 'मैं पन' के अभिमान का आभास होता है।

अहंकारः स विज्ञेयः कर्ता भोक्ताभिमान्ययम् ।
सत्त्वादिगुणयोगेन चावस्थात्रयमश्नुते ॥ १०६ ॥

समझो इसे अहंकार भूजन । यह कर्ता भोक्ता दर्प 'मैं पन' ।।
देती यही अवस्था तीन । सत रज तम सम गुणों से लीन ।। (१०६)

भावार्थः हे प्राणी, इसे अहंकार समझो। यह कर्ता, भोक्ता और 'मैं पन' का मद है। यही तीन अवस्था सत्व, रज और तम समान गुण देती है।

विषयाणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये ।
सुखं दुःखं च तद्धर्मः सदानन्दस्य नात्मनः ॥ १०७ ॥

होता सुखी काल अनुकूल । होता दुःखी जब प्रतिकूल ।।
सुख दुःख हैं इस अवलेपन । नहीं चित् सदानंद निरूपन ।। (१०७)

भावार्थः जब अनुकूल समय हो, तब सुखी होता है। प्रतिकूल (समय) होने पर दुःखी होता है। सुख और दुःख इस अहंकार के रूप हैं। नित्यानंद आत्मा के स्वरुप नहीं।

२४. प्रेम की आत्मार्थता

आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान्विषयो न स्वतः प्रियः ।
स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यतः ॥ १०८ ॥

नहीं होते प्रिय स्वतः विषय । होते यह प्रिय एव चित् दिव्य ।।
समझो भली भांति मुमुक्षजन । स्वतः प्रियतम मात्र आत्मन ।। (१०८)

भावार्थ: विषय स्वतः प्रिय नहीं होते। यह केवल दिव्य आत्मा के लिए प्रिय होते हैं। हे मुमुक्षजन, भली भांति समझो कि मात्र आत्मा ही स्वतः प्रियतम है।

तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःखं कदाचन ।
यत्सुषुप्तौ   निर्विषय   आत्मानन्दोऽनुभूयते ॥
श्रुतिः   प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं   च   जाग्रति ॥ १०९ ॥

है इस कारण सदैव आत्मन । आनंद   स्वरुप   रहित खेदन ।।
रहता अभाव विषय निश्चेतन । फिर भी हो अनुभव आनन्दिन् ।।
हैं प्रमाण इस हेतु सनातन । श्रुति   वेद   सम   आदि ग्रंथन ।। (१०९)

भावार्थ: इस कारण आत्मा सदैव आनंद स्वरुप दुःख से रहित है। निश्चेतन (सुषप्ति) में विषय का अभाव होता है, फिर भी आनंद का अनुभव होता है। इसके प्रमाण सनातन श्रुति, वेद सम आदि ग्रन्थ हैं।

२५. माया निरूपण

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं   प्रसूयते ॥ ११०॥

जो   अव्यक्त   त्रिगुणात्मन । अनादि अविद्या शक्ति महन ।।
करें उन परमेश्वर सब पूजन । होता उत्पन्न उन हेतु भुवन ।।
होता यह हेतु हरि विस्मापन । होता यह भाव्य कर्म भगवन ।। (११०)

भावार्थ: जो जो अव्यक्त, त्रिगुणात्म, अनादि, अविद्या और परा-शक्ति हैं, उन परमेश्वर की हम सब पूजा करते हैं। उन्हीं से संसार की उत्पत्ति होती है। हे प्राणी, यह प्रभु की माया के कारण होता है। ऐसा अनुमान भगवान् के कार्य से होता है।

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो ।
साङ्गाप्यनङ्गा   ह्युभयात्मिका   नो   महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ॥ १११॥

न सत न असत न सद्सत न भिन्न । न अभिन्न न उभय भिन्नाभिन्न ।।
हैं न सहित अंग न रहित अंग । स्वरुप प्रभु न सांगानंग ।।
है उनका अत्यंत अद्भुत रूप । कहें वेद अनिवर्चनीयरूप ।।(१११)

भावार्थ: प्रभु का स्वरुप न सत है, न असत है, न सद्सत है (दोनों ही सत एवं असत), न भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्नाभिन्न (दोनों ही भिन्न एवं अभिन्न) है, न अंग सहित (साकार) है, न अंग रहित (निराकार) है, न सांगानंग (दोनों ही साकार एवं निराकार) है। उनका अत्यंत अद्भुत रूप है जिसे वेद अनिर्वचनीय (जिसका विवरण न किया जा सके) रूप कहते हैं।

शुद्धाद्वयब्रह्मविभोधनाश्या सर्पभ्रमो रज्जुविवेकतो यथा ।
रजस्तमःसत्त्वमिति प्रसिद्धा गुणास्तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः ॥ ११२ ॥

हो जैसे भ्रम सर्प देख रशन । होता दूर भ्रम जब द्योतन ।।
हो दूर अज्ञान सद्दश प्राप्ति । ब्रह्म ज्ञान हेतु हरि प्रीति ।।
है यह अद्वितीय अति पावन । हेतु फल स्व-कर्म हर भूजन ।।
होते उत्पन्न प्रसिद्ध त्रिगुण । सत रज और तमस समान गुण ।।(११२)

भावार्थ: जिस प्रकार रस्सी को देख सर्प का भ्रम होने पर प्रकाश से संशय दूर होता है, उसी प्रकार प्रभु की कृपा से ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति पर अज्ञान दूर होता है। यह (ब्रह्म ज्ञान) अति पवित्र एवं अद्वितीय है। प्रत्येक प्राणी में अपने कर्मों के अनुसार प्रसिद्ध त्रिगुणों, सत, रज और तमस समान गुणों, का उद्भव होता है।

२६. रजोगुण

विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।
रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखादयो ये मनसो विकाराः ॥ ११३ ॥

हेतु जिन कर्म भटके मन जन । होते हेतु रजोगुण उत्पन्न ।।
हों इन हेतु रागादि खेदन । मन विकार हो भग्न साधन ।।
हैं यह कर्म भव साधारन । प्रचलित यह काल सनातन ।। (११३)

भावार्थ: जिन कर्मों के कारण प्राणी का मन भटकता है, वह रजोगुण के कारण उत्पन्न होते हैं। इसी कारण रागादि दुःख, मन के विकार होते हैं जिससे साधना भंग होती है। यह साधारण लौकिक कर्म हैं जो सनातन काल से चले आए रहे हैं।

कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूया अहंकारेर्ष्यामत्सराद्यास्तु घोराः ।
धर्मा एते राजसाः पुम्प्रवृत्तिः यस्मादेषा तद्रजो बन्धहेतुः ॥ ११४ ॥

काम क्रोध लोभ दम्भ असूयन । अभिमान ईर्ष्या और जलन ।।
हैं यह रजोगुण घोर धर्म । होते हेतु भव-बंधन यह कर्म ।। (११४)

भावार्थ: काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, दूसरों में दोष ढूंढना, अभिमान, ईर्ष्या, जलन (आदि) यह रजोगुण के घोर धर्म हैं। यह कर्म लौकिक बंधन के कारण होते हैं।

२७. तमोगुण

एषावृतिर्नाम तमोगुणस्य शक्तिर्मया वस्त्ववभासतेऽन्यथा ।
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेः विक्षेपशक्तेः प्रवणस्य हेतुः ॥ ११५ ॥

जब रहता विचलित अति मन । लगतीं वस्तु समान अश्मन् ।।
समझो यह तमोगुण धर्म । है जन्म-मरण हेतु यह कर्म ।।
करता विक्षेपित यह भूजन । है यही मुख्य कारण खेदन ।। (११५)

भावार्थ: जब मन अत्यंत विचलित रहे, हर वस्तु धूमिल लगे, इसे तमोगुण का धर्म समझो। यह कर्म जन्म-मृत्यु का कारण है। यह प्राणी को भटकाता है और दुःख का मुख्य कारण है।

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्तसूक्ष्मात्मदृग्
व्यालीढस्तमसा न वेत्ति बहुधा संबोधितोऽपि स्फुटम् ।
भ्रान्त्यारोपितमेव साधु कलयत्यालम्बते तद्गुणान्
हन्तासौ प्रबला दुरन्ततमसः शक्तिर्महत्यावृतिः ॥ ११६ ॥

हुआ जो ग्रस्त तम भूजन । हो यद्यपि वह ज्ञानी विद्वन ।।
समझता हो प्रवृद्ध ग्रंथन । प्रत्येक सूक्ष्म पहलू भगवन ।।
पर वह जन डूबा विस्मापन । समझे हैं सत्य विषय भुवन ।।
लेता आश्रय इन असत्य गुण । हैं जो महत आवरण तमोगुण ।। (११६)

भावार्थ: जो प्राणी तम से ग्रस्त है, वह यद्यपि ज्ञानी हो, विद्वान् हो, ग्रंथों को गहन रूप से समझता हो, प्रभु के प्रत्येक सूक्ष्म पहलू को समझता हो, पर वह भ्रम में रहने वाला विश्व के विषयों को ही सत्य समझता है। वह इन असत्य गुणों का आश्रय लेता है जो तमोगुण के महत आवरण हैं।

अभावना वा विपरीतभावना असंभावना विप्रतिपत्तिरस्याः ।
संसर्गयुक्तं न विमुञ्चति ध्रुवं विक्षेपशक्तिः क्षपयत्यजस्रम् ॥ ११७ ॥

हेतु युक्त संसर्ग यह आवरन । रहता ग्रस्त गुण तम निन्द्यन ।।
रहता भाव अभाव अनुपपन्न । विरोधाभास आदि उसके मन ।। (११७)

भावार्थ: इस आवरण के संसर्ग से युक्त वह निंदनीय तम गुण से ग्रस्त रहता है। उसके मन में अभाव, विलोम-भाव, विरोधाभास अदि रहते हैं।

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्रा प्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः ।
एतैः प्रयुक्तो नहि वेत्ति किंचिन् निद्रालुवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति ॥ ११८ ॥

अज्ञान आलस्य जड़ता शयन । प्रमाद मूढ़ता हैं तम चिह्न ।।
युक्त यह गुण हो अबुद्धि जन । रहे सम स्तम्भ जड़वत स्वापन ।। (११८)

भावार्थ: अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद, मूढ़ता, यह तम के चिह्न हैं। इनसे युक्त प्राणी बुद्धि रहित होता है। वह स्तम्भ समान जड़वत और निद्रालु रहता है।

२८. सत्वगुण

सत्त्वं विशुद्धं जलवत्तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते ।
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन् प्रकाशयत्यर्क इवाखिलं जडम् ॥ ११९ ॥

जल समान है सत्व गुण पावन । पर यदि हो रज व् तमस मिलन ।।
बनता हेतु स्वभाव भूजन । हो प्रभावित तब स्व-छवि जन ।।
करता प्रकाशित सम द्युवन् । समस्त जड़ पदार्थ इस भुवन ।। (११९)

भावार्थ: सत्वगुण जल के समान पवित्र है, पर यदि रज और तम से मिल जाता है तो प्राणी के स्वभाव का हेतु बन जाता है। अपने छवि से प्रभावित होकर वह प्राणी सूर्य के समान इस पृथ्वी पर जड़ पदार्थों को प्रकाशित करता है।

मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्ति धर्माः त्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः ।
श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षता च दैवी च सम्पत्तिरसन्निवृत्तिः ॥ १२० ॥

विनम्रता यम नियम पालन । श्रद्धा भक्ति इच्छा मोचन ।।
त्याग असत युक्त दिव्य संपत्ति । यह फल सत्व रज तम समागति ।। (१२०)

भावार्थ: विनम्रता, यम-नियम पालन, श्रद्धा, भक्ति , मोक्ष की इच्छा , असत का त्याग, युक्त दिव्य संपत्ति, यह फल रज, तम से मिश्रित तत्व के हैं।

विशुद्धसत्त्वस्य गुणाः प्रसादः स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशान्तिः ।
तृप्तिः प्रहर्षः परमात्मनिष्ठा यया सदानन्दरसं समृच्छति ॥ १२१ ॥

आनंदता तृप्ति आत्म-बोधन । परम शान्ति सुख अवबोधन ।।
स्थित परमात्म भाव पावन । हैं यह शुद्ध सत्वगुण लक्षन ।।
करे प्राप्त तब निर्मोचन । हों यह गुण स्थित मुमुक्ष तन ।। (१२१)

भावार्थ: आनंदता, तृप्ति, आत्म-बोध, परम शान्ति, सुख का अनुभव, परमात्म में स्थित, पवित्र भाव, यह शुद्ध सत्वगुण के लक्षण हैं। जब यह गुण मुमुक्ष के शरीर में स्थित होते हैं, तब उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

२९. कारण शरीर

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः ।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः ॥ १२२ ॥

हेतु इन त्रिगुण निरूपन । किया यहां अव्यक्त वर्णन ।।
समझो इसे तुम तन आत्मन । है दशा सुषुप्ति कहें ग्रंथन ।।
हो जातीं लीन प्रवृत्ति । सब यहां भूजन चित्तवृत्ति ।। (१२२)

भावार्थ: इन त्रिगुणों के निरूपण से यहां अव्यक्त का वर्णन किया है। इसे तुम आत्मा का शरीर समझो। ग्रन्थ इसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। यहां प्राणी की बुद्धि की सम्पूर्ण वृत्तियाँ लीन हो जातीं हैं।

सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तिः बीजात्मनावस्थितिरेव बुद्धेः ।
सुषुप्तिरेतस्य किल प्रतीतिः किंचिन्न वेद्मीति जगत्प्रसिद्धेः ॥ १२३ ॥

हो जाता ज्ञान निरुद्विग्न । होती स्थिर बुद्धि बीज वर्पन् ।।
है यह सुषुप्ति दशा भूजन । लगता यह नासमझ वह जन ।।
ऐसी उक्ति प्रसिद्ध भुवन । रहता भ्रमवश इसमें भूजन ।। (१२३)

भावार्थ: ज्ञान शांत हो जाता है। बुद्धि बीज स्वरुप में स्थिर हो जाती है। यह प्राणी की सुषुप्ति दशा है। प्रतीति होती है कि प्राणी नासमझ है, ऐसी उक्ति जग प्रसिद्ध है। इसमें प्राणी भ्रम में रहता है।

३०. अनात्म-निरूपण

देहेन्द्रियप्राणमनोऽहमादयः सर्वे विकारा विषयाः सुखादयः ।
व्योमादिभूतान्यखिलं न विश्वं अव्यक्तपर्यन्तमिदं ह्यनात्मा ॥ १२४ ॥

शरीर इन्द्रिय प्राण और मन ।अहंकार आदि सब दुर्गुन ।।
सुखादि सभी विषय भुवन ।भूत और आकाशादि लक्षन ।।
समस्त भू ब्रह्माण्ड अव्यक्त ।समझो इन्हें अनात्मा भक्त ।। (१२४)

भावार्थ: शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और अहंकार आदि सब दुर्गुण, सुखादि सभी लौकिक विषय, भूत और आकाशादि लक्षण, समस्त अव्यक्त पृथ्वी एवं ब्रह्माण्ड, हे भक्त, इन्हें अनात्मा समझो।

माया मायाकार्यं सर्वं महदादिदेहपर्यन्तम् ।
असदिदमनात्मतत्त्वं विद्धि त्वं मरुमरीचिकाकल्पम् ॥ १२५ ॥

माया और सब तत्व परम ।हुए हेतु इन जो सभी कर्म ।।
हैं समान मरू मारीचिका ।असत अनात्म और मायिका ।।(१२५)

भावार्थ: माया और सब परम तत्व (जिनसे मन, बुद्धि और अन्य सभी तत्व उत्पन्न होते हैं) के द्वारा किए गए सब कर्म रेगिस्तान के मारीचिका के समान असत, अनात्म और मायावी हैं।

३१. आत्म-निरूपण

अथ ते संप्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः ।
यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तः कैवल्यमश्नुते ॥ १२६ ॥

करूँ मैं तुझे अब वर्णन । महत स्वरुप सर्वज्ञ भगवन ।।
समझ जिसे छूटें सब बंधन । पाता भूजन तब निर्मोचन ।। (१२६)

भावार्थ: अब मैं तुझे महान सर्वज्ञ परमात्मा का स्वरुप वर्णन करता हूँ जिसे समझ कर सब बंधन छूट जाते हैं और प्राणी मोक्ष की प्राप्ति करता है।

अस्ति कश्चित्स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः ।
अवस्थात्रयसाक्षी संपञ्चकोशविलक्ष्यणः ॥ १२७ ॥

है कोई स्वयं नित्य पदार्थ । आधार अहम् बोध यथार्थ ।।
साक्षी त्रि-अवस्था भूजन । सम बाल युवा और वृद्धन ।।
है फिर भी सम पञ्च आवरन । ढक लेता जो आत्मा भूजन ।। (१२७)

भावार्थ: कोई स्वयं नित्य पदार्थ है जो अहम् का सत्य बोध कराता है, जो प्राणी की तीनों अवस्थाएं - बाल, युवक और वृद्ध) का साक्षी है, फिर भी पञ्च आवरणों (अन्नमय - भौतिक शरीर, प्राणमय - ऊर्जा/श्वास, मनोमय - मन/भावनाएं, विज्ञानमय - बुद्धि/विवेक और आनंदमय - परमानंद का स्तर) की भांति प्राणी की आत्मा को ढक लेता है।

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
बुद्धितद्वृत्तिसद्भावम भावमहमित्ययम् ॥ १२८ ॥
यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन ।
यश्चेतयति बुद्ध्यादि न तद्यं चेतयत्ययम् ॥ १२९ ॥

जाने रहता स्थित अहम् भाव ।हो बुद्धि वृत्ति कोई प्रभाव ।।
हों यह सक्रिय या अकर्मन ।जाग्रत सुषुप्ति और स्वप्न ।।(१२८)
देखता वह स्वयं सब भूजन ।पर रहे स्वयं अदृश्य त्रिभुवन ।।
करता वह प्रकाशित बुद्धि ।पर न वह प्रकाशित हेतु बुद्धि ।।(१२९)

भावार्थ: जो जानता है कि अहम भाव स्थित रहता है चाहे बुद्धि और वृत्तियाँ का कोई भी प्रभाव हो, वह (बुद्धि और उसकी वृत्तियाँ) जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न अवस्थाओं में सक्रिय या निष्क्रिय, स्वयं को सब प्राणियों में देखता है परन्तु स्वयं तीनों लोकों में अदृश्य रहता है। वह बुद्धि को प्रकाशित करता है, परन्तु बुद्धि उसे प्रकाशित नहीं करती।

येन विश्वमिदं व्याप्तं यं न व्याप्नोति किंचन ।
अभारूपमिदं सर्वं यं भान्त्यमनुभात्ययम् ॥ १३० ॥

है उनमें व्याप्त त्रिभुवन ।पर नहीं व्याप्त उनमें भगवन ।।
होता भासित यह त्रिभुवन ।करते उवाच जब प्रभु वचन ।।(१३०)

भावार्थः उनमें त्रिभुवन व्याप्त है, परन्तु कोई भगवान् को व्याप्त नहीं कर सकता। भगवान् के बोलने से ही यह संसार भासित (बोलता) होता है।

यस्य सन्निधिमात्रेण देहेन्द्रियमनोधियः ।
विषयेषु स्वकीयेषु वर्तन्ते प्रेरिता इव ॥ १३१ ॥

होते प्रेरित तन इन्द्रिय मन ।बुद्धि आदि उनके आसन्न ।।
करते कर्म जन स्व-विषय ।करें जब प्रेरित उन्हें दिव्य ।।(१३१)

भावार्थ: उनके सामीप्य से तन, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि प्रेरित होते हैं। जब दिव्य प्रेरणा देते हैं तो प्राणी अपने विषय कर्म करते हैं।

अहङ्कारादिदेहान्ता विषयाश्च सुखादयः ।
वेद्यन्ते घटवद्येन नित्यबोधस्वरूपिणा ॥ १३२ ॥

मद आदि सब विषय सुख भूजन । भोगें सब जो पर्यन्त जीवन ।।
होता बोध जब कृपा भगवन । लगे सम घट समक्ष ब्रह्म बोधन ।। (१३२)

भावार्थः अहंकार आदि सभी सुख जो प्राणी जीवन पर्यन्त भोगते हैं, प्रभु की कृपा से बोध (आत्म-ज्ञान प्राप्त होने पर) होने पर, ब्रह्म-ज्ञान के समक्ष घट (मिट्टी के शीघ्र टूट जाने वाले बर्तन) के समान लगते हैं।

एषोऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः ।
सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ १३३ ॥

जो एक रूप और चित्त पावन । अखंड आनंद अनुभव वर्पन् ।।
अंतरात्मा पुरुष सनातन । करें कर्म जिनके निर्देशन ।।
कर्मेन्द्रियाँ और यह जीवन । हैं वही नित्य श्री भगवन ।। (१३३)

भावार्थः जो एक रूप और शुद्ध चित्त वाले हैं, अखंड आंनद का अनभुव देते हैं, अंतरात्मा और पुराण पुरुष हैं, कर्मेन्द्रियाँ और यह जीवन (प्राण) जिनके निर्देश पर कर्म करते हैं, वही नित्य श्री भगवान् हैं।

अत्रैव सत्त्वात्मनि धीगुहायां अव्याकृताकाश उशत्प्रकाशः ।
आकाश उच्चै रविवत्प्रकाशते स्वतेजसा विश्वमिदं प्रकाशयन् ॥ १३४ ॥

रहते स्थित बुद्धि रूप कन्दर । सतात्मा अव्यक्त नभ अंदर ।।
सम परम प्रकाशमय द्युवन् । करते देदीप्यमान यह भुवन ।। (१३४)

भावार्थः बुद्धि रूपी गुहा में स्थित हो अव्यक्त आकाश के भीतर सत्वात्मा (परमात्मा) स्थित रहते हैं। परम प्रकाशमय सूर्य के समान वह इस संसार को देदीप्यमान करते हैं।

ज्ञाता मनोऽहंकृतिविक्रियाणां देहेन्द्रियप्राणकृतक्रियाणाम् ।
अयोऽग्निवत्ताननुवर्तमानो न चेष्टते नो विकरोति किंचन ॥ १३५ ॥

हैं ज्ञाता विकार सम मद मन । कर्म इन्द्रिय प्राण और तन ।।
सम लौह पिण्ड तपा ज्वलन । न छू सके उन्हें कोई दुर्गुन ।। (१३५)

भावार्थ: वह अहंकार और मन के समान विकार एवं इन्द्रिय, प्राण और शरीर के कर्म के ज्ञाता हैं। अग्नि में तपे हुए लोहे के टुकड़े के समान उन्हें कोई विकार नहीं छू सकता।

न जायते नो म्रियते न वर्धते न क्षीयते नो विकरोति नित्यः ।
विलीयमानेऽपि वपुष्यमुष्मिन् न लीयते कुम्भ इवाम्बरं स्वयम् ॥ १३६ ॥

न होता उनका जन्म और मरन । न हो विस्तार और न क्षयन ।।
नहीं   कोई   उनमें   दुर्गुन । हैं सर्वव्यापी   अति   पावन ।।
यद्यपि   हो   प्रतीत   लीन तन । नहीं होते लीन सम घट-गगन ।। (१३६)

भावार्थ: न उनका जन्म होता ही और न मरण। उनका न विस्तार होता है और न क्षय। उनमें कोई विकार नहीं है। वह सर्वव्यापी और अत्यंत पवित्र हैं। यद्यपि ऐसा लगता है कि उनका शरीर लीन हो गया है, परन्तु वह घटाकाश (बादल) के समान लीन नहीं होते।

प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः
सदसदिदमशेषं   भासयन्निर्विशेषः ।
विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्था
स्वहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धेः ॥ १३७ ॥

हैं विकार प्रकृति से भिन्न । पावन   ज्ञान   स्वरूप   भगवन ।।
रहित भेद भाव आत्मा महन । ज्ञानी   सत   असत   निरूपन ।।
करते देदीप्यमान सब भूजन । दशा   जाग्रत   सुषुप्ति   स्वप्न ।।
होते हुए स्फुरित भाव अहम् । हेतु   बुद्धि   स्वरुप   साक्ष्यम ।।
रहते वह साक्षात प्रकाशित । है समस्त जग जिन पर आश्रित ।। (१३७)

भावार्थ: प्रकृति के विकारों से भिन्न, पवित्र, ज्ञान स्वरूप भगवन, भेद-भाव से परे, महात्मा, सत असत के ज्ञानी, तीनों अवस्थाओं - जाग्रत, सुषुप्ति एवं स्वप्न में सभी

प्राणियों को प्रकाशित करते हैं। अहम् भाव से स्फुरित हुए बुद्धि स्वरुप के साक्षी वह साक्षात प्रकाशित हैं। समस्त विश्व उन पर आश्रित है।

नियमितमनसामुं त्वं स्वमात्मानमात्मन्य्
अयमहमिति साक्षाद्विद्धि बुद्धिप्रसादात् ।
जनिमरणतरङ्गापार संसारसिन्धुं
प्रतर भव कृतार्थो ब्रह्मरूपेण संस्थः ॥ १३८ ॥

हे मुमुक्ष कर चित्त नियमित ।होगी तब बुद्धि प्रसन्नचित्त ।।
कर अनुभव अपने अन्तःकरन ।अहम् ब्रह्मास्मि सत्य बोधन ।।
हो संभव तब पाए निर्मोचन ।छूटेंगे तब चक्र जन्म मरन ।।
कर पार भव-सागर हे भूजन । हो कृतार्थ कर ब्रह्म मिलन ।।(१३८)

भावार्थ: हे मुमुक्ष, आत्मा को संयमित कर, तब बुद्धि प्रसन्नचित्त होगी। अपने अंतःकरण में सत्य 'अहम् ब्रह्मास्मि' का अनुभव कर, तब मोक्ष पाना संभव होगा। जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिलेगा। हे प्राणी, तब संसार सागर से पार कृतार्थ हो ब्रह्म से मिलन कर।

३२. अध्यास

अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्बन्ध एषोऽस्य पुंसः
प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरण क्लेशसंपातहेतुः ।
येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या
पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत् ॥ १३९ ॥

हों जब प्रिय वस्तु अनात्मन ।जागे भाव अहम् अंदर भूजन ।।
दे यह कष्ट समान जन्म-मरन ।होता यह हेतु अज्ञान बंधन ।।
समझो न सत्य असत तन । अन्यथा हो लिप्त मन दुर्गुन ।।
यह समान कीट रेशम विपन्न ।करता स्व-तन रक्षण पोषन ।। (१३९)

भावार्थ: प्राणी का अनात्म (सांसारिक) वस्तुओं से प्रेम और अंदर 'मैं' भाव का जाग्रण, जन्म-मरण के समान दुःख देता है। यह बंधन अज्ञान से प्राप्त होता है। (इस अज्ञान के कारण) असत शरीर को सत्य नहीं समझो अन्यथा मन दुर्गुणों में लिप्त हो जाएगा। अभाग्य से रेशम के कीड़े की भांति वह अपने शरीर का पोषण और रक्षण करता है।

अतस्मिंस्तद्बुद्धिः प्रभवति विमूढस्य तमसा
विवेकाभावाद्वै स्फुरति भुजगे रज्जुधिषणा ।
ततोऽनर्थव्रातो निपतति समादातुरधिकः
ततो योऽसद्ग्राहः स हि भवति बन्धः शृणु सखे ॥ १४० ॥

हेतु तमोगुण पाए मूढ़जन । दुर्बुद्धि करे जो स्व-विघटन ।।
हेतु अविवेक हो अनर्थ जन । समझे रशन वह मूर्ख फणिन् ।।
असत को सत समझ स्नेहन् । पड़े अभग चक्र लौकिक बंधन ।। (१४०)

भावार्थ: तमोगुण के हेतु मूढ़ पुरुष दुर्बुद्धि पाता है और स्वयं का विनाश करता है। अविवेक के कारण प्राणी का अनर्थ होता है। वह मूर्ख रस्सी को सर्प समझता है। हे मित्र, असत को सत समझ लेने से अभग भव-बंधन के चक्र में पड़ जाता है।

अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या स्फुरन्तमात्मानमनन्तवैभवम् ।
समावृणोत्यावृतिशक्तिरेषा तमोमयी राहुरिवार्कबिम्बम् ॥ १४१ ॥

यद्यपि बोध शक्ति है पावन । अखंड परम सत और विलक्षन ।।
अविनाशी ऐश्वर्य संपन्न । पर हेतु तमोमयी आवरन ।।
ढँक लेती सत सम श्यामाम्बर । जैसे ढंकते राहु भास्कर ।। (१४१)

भावार्थ: यद्यपि (प्राणी की) बोध शक्ति पवित्र, अखंड, परम सत्य, विलक्षण, अविनाशी और ऐश्वर्य संपन्न है, पर तमोगुण का आवरण काले कपड़े के समान सत को ढँक लेता है। जैसे राहु (सूर्य ग्रहण के समय) सूर्य को ढँक लेते हैं।

तिरोभूते स्वात्मन्यमलतरतेजोवति पुमान्
अनात्मानं मोहादहमिति शरीरं कलयति ।
ततः कामक्रोधप्रभृतिभिरमुं बन्धनगुणैः
परं विक्षेपाख्या रजस उरुशक्तिर्व्यथयति ॥ १४२ ॥

होता जब अदृश्य अंदर जन । तेजोमय ब्रह्मतत्व पावन ।।
तब फँस मोह मानता सत तन । समझो हुआ रजोगुण उत्पन्न ।।
हो तब उसका अति व्यथित मन । हेतु काम क्रोध सम अवगुन ।। (१४२)

भावार्थ: जब पवित्र, तेज शील ब्रह्मतत्व प्राणी के अंदर अदृश्य होता है, तब वह मोह में फँस कर शरीर को सत मान लेता है। तब समझो कि रजोगुण उत्पन्न हो गया है। तब उसका मन काम, क्रोध समान अवगुणों से अत्यंत विचलित होता है।

महामोहग्राहग्रसन गलितात्मावगमनो
धियो नानावस्थां स्वयमभिनयंस्तद्गुणतया ।
अपा रे संसरे विषयविषपूरे जलनिधौ
निमज्योन्मज्यायं भ्रमति कुमतिः कुत्सितगतिः ॥ १४३ ॥

करता तब कर्म नीच भूजन । नाना प्रकार युक्त भव-बंधन ।।
समान विष विषय इस भुवन । डूबता भव हेतु विस्मापन ।।
कर नष्ट आत्मज्ञान गर्विन । लेता जन्म योनि विभिन्न ।।
करता अभिनय नाना निरूपन । घूमता रहे नाना स्थापन ।।(१४३)

भावार्थ: तब प्राणी इस पृथ्वी पर लौकिक बंधनों से युक्त नाना प्रकार के विष रूपी विषयी नीच कर्म करते हुए माया के कारण इस संसार (भव-सागर) में डूब जाता है। वह अहंकारी आत्मज्ञान नष्ट कर विभिन्न योनियों में जन्म लेता हुआ, नाना प्रकार के अभिनय करता हुआ, कई स्थानों पर घूमता रहता है।

भानुप्रभासंजनिताभ्रपङ्क्तिः भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा ।
आत्मोदिताहंकृतिरात्मतत्त्वं तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥ १४४ ॥

जैसे हेतु हुई रवि उत्पन्न। माला मेघ ढकती द्युवन् ।।
दर्प हुआ हेतु दैह्य उत्पन्न। ढँक लेता चित्त हो स्थित तन ।। (१४४)

भावार्थ: जिस प्रकार सूर्य से उत्पन्न बादलों की श्रृंखला सूर्य को ढक लाती है, उसी प्रकार आत्मा से उत्पन्न अहंकार आत्मा को ढँक शरीर में स्थित हो जाता है।

३३. आवरणशक्ति और विक्षेपणशक्ति

कवलितदिननार्थे दुर्दिने सान्द्रमेघैः
व्यथयति हिमझंझावायुरुग्रो यथैतान् ।
अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं
क्षपयति बहुदुःखैस्तीव्रविक्षेपशक्तिः ॥ १४५ ॥

जैसे जब ढंका रवि मेघ सघन। करते मेघ और प्रभञ्जन ।।
कर वर्षा आंधी खिन्न तद दुर्दिन। समान ढंका तम मूढ़ भूजन ।।
हो संतप्त दुःख नाना वर्पन्। हो व्याकुल विचरता भुवन ।। (१४५)

भावार्थ: जैसे जब सूर्य सघन बादल से ढंके होते हैं तब मेघ और तीव्र पवन दुर्दिन में वर्षा और आंधी से दुःखी करते हैं। उसी प्रकार तमोगुण से ढंका हुआ मूढ़ पुरुष नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित व्याकुल हो इस धरा पर घूमता रहता है।

एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बन्धः पुंसः समागतः ।
याभ्यां विमोहितो देहं मत्वात्मानं भ्रमत्ययम् ॥ १४६ ॥

प्रवृत्ति तम देती भव-बंधन। मोहवश समझता चित्त है तन ।।
है यही हेतु दुःख इस भुवन। घूमता रहता चक्र जन्म-मरन ।। (१४६)

भावार्थ: तम प्रवृत्ति लौकिक बंधन देती है। इससे मोहित हो प्राणी आत्मा को शरीर मान लेता है। इसी कारण इस धरा पर दुःखी हो जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है।

३४. बंध-निरूपण

बीजं संसृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरङ्कुरो
रागः पल्लवमम्बु कर्म तु वपुः स्कन्धोओऽसवः शाखिकाः ।
अग्राणीन्द्रियसंहतिश्च विषयाः पुष्पाणि दुःखं फलं
नानाकर्मसमुद्भवं बहुविधं भोक्तात्र जीवः खगः ॥ १४७॥

है अज्ञान बीज तरु भुवन । है बुद्धि अंकुर तादात्म्य तन ।।
राग पर्ण कर्म जल स्तम्भ तन । हैं इन्द्रियाँ उपतरुभुजन ।।
विषय प्रसून शाखा जीवन । हैं दुःख फल हुए कर्म उत्पन्न ।।
है भोक्ता खग जीव वर्पन् । है यही उत्तरदायक बंधन ।। (१४७)

भावार्थः संसार वृक्ष का बीज अज्ञान है। शरीर में तादात्म्य बुद्धि अंकुर है। राग पत्ते, कर्म जल और शरीर तना है। इन्द्रियाँ उपशाखाएँ हैं। पुष्प विषय और जीवन शाखा हैं। कर्मों से उत्पन्न हुए फल दुःख हैं। जीव रूपी पक्षी भोक्ता है। यह सब बंधन के उत्तरदायक हैं।

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धो नैसर्गिकोऽनादिरनन्त ईरितः ।
जन्माप्ययव्याधिजरादिदुःख प्रवाहपातं जनयत्यमुष्य ॥ १४८ ॥

जनित अज्ञान अनात्म बंधन । समझो अनादि और पुरातन ।।
है यह हेतु रोग जरा मरन । करता यह स्पन्द दुःख उत्पन्न ।। (१४८)

भावार्थः अज्ञान से उत्पन्न अनात्म (लौकिक) बंधन को आदि और पुरातन समझो। यह रोग, वृद्ध अवस्था और मरण का कारण है। यह दुःख का प्रवाह उत्पन्न करता है।

३५. आत्मानात्म-विवेक

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वन्हिना छेत्तुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः ।
विवेकविज्ञानमहासिना विना धातुः प्रसादेन शितेन मञ्जुना ॥ १४९ ॥

है संभव कटें यह भव-बंधन । पा महाशस्त्र मंजुल चेतन ।।
होती जब कृपा श्री भगवन । अन्यथा असंभव अन्य साधन ।।
अस्त्र शस्त्र अग्नि या पवन । कोटि कर्म कलाप जो पावन ।। (१४९)

भावार्थ: इन लौकिक बंधन का कटना प्रभु की कृपा से मंजुल महाशस्त्र चैतन्य प्राप्त कर संभव है। अन्यथा किसी और साधन जैसे अस्त्र, शस्त्र, अग्नि, पवन या करोड़ों पवित्र कर्म कलापों से संभव नहीं।

श्रुतिप्रमाणैकमतेः स्वधर्म निष्ठा तयैवात्मविशुद्धिरस्य ।
विशुद्धबुद्धेः परमात्मवेदनं तेनैव संसारसमूलनाशः ॥ १५० ॥

जिसकी श्रद्धा श्रुति गहन । होती उसकी निष्ठा स्व-कर्मन ।।
है यह हेतु हो शुद्ध आत्मन । मिले ब्रह्म ज्ञान जब मन पावन ।।
हों नाश समूल तब सब खेदन । स्वरुप वृक्ष सभी भव-बंधन ।। (१५०)

भावार्थ: जिसका श्रुति में गहन विश्वास है, उसकी स्व-कर्म में निष्ठा होती है। यही आत्मा की शुद्धि का हेतु है। शुद्ध आत्मा से ब्रह्म ज्ञान मिलता है। तब सब दुःख और वृक्ष रूपी भव-बंधन का समूल नाश होता है।

कोशैरन्नमयाद्यैः पञ्चभिरात्मा न संवृतो भाति ।
निजशक्तिसमुत्पन्नैः शैवालपटलैरिवाम्बु वापीस्थम् ॥ १५१ ॥

ढंकी दैह्य पञ्चकोष सम अन्न । हेतु स्व-शक्ति करती उत्पन्न ।।
विभिन्न आवरण भूजन तन । पर हो न प्रभाव पावन मन ।।
जैसे यदि ढके काई पल्वल । पर हो न प्रभाव कोई जल ।। (१५१)

भावार्थ: अन्न आदि पंचकोष (अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश) से आवृत आत्मा अपनी शक्ति से प्राणी के शरीर में विभिन्न आवरण उत्पन्न करती है, परन्तु इसका प्रभाव शुद्ध मन पर नहीं होता। जैसे यदि काई जलाशय को ढक ले फिर भी जल पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तच्छैवालापनये सम्यक्सलिलं प्रतीयते शुद्धम् ।
तृष्णासन्तापहरं सद्यः सौख्यप्रदं परं पुंसः ॥ १५२ ॥
पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः ।
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परः स्वयंज्योतिः ॥ १५३ ॥

सदृश हटे जब काई पुष्कर । देख सकें तब स्वच्छ जल अंदर ।।
हों जब दूर तृषा ताप मन । पाएं तुरंत परमानंद भूजन ।।
करें जब त्याग पंचकोष जन । हों दर्शन नित्य आनंद पावन ।।
अन्तर्यामी स्वयं देदीप्यमान । शाश्वत सनातन श्री भगवान् ।। (१५३)

भावार्थ: जिस प्रकार जलाशय से काई के हटने पर अंदर स्वच्छ जल दिखता है, (उसी प्रकार) जब मन से तृषा ताप दूर हो जाते हैं तो प्राणी को तुरंत परमानंद की प्राप्ति होती है। पंचकोष के अपवाद करने पर (विरुद्ध आचरण करने पर) नित्यानंद, शुद्ध, अन्तर्यामी, स्वयं प्रकाशित, शाश्वत और सनातन भगवान् के दर्शन होते हैं।

आत्मानात्मविवेकः कर्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम् ॥ १५४ ॥

करें आत्म अनात्म विवेचन । हेतु निवृति लौकिक बंधन ।।
हों तब सच्चिदानंद निरूपन । पाएं परम आनंद मह विद्वन ।। (१५४)

भावार्थ: सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाने हेतु आत्मा और अनात्मा का विवेचन करें (समझें)। तब सच्चिदानंद स्वरुप हो महान विद्वान परम आनंद की प्राप्ति करते हैं।

मुञ्जादिषीकामिव दृश्यवर्गात् प्रत्यञ्चमात्मानमसङ्गमक्रियम् ।
विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्वं तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः ॥ १५५ ॥

कर पृथक असंग चित्त अक्रिय । करो सब गुण स्वयं में विलय ।।
सम करें सींक पृथक मुञ्जय । होती हेतु नयन जन अदृश्य ।।
हो स्थित जो आत्म भाव जन । पाए वह निःसंशय निर्मोचन ।। (१५५)

भावार्थ: असंग और अक्रिय चित्त को पृथक कर सभी गुण स्वयं में विलीन करें (अर्थात गुणों से परे हों), जैसे सींक को मूँज से पृथक कर प्राणी के नेत्रों से अदृश्य किया जाता है (उसी प्रकार दुर्गुणों से स्वयं को अदृश्य करें)। जो प्राणी आत्म-भाव में स्थित हो, निःसंशय उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।

३६. अन्नमय कोष

देहोऽयमन्नभवनोऽन्नमायास्तु कोशः
चान्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीनः ।
त्वक्चर्ममांस रुधिरास्थिपुरीषराशिः
नायं स्वयं भवितुमर्हति नित्यशुद्धः ॥ १५६ ॥

होता हेतु अन्न उत्पन्न यह तन । कहें अतः इसे कोष मय-अन्न ।।
ऊर्जा अन्न इसका जीवन । हो जाता नष्ट यह बिन अन्न ।।
होता यह समूह त्वचा असन् । मांस अस्थि मल और अपानन ।।
हैं नाशवान यह सब तत्व । नहीं आत्मा पावन नित्य ।। (१५६)

भावार्थ: अन्न से शरीर उत्पन्न होता है, अतः इसे अन्नमय कोष कहते हैं। अन्न ही इसकी ऊर्जा है, और अन्न के बिना इसका नाश हो जाता है। यह त्वचा, रक्त, मांस, अस्थि, मल और मूत्र का समूह है। यह सब तत्व नाशवान हैं, नित्य शुद्ध आत्मा नहीं।

पूर्वं जनेरधिमृतेरपि नायमस्ति
जातक्षणः क्षणगुणोऽनियतस्वभावः ।
नैको जडश्च घटवत्परिदृश्यमानः
स्वात्मा कथं भवति भावविकारवेत्ता ॥ १५७ ॥

नहीं स्थित था पूर्व जनन । नहीं रहता यह पश्चात मरन ।।
ले जन्म हो क्षणिक युक्त गुण । है यह भाव अस्थिर अवगुण ।।
दिखता यह सम जड़ घट भुवन । नहीं चित्त जो ज्ञानी दुर्गुन ।। (१५७)

भावार्थ: यह जन्म के पूर्व नहीं था और मरण के पश्चात नहीं रहता। क्षण में जन्म लेकर गुण युक्त हो जाता है। यह अस्थिर अवगुण भाव है। यह जड़ मिटटी के घट के समान दिखता है। यह विकारों को जानने वाला चित्त (आत्मा) नहीं है।

पाणिपादादिमान्देहो नात्मा व्यङ्गेऽपि जीवनात् ।
तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामकः ॥ १५८ ॥

जो विनाशी युक्त पग हस्त तन । नहीं हो सकता चित्त पावन ।।
चूंकि पश्चात भंग अवयव । हेतु नहीं हो विध्वस्त तेजस्व ।।
रहता पुरुष युक्त जीवन । समझो तुम है स्व-शासित तन ।।
हेतु कर्म करता शासन तन । नहीं यह शासक चित्त पावन ।। (१५८)

भावार्थ: जो शरीर पग, हस्त से युक्त विनाशी है, वह शुद्ध आत्मा नहीं हो सकता। चूंकि अंग भंग होने के पश्चात भी तेज (शक्ति) नष्ट न होने के कारण पुरुष जीवित रहता है। तुम शरीर को स्व-शासित समझो जो कर्म से शासित है। यह (शरीर) पवित्र आत्मा का शासक नहीं।

देहतद्धर्मतत्कर्मत दवस्थादिसाक्षिणः ।
सत एव स्वतःसिद्धं तद्वैलक्ष्यण्यमात्मनः ॥ १५९ ॥

कर्म धर्म विषय अनुचर तन । है साक्षी उसका चित्त पावन ।।
पर समझो चित्त पृथक तन । स्वतः सिद्ध यह उपरोक्त कथन ।। (१५९)

भावार्थ: शरीर से सम्बंधित कर्म, धर्म विषयों की शुद्ध आत्मा साक्षी है। परन्तु आत्मा को शरीर से पृथक समझो। यह उपरोक्त कथन से स्वतः सिद्ध है।

कुल्यशल्यराशिर्मांसलिप्तो मलपूर्णोऽतिकश्मलः ।
कथं भवेदयं वेत्ता स्वयमेतद्विलक्षणः ॥ १६० ॥

विनाशी समूह अस्थि असन् । मांस युक्त मल और अपानन ।।
अति घृणित और स्व से भिन्न । नहीं हो सकता चित्त विद्वन ।। (१६०)

भावार्थः समूह अस्थि, रुधिर, मांस, मल और मूत्र से युक्त विनाशी शरीर जो अति घृणित और स्व (आत्मा) से भिन्न है, वह आत्मा का ज्ञानी नहीं हो सकता।

त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषराशा वहंमतिं मूढजनः करोति ।
विलक्षणं वेत्ति विचारशीलो निजस्वरूपं परमार्थ भूतम् ॥ १६१ ॥

रखते अहंबुद्धि मूढ़ जन । घृणित युक्त त्वचा मांस असन् ।।
मल मेद समूह अस्थि तन । पर हैं पृथक नित्य विद्वन ।।
करते जो अर्पण स्व-जीवन । पारमार्थिक विषय चिंतन ।। (१६१)

भावार्थः त्वचा, मांस, रक्त, मल, मेद और अस्थि समूह से युक्त घृणित शरीर में मूर्ख प्राणी अहंबुद्धि रखते हैं। परन्तु विवेकी बुद्धिमान (इनसे) पृथक हैं। वह अपना जीवन शुद्ध पारमार्थिक विषयों पर चिंतन में करते हैं।

देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धिः देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः ।
विवेकविज्ञानवतो महात्मनो ब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्मनि ॥ १६२ ॥

सोचते मूढ़ हूँ मैं स्वयं तन । अतः रखें आस्था घृणित तन ।।
पर हूँ ब्रह्म सोचें विद्वन । रखें वह आस्था सत आत्मन ।। (१६२)

भावार्थः मूर्ख सोचते हैं कि 'मैं स्वयं शरीर हूँ', अतः उनकी आस्था घृणित शरीर पर होती है। पर विद्वान सोचते हैं कि 'मैं ब्रह्म हूँ', अतः उनकी आस्था सत्य ब्रह्म पर होती है।

अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषराशौ ।
सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे कुरुष्व शान्ति परमां भजस्व ॥ १६३ ॥

हे मूढ़ त्याग आस्था इस तन । जो घ्रणित युक्त मल अपानन ।।
त्वचा मांस अस्थि मेद असन् । रख भाव प्रति आत्म पावन ।।
है जो निर्विकल्प परम ब्रह्म । भोग अतः परम आनंद शम ।। (१६३)

भावार्थ: हे मूर्ख, इस शरीर की आस्था का त्याग कर, जो घृणित है, मल, मूत्र, त्वचा, मांस, अस्थि, मेद और रक्त से युक्त है। प्रत्युत शुद्ध आत्मा में आस्था रख जो निर्विकल्प परम ब्रह्म है। अतः शान्ति और परम आनंद का भोग कर।

देहेन्द्रियादावसति भ्रमोदितां विद्वानहं तां न जहाति यावत् ।
तावन्न तस्यास्ति विमुक्तिवार्ताप्य् अस्त्वेष वेदान्तनयान्तदर्शी ॥ १६४ ॥

नहीं त्यागते जब तक विद्वन । अहंता जो होती स्व-उत्पन्न ।।
हेतु आस्था इन्द्रिय असत तन । हो चाहे वह ज्ञानी ग्रंथन ।।
पारदर्शी सिद्धांत सनातन । नहीं मिले उसे निर्मोचन ।। (१६४)

भावार्थ: जब तक विद्वान् इन्द्रिय और असत शरीर हेतु आस्था से स्व-उत्पन्न अहंता का त्याग नहीं कर देते, वह चाहे ग्रंथों के ज्ञानी हों, सनातन सिद्धांत में पारदर्शिता हो, उन्हें मोक्ष नहीं मिल सकता।

छायाशरीरे प्रतिबिम्बगात्रे यत्स्वप्नदेहे हृदि कल्पिताङ्गे ।
यथात्मबुद्धिस्तव नास्ति काचिज् जीवच्छरीरे च तथैव मास्तु ॥ १६५ ॥

जैसे नहीं करे विश्वास जन । प्रतिबिम्ब कल्पना और स्वप्न ।।
सदृश करो न विश्वास भूजन । सम भ्रम तत्व रूप जीवित तन ।। (१६५)

भावार्थ: जिस प्रकार प्राणी प्रतिबिम्ब, कल्पना और स्वप्न पर विश्वास नहीं करता, उसी प्रकार हे प्राणी, भ्रम तत्व स्वरुप जीवित शरीर पर विश्वास नहीं करो।

देहात्मधीरेव नृणामसद्धियां जन्मादिदुःखप्रभवस्य बीजम् ।
यतस्ततस्त्वं जहि तां प्रयत्नात् त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा ॥ १६६ ॥

होती हेतु असत आस्था तन । उत्पत्ति जन्मादि सब खेदन ।।
छोड़ दो यह दुर्बुद्धि भूजन । हो नहीं तब पुनर्जन्म भयन ।। (१६६)

भावार्थः इस असत शरीर पर आस्था के कारण जन्मादि के सब दुःख उत्पन्न होते हैं। हे प्राणी, इस दुर्बुद्धि को छोड़ दो, तब पुनर्जन्म का भय नहीं रहेगा (अतः मोक्ष की प्राप्ति होगी)।

३७. प्राणमय कोष

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽयं प्राणो भवेत्प्राणमायास्तु कोशः ।
येनात्मवानन्नमयोऽनुपूर्णः   प्रवर्ततेऽसौ   सकलक्रियासु ॥ १६७ ॥

युक्त   पञ्च-कर्मेन्दियाँ तन । है   प्राणमय   कोष   भूजन ।।
अन्नमय कोष तृप्तित जो अन्न । करे प्रवृत्त जन कर्म भुवन ।। (१६७)

भावार्थः हे प्राणी, पञ्च कर्मेन्दियों से युक्त शरीर प्राणमय कोष है। अन्न से तृप्त अन्नमय कोष प्राणियों के लौकिक कर्मों को प्रवृत्त करता है।

नैवात्मापि प्राणमयो   वायुविकारो
गन्तागन्ता   वायुवदन्तर्बहिरेषः ।
यस्मात्किंचित्क्वापि न वेत्तीष्टमनिष्टं
स्वं वान्यं वा किंचन नित्यं परतन्त्रः ॥ १६८ ॥

है नहीं प्राणमय कोष चित्त । है यह विकार वायु निमित्त ।।
हो हेतु असु अन्तः बाह्य पवन । है यह नित्य परतंत्र भूजन ।।
नहीं ज्ञान इसे अशुभ उत्तम । अपना पराया हेतु आत्म ।। (१६८)

भावार्थः प्राणमय कोष आत्मा नहीं है। यह वायु विकार के कारण है। श्वास हेतु वायु बाहर अंदर होती है। हे प्राणी, यह नित्य परतंत्र है। इसे अपनी आत्मा के शुभ, अशुभ, अपने, पराये का ज्ञान नहीं है।

३८. मनोमय कोष

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमायाः स्यात्
कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः ।
संज्ञादिभेदकलनाकलितो बलीयांस्
तत्पूर्वकोशमभिपूर्य विजृम्भते यः ॥ १६९ ॥

हो जब मैं और मेरा बोधन । हेतु तेरी इन्द्रियाँ और मन ।।
है यह कोष मनोमय भूजन । जानें इसे हेतु नाम भेदन ।।
समझो इसे तुम प्रबल बहुत्व । हो स्थित व्याप्त कोष अन्य तत्व ।। (१६९)

भावार्थः जब 'मैं और मेरा' का बोध तुम्हारी इन्द्रियों और मन के द्वारा हो, तब हे प्राणी, यह मनोमय कोष है। इसे नाम और भेद के द्वारा जाना जाता है। इसे तुम अत्यंत बलशाली समझो। यह अन्य कोश तत्व को व्याप्त कर स्थित होता है।

पञ्चेन्द्रियैः पञ्चभिरेव होतृभिः प्रचीयमानो विषयाज्यधारया ।
जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनैः मनोमयाग्निर्दहति प्रपञ्चम् ॥ १७० ॥

हो उत्पन्न हेतु पञ्च-इन्द्रियाँ । हेतु तत्व घृत आहुतियां ।।
करे प्रदीप्त नाना वासना । होता दग्ध यज्ञ अग्नि साधना ।। (१७०)

भावार्थः विषय घृत की आहुतियों के कारण (अर्थात लौकिक विषय के कारण) यह (मनोमय कोष) पञ्च-इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होता है। यह नाना प्रकार की वासनाएं प्रज्वलित करता है। यह अग्नि यज्ञ और साधना से भस्म होता है।

न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनो ह्यविद्या भवबन्धहेतुः ।
तस्मिन्विनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते ॥ १७१ ॥

अनियंत्रित मन देता भूजन । अविद्या जो हेतु भव-बंधन ।।
होती जब यह अविद्या नष्ट । समझो होती माया विनष्ट ।।
हो जाता जाग्रत अबोधन । हो तब कर्म आरम्भ भव-बंधन ।। (१७१)

भावार्थ: अनियंत्रित मन प्राणी को अविद्या (अज्ञान) देता है जो लौकिक बंधनों का कारण है। जब अविद्या नष्ट हो जाती है, तो समझो माया भी नष्ट हो गई। जब अविद्या जाग्रत हो जाती है तो भव-बंधन की क्रिया आरम्भ हो जाती है।

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या भोक्त्रादिविश्वं मन एव सर्वम् ।
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषः तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥ १७२ ॥

होती जब जन अवस्था स्वप्न । नहीं होता सत्य लोक योजन ।।
हेतु मन हो माया उत्पन्न । सम दशा जागर हेतु अबोधन ।।
नहीं पड़ता कोई अन्तर जन । यह सब माया हेतु प्रपंच मन ।। (१७२)

भावार्थ: जब प्राणी की स्वप्न अवस्था होती है, तब सत्य संसार से सम्बन्ध नहीं होता। मन के कारण माया उत्पन्न होती है। उसी प्रकार अज्ञान के कारण जाग्रत दशा में भी हे प्राणी, कोई अंतर नहीं पड़ता। प्रपंच मन के कारण यह सब माया है।

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने नैवास्ति किंचित्सकलप्रसिद्धेः ।
अतो मनःकल्पितेव पुंसः संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति ॥ १७३ ॥

जब अवस्था निद्रा बिन स्वप्न । होता जब सामान्य दशा मन ।।
नहीं होता अनुभव माया । जानें यह सब जीवित काया ।।
समान है यह कल्पना भूजन । नहीं यथार्थ में यह विद्यमन ।। (१७३)

भावार्थ: बिना स्वप्न की अवस्था में जब मन की स्थिति सामान्य होती है तब माया का कोई अनुभव नहीं होता जो सब प्राणियों को विदित है। उसी प्रकार यह संसार प्राणियों की कल्पना है। यथार्थ में इसका अस्तित्व नहीं है।

वायुनानीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते ।
मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ॥ १७४ ॥

होता मेघ निर्देशित पवन । आता जाता वायु स्यन्दन ।।
सम हेतु मन होता भव-बंधन । और देता यही निर्मोचन ।। (१७४)

भावार्थ: मेघ वायु द्वारा निर्देशित होता है। वायु के प्रवाह से वह आता जाता है। उसी प्रकार बंधन भी मन के कारण होता है और मोक्ष भी वही देता है।

देहादिसर्वविषये परिकल्प्य रागं
बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद्गुणेन ।
वैरस्यमत्र विषवत्सुवुधाय पश्चाद्
एनं विमोचयति तन्मन एव बन्धात् ॥ १७५ ॥

कर कल्पना राग विषय तन । बांधे सूत्र मन सम पशु जन ।।
पर हो जब विषय अपरिग्रहन । हो जाता मुक्त तब भव-बंधन ।। (१७५)

भावार्थ: शरीर, राग विषयों में कल्पना कर मन प्राणी को पशु समान रस्सी से बाँध देता है। पर जब विषयों से विरक्त हो जाता है, तब लौकिक बंधनों से मुक्त हो जाता है।

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोः बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने ।
बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणैः मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम् ॥ १७६ ॥

अतः समझो मन ही हेतु बंधन । और मन ही हेतु निर्मोचन ।।
हो जब लिप्त रजोगुण यह मन । देता तब भव-बंधन भूजन ।।
हो जब यह रहित रज तम गुण । देता मोक्ष यह मुमुक्षगण ।। (१७६)

भावार्थः अतः मन को ही बंधन और मोक्ष का कारण समझो। जब यह रजोगुण से लिप्त होता है तब प्राणियों को भव-बंधन देता है। जब रज और तम गुणों से रहित होता है, तो मुमुक्षुओं को मोक्ष देता है।

विवेकवैराग्यगुणातिरेकाच् छुद्धत्वमासाद्य मनो विमुक्त्यै ।
भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षोस् ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्यमग्रे ॥ १७७ ॥

जब होता लिप्त गुण शुभ मन । विवेक वैराग्य सम सद्गुन ।।
देता मोक्ष हो तब पावन । हेतु मुमुक्ष हो दृढ़ यह गुन ।। (१७७)

भावार्थः जब मन में शुभ गुण लिप्त होते हैं जैसे विवेक, वैराग्य सद्गुण, तब पवित्र हो मोक्ष देता है। यह गुण मुमुक्ष में दृढ़ हो।

मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ॥ १७८ ॥

है सम उग्र व्याघ्र नाम मन । करता भ्रमण विषय रूप वन ।।
साधु मुमुक्ष सुनो मम वचन । जाओ न कभी इस पथ कठिन ।। (१७८)

भावार्थः मन नाम का भयंकर व्याघ्र विषय रूप वन में घूमता रहता है। हे मुमुक्ष साधु, मेरे वचन सुनो। इस कठिन मार्ग पर कभी नहीं जाओ।

मनः प्रसूते विषयानशेषान् स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः ।
शरीरवर्णाश्रमजातिभेदान् गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम् ॥ १७९ ॥

करता यह मन ही नित्य उत्पन्न । सब स्थूल सूक्ष्म विषय तन ।।
वर्ण आश्रम जाति असाम्यम् । गुण क्रिया जो दें फल कर्म ।। (१७९)

भावार्थः यह मन ही शरीर के सब स्थूल सूक्ष्म विषय, वर्ण, आश्रम, जाति, भेद को निरंतर उत्पन्न करता है। गुण क्रिया देता है जो कर्म फल देते हैं।

असङ्गचिद्रूपममुं विमोह्य देहेन्द्रियप्राणगुणैर्निबद्ध्य ।
अहंममेति भ्रमायात्यजस्रं मनः स्वकृत्येषु फलोपभुक्तिषु ॥ १८० ॥

कर मोहित चित्त असंग दिव्य । बांधे यह गुण सम तन इन्द्रिय ।।
दे कर 'मैं और मेरा' संवेदन । भटकाए फल कर्म नित्य जन ।। (१८०)

भावार्थ: (मन) असंग दिव्य आत्मा को मोहित कर यह इसे शरीर, इन्द्रिय समान गुण में बाँध देता है। 'मैं और मेरा' भाव देकर निरंतर प्राणी को कर्म फल में भटकाता रहता है।

अध्यासदोषात्पुरुषस्य संसृतिः अध्यासबन्धस्त्वमुनैव कल्पितः ।
रजस्तमोदोषवतोऽविवेकिनो जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत् ॥ १८१ ॥

अध्यास दोष देता भव-बंधन । फंसता जन चक्र जन्म-मरन ।।
रज तम गुण युक्त अविवेकिन् । है हेतु मूल जन्मादि खेदन ।। (१८१)

भावार्थ: अध्यास दोष (मिथ्या ज्ञान) लौकिक बंधन देता है। इसी हेतु प्राणी जन्म-मरण के चक्र में फंसता है। रज, तम गुण से युक्त अविवेकी पुरुष के लिए यह जन्मादि दुःख का मूल कारण है।

अतः प्राहुर्मनोऽविद्यां पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ।
येनैव भ्राम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥ १८२ ॥

अतः समझो है अविद्या मन । कहते यह तत्वदर्शी विद्वन ।।
है जैसे मेघ निर्देशित पवन । सम घुमाता भव-जग यह मन ।। (१८२)

भावार्थ: अतः मन को अविद्या समझो, ऐसा तत्वदर्शी विद्वान् कहते हैं। जिस प्रकार वायु मेघ को निर्देशित करती है (घुमाती रहती है), उसी प्रकार यह मन भव-संसार में घुमाता रहता है।

तन्मनःशोधनं कार्यं प्रयत्नेन   मुमुक्षुणा ।
विशुद्धे सति चैतस्मिन्मुक्तिः करफलायते ॥ १८३ ॥

हे मुमुक्ष करो तुम प्रयत्न । करो शीघ्र मन का शोधन ।।
हो जाता जब यह मन पावन । होता कर आंवल सम मोचन ।। (१८३)

भावार्थ: हे मुमुक्ष, प्रयत्न कर शीघ्र मन का शुद्धिकरण करो। जब यह मन पवित्र हो जाता है तो मुक्ति हाथ में आंवले के समान हो जाती है (अर्थात छोटी हो कर शीघ्र मिल जाती है।

मोक्षैकसक्त्या विषयेषु रागं निर्मूल्य संन्यस्य च सर्वकर्म ।
सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठो रजःस्वभावं स धुनोति बुद्धेः ॥ १८४ ॥

कर इच्छा मोक्ष त्यागो कर्म । करो विषय राग अंत क्रम ।।
हो जब शुद्ध श्रद्धा स्व-मन । करती नष्ट यह रज आचरन ।। (१८४)

भावार्थ: मोक्ष की इच्छा कर कर्मों का त्याग करते हुए विषयों में राग के क्रम का अंत करो। जब अपने मन में शुद्ध श्रद्धा होती है तब रज आचरण नष्ट हो जाते हैं।

मनोमयो नापि भवेत्परात्मा ह्याद्यन्तवत्त्वात्परिणामिभावात् ।
दुःखात्मकत्वाद्विषयत्वहेतोः द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्टः ॥ १८५ ॥

मनोमय कोष आदि से अंत । यतः विषयक दे फल दुःखान्त ।।
समझो नहीं यह परम आत्म । नहीं साक्ष   ग्रंथ यह परात्म ।। (१८५)

भावार्थ: मनोमयः कोष आदि से अंत तक विषय रूप होने के कारण दुःखान्त फल देता है। यह समझो कि यह पवित्र आत्मा नहीं है। परात्मा होने का साक्ष ग्रंथों में नहीं है।

३९. विज्ञानमय कोष

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्ष्यणः ।
विज्ञानमायाकोशः स्यात्पुंसः संसारकारणम् ॥ १८६ ॥

संग ज्ञानेन्द्रिय धी भूजन । जो युक्त वृत्ति भाव कर्तापन ।।
कोष विज्ञानमय कहें ग्रंथन । है हेतु जन्म-मरण इस भुवन ।। (१८६)

भावार्थ: हे प्राणी, ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि जो वृत्ति एवं कर्तापन भाव से युक्त है, वह ग्रंथों में विज्ञानमय कोष है। यह इस संसार में जन्म-मरण का हेतु है।

अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्बशक्तिः विज्ञानसंज्ञः प्रकृतेर्विकारः ।
ज्ञानक्रियावानहमित्यजस्रं देहेन्द्रियादिष्वभिमन्यते भृशम् ॥ १८७ ॥

करे चित्त इन्द्रिय अनुगमन । जो प्रतिबिम्ब शक्ति चेतन ।।
है यह विज्ञान सर्ग विकार । देती निरंतर जन अहंकार ।।
'मैं ही ज्ञानी क्रियावान' । देती ऐसा तन को अभिमान ।। (१८७)

भावार्थ: चित्त और इन्द्रिय का अनुसरण करने वाली चेतन की प्रतिबिम्ब शक्ति प्रकृति का विकार विज्ञान है। यह निरंतर प्राणी को अहंकार देती है। 'मैं ही ज्ञानी क्रियावान हूँ', ऐसा शरीर को अभिमान देती है।

अनादिकालोऽयमहंस्वभावो जीवः समस्तव्यवहारवोढा ।
करोति कर्माण्यपि पूर्ववासनः पुण्यान्यपुण्यानि च तत्फलानि ॥ १८८ ॥
भुङ्क्ते विचित्रास्वपि योनिषु व्रजन् नायाति निर्यात्यध ऊर्ध्वमेषः ।
अस्यैव विज्ञानमायास्य जाग्रत् स्वप्नाद्यवस्थाः सुखदुःखभोगः ॥ १८९ ॥
देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्म गुणाभिमानः सततं ममेति ।
विज्ञानकोशोऽयमतिप्रकाशः प्रकृष्टसान्निध्यवशात्परात्मनः ।
अतो भवत्येष उपाधिरस्य यदात्मधीः संसरति भ्रमेण ॥ १९० ॥

विज्ञानमय कोष अहम् स्वभाव । करता जीव और जग निर्वाह ।।
अनादि काल से रहता सक्रिय । हेतु पूर्व वासना हे दिव्य ।।
करता पुण्य पापमय कर्म । भोगता उनके फल-कर्म ।। (१८८)
करता विचित्र योनि भ्रमन । पाता रहता स्थान उच्च निम्न ।।
अवस्थाएं सम जाग्रत स्वप्न । भोग समान सुख और खेदन ।।
धर्म कर्म श्रम विषयक तन । मोह मद आदि सब दुर्गुन ।।
समझो उत्पत्ति तुम शिष्यगन । हेतु विज्ञानमय कोष तन ।। (१८९)
है यह अति समीप आत्मन । इस कारण अत्यंत विरोचन ।।
हेतु इन अवगुण आरोपन । हो जाता भ्रमित मन भूजन ।।
पड़ कर तब वह चक्र भव-भुवन । भोगता दुःख सम जन्म-मरन ।। (१९०)

भावार्थः अहम स्वभाव वाला विज्ञान कोष जीव और संसार का निर्वाह करता है। यह अनादि काल से सक्रिय है। हे दिव्य, पूर्व वासना हेतु पुण्य और पापमय कर्म करता हुआ उनके कर्म-फल भोगता है। विचित्र योनियों में भ्रमण करता हुआ उच्च और निम्न स्थान पाता रहता है। जाग्रत, स्वप्न अवस्थाएं, सुख दुःख समान भोग, शरीर संबंधी धर्म कर्म श्रम, मोह मद आदि दुर्गुण, हे शिष्य, इनकी उत्पत्ति तुम शरीर से विज्ञानमय कोष हेतु समझो। यह आत्मा के अति समीप है। इस कारण अत्यंत प्रकाशमान है। इन अवगुणों से आरोपित प्राणी का मन भ्रमित हो जाता है। तब वह भव-सागर के चक्र में पड़ कर जन्म-मरण समान दुःख भोगता रहता है।

४०. आत्मा की उपाधि से असंगता

योऽयं विज्ञानमायाः प्राणेषु हृदि स्फुरत्ययं ज्योतिः ।
कूटस्थः सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थः ॥ १९१ ॥

यह जो स्वयं प्रकाश अंदर मन । विज्ञान स्वरुप प्राणदि जन ।।
हो रहा स्फुरित हे शिष्यगन । यद्यपि है निर्विकार आत्मन ।।
पर हो कर लिप्त उप अवगुन । होता कर्ता भोक्ता वर्पन् ।। (१९१)

भावार्थः हे शिष्यगण, यह जो प्राणी के मन के अंदर प्राणादि स्व-प्रकाश स्फुरित हो रहा है, यद्यपि यह निर्विकार आत्मा है परन्तु उपरोक्त अवगुणों से लिप्त हो कर वह कर्ता, भोक्ता का स्वरुप है।

स्वयं परिच्छेदमुपेत्य बुद्धेः तादात्म्यदोषेण परं मृषात्मनः ।
सर्वात्मकः सन्नपि वीक्षते स्वयं स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव ॥ १९२ ॥

हेतु मिथ्या बुद्धि परिछिन्न । हो कर एकीभूत इन अवगुन ।।
युक्त दोष सर्वात्मक आत्मन । सम घट देखे स्वयं को भिन्न ।। (१९२)

भावार्थः असत बुद्धि के कारण मर्यादित, इन अवगुणों से एकीभूत हुई दोष युक्त सर्वात्मक आत्मा घड़े के समान अपने को भिन्न देखती है (अर्थात जिस प्रकार मिट्टी का घड़ा अपने को मिट्टी से भिन्न देखता है, उसी प्रकार दोष युक्त आत्मा यद्यपि निर्विकार है, परन्तु अपने को भिन्न देखती है)।

उपाधिसंबन्धवशात्परात्मा ह्युपाधिधर्माननुभाति तद्गुणः ।
अयोविकारानविकारिवन्हिवत् सदैकरूपोऽपि परः स्वभावात् ॥ १९३ ॥

यद्यपि आत्मा सदा एकरूप । समझो तुम परात्मा स्वरुप ।।
पर हो कर संयुक्त उप कर्म । हो प्रकाशित संग इन धर्म ।।
होती युक्त विकार दूषित । जैसे शुद्ध अग्नि हो लौहित ।। (१९३)

भावार्थः यद्यपि आत्मा सदा एकरूप है, उसे तुम परात्मा स्वरुप समझो। परन्तु उपरोक्त (दोष) कर्मों से संयुक्त वह इन धर्मों (जैसे विज्ञानमय कोष) से प्रकाशित हो विकार युक्त दूषित हो जाती है। जिस प्रकार शुद्ध अग्नि (लौह से मिलकर) लौहित (लौह से युक्त लाल) हो जाती है।

४१. मुक्ति उपाय

शिष्य उवाच
भ्रमेणाप्यन्यथा वास्तु जीवभावः परात्मनः।
तदुपाधेरनादित्वान्नानादेर्नाश इष्यते ॥ १९४ ॥
अतोऽस्य जीवभावोऽपि नित्या भवति संसृतिः।
न निवर्तेत तन्मोक्षः कथं मे श्री गुरो वद ॥ १९५ ॥

शिष्य उवाच
पूछता शिष्य हे गुरु महन। भ्रमवश अथवा अन्य कारन।।
पाता जन जीव-भाव आत्मा। पर है वह अनादि परमात्मा।।
कहे आप नहीं होता विघटन। वस्तु अनादि किसी कारन।।(१९४)
अतः नित्य जीव-भाव आत्मन। हो कैसे तब निवृत्ति भव-बंधन।।
मिले कैसे मुक्ति जन्म-मरन। पाए कैसे जन निर्मोचन।।(१९५)

भावार्थ: शिष्य पूछता है, 'हे महात्मा गुरुदेव, भ्रमवश अथवा किसी कारण प्राणी की आत्मा को जीव-भाव प्राप्त होता है, परन्तु वह (आत्मा) अनादि परमात्मा है। आपने कहा कि किसी भी कारण अनादि वस्तु का नाश नहीं होता। अतः आत्मा का जीव-भाव भी नित्य (सदा रहने वाला) है। फिर भव-बंधन से निवृत्ति कैसे हो? जन्म-मरण से मुक्ति कैसे मिले? प्राणी मोक्ष कैसे पाए?

४२. मुक्ति का उपाय -आत्मज्ञान

श्रीगुरुरुवाच
सम्यक्पृष्टं त्वया विद्वन्सावधानेन तच्छृणु।
प्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना ॥ १९६ ॥

श्रीगुरुरुवाच
बोले गुरु हे शिष्य बुद्धिवन । पूछा तूने एक उचित प्रश्न ।।
हो सावधान अब उत्तर सुन । की जो भ्रमवश कल्पना भूजन ।।
नहीं होती वह कभी मानन । चूँकि है वह हेतु भ्रमित मन ।। (१९६)

भावार्थः गुरु बोले, 'हे बुद्धिमान शिष्य, तूने एक उचित प्रश्न पूछा। अब सावधान हो उत्तर सुन। जो भ्रमवश प्राणी ने कल्पना की है, वह माननीय नहीं होती। क्योंकि वह भ्रमित मन से की गई है।

भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः ।
न घटेतार्थसंबन्धो नभसो नीलतादिवत् ॥ १९७ ॥

है जो निष्क्रिय आरूप्यन । असंग आत्मा लौकिक भूजन ।।
नहीं सम्बन्ध दैह्य पावन । करे जन भ्रमित समान गगन ।। (१९७)

भावार्थः जो निष्क्रिय, निराकार, असंग, सांसारिक पुरुष की आत्मा है, उसका सम्बन्ध पवित्र आत्मा से नहीं है। वह आकाश के समान प्राणी को भ्रमित करती है। (अर्थात प्राणी इस लौकिक तत्व को पवित्र आत्मा समझ भ्रमित होता है)।

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः ।
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात् ॥ १९८ ॥

यद्यपि चित्त साक्षी निर्गुन । अक्रिय सुखेन अन्तः बोधन ।।
हेतु भ्रमवश होता उत्पन्न । असत जीव-भाव अन्तः भूजन ।।
समझो इसे अवस्तु निरूपन । होता दूर जब हो नष्ट वञ्चन ।। (१९८)

भावार्थः यद्यपि आत्मा साक्षी, निर्गुण, अक्रिय, अन्तः ज्ञानी, आनंदमयी है, परन्तु भ्रमवश प्राणी के अंदर असत जीव- भाव उत्पन्न हो जाता है। इसे अवस्तु का रूप समझो जो मोह नष्ट होने पर दूर होता है।

यावद्भ्रान्तिस्तावदेवास्य सत्ता मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य प्रमादात् ।
रज्ज्वां सर्पो भ्रान्तिकालीन एव भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तद्वत् ॥ १९९ ॥

जैसे हेतु भ्रम बुद्धि भूजन । लगे रस्सी समान विषानन ।।
पर हो जब दूर भ्रम धी जन । देख सके वह सर्प स्वच्छ वर्पन् ।।
सदृश जब तक है विस्मापन । है जीव-भाव हेतु अबोधन ।। (१९९)

भावार्थ: जैसे प्राणी की बुद्धि में भ्रम होने से रस्सी सर्प समान लगती है, परन्तु भ्रम दूर होने पर स्पष्ट रूप से सर्प दिखाई देता है, उसी प्रकार जब तक भ्रम रहता है, अज्ञानता के कारण जीव भाव है।

अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते ।
उत्पन्नायां तु विद्यायामाविद्यकमनाद्यपि ॥ २०० ॥
प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वं सहमूलं विनश्यति ।
अनाद्यपीदं नो नित्यं प्रागभाव इव स्फुटम् ॥ २०१ ॥
अनादेरपि विध्वंसः प्रागभावस्य वीक्षितः ।
यद्बुद्ध्युपाधि संबन्धात्परिकल्पितमात्मनि ॥ २०२ ॥
जीवत्वं न ततोऽन्यस्तु स्वरूपेण विलक्ष्यणः ।
संबन्धस्त्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञानपुरःसरः ॥ २०३ ॥
विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा ।
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम् ॥ २०४ ॥

अविद्या दे जीव-भाव जन । जो स्थित आदि काल से मन ।।
पर जैसे हो भंग जब स्वप्न । हो जाता नष्ट समूल वञ्चन ।। (२००)
सदृश होता जब ज्ञानोदय । होता नष्ट जीव-भाव हृदय ।।
यद्यपि है जीव-भाव पुरातन । पर नहीं सम भाव सनातन ।। (२०१)
होता विध्वंस हे शिष्यगन । प्रागभाव यद्यपि पुरातन ।।
है यह मनस् हेतु आत्मतत्व । है जो मर्यादित बुद्धि तत्व ।। (२०२)
अतः नहीं संभव हो पृथक । स्वरुप से आत्मतत्व जीवक ।।
सम्बन्ध आत्मा संग चेतना । हो हेतु अज्ञान संकल्पना ।। (२०३)

होती उचित इसकी निवृत्ति । होती जब ज्ञानमय वृत्ति ।।
आत्मा और ब्रह्म एक वर्पन् । कहे श्रुति यह सत्य बोधन ।। २०४)

भावार्थ: अविद्या प्राणी को जीव-भाव देती है, जो अनादि काल से मन में स्थित है। जैसे स्वप्न के टूटने पर भ्रम समूल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानोदय होने पर हृदय में जीव-भाव नष्ट हो जाता है। यद्यपि जीव-भाव आदि काल से है, परन्तु नित्य भाव के समान नहीं है। हे शिष्यगण, प्रागभाव (किसी वस्तु के उत्पन्न होने से पहले उसका न होने का भाव) यद्यपि पुरातन है, उसका विध्वंस होता है। यह आत्मतत्व के कारण जीवतत्व की मर्यादित बुद्धि की कल्पना है। अतः स्वरुप से आत्मतत्व जीव से पृथक हो, यह संभव नहीं। आत्मा का बुद्धि से सम्बन्ध अज्ञान की संकल्पना से होता है। इसकी उचित निवृत्ति तब होती है जब वृत्ति ज्ञानमय होती है। श्रुति कहती है कि सत्य ज्ञान आत्मा और ब्रह्म की एकता है।

तदात्मानात्मनोः सम्यग्विवेकेनैव सिध्यति ।
ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मसदात्मनोः ॥ २०५ ॥

होती ब्रह्मज्ञान की सिद्धि । समझे जब भली भांति बुद्धि ।।
विवेक आत्मा और अनात्मा । करें उचित विचार महात्मा ।।
विषय प्रत्यगात्म मिथ्यात्म । हेतु बुद्धि युक्त परमात्म ।। (२०५)

भावार्थ: ब्रह्मज्ञान की सिद्धि भली भांति आत्मा और अनात्मा का विवेक समझने से होती है। महात्मा प्रत्यगात्म (आंतरक स्व) और मिथ्यात्म (असत आत्म) का परमात्म में लिप्त बुद्धि से उचित विचार करें।

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्कापाये जलं स्फुटम् ।
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः ॥ २०६ ॥

हो जल चाहे कितना अस्वच्छ । बैठे तल कीच हो तब स्वच्छ ।।
सदृश आत्मा रहित वैकल्य । होती प्रकाशित सम दिव्य ।। (२०६)

भावार्थ: जल चाहे कितना भी गंदा हो पर कीचड़ के तल पर बैठ जाने से स्वच्छ हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा जब दोष रहित हो जाती है तब दिव्य समान प्रकाशित होती है।

असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः ।
ततो निरासः करणीय एव सदात्मनः साध्वहमादिवस्तुनः ॥ २०७ ॥

हो जाती जब निवृत्ति असत । हेतु विचिंतन आत्मा सत ।।
होती स्पष्ट प्रतीति प्रत्यक्ष । शुद्ध आंतरिक आत्मा समक्ष ।।
अतः कर बाध असत अहंकार । हो शिष्य शुद्ध रहित विकार ।। (२०७)

भावार्थ: जब सत आत्मा के चिंतन से असत की निवृत्ति हो जाती है तब शुद्ध आंतरिक आत्मा के समक्ष होने की स्पष्ट प्रमाणिक प्रतीति होती है। अतः अहंकार आदि असत का त्याग कर, शिष्य, विकार रहित शुद्ध हो।

अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमायाशब्दभाक् ।
विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः ।
दृश्यत्वाद्व्यभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते ॥ २०८ ॥

अतैव है कोष विज्ञानमय । विकारी जड़ अनित्य सीमामय ।।
है नहीं यह परात्मा नित्य । संभव नहीं नित्य हो अनित्य ।। (२०८)

भावार्थ: अतैव विज्ञानमय कोष विकारी, जड़, अनित्य और मर्यादित है। यह नित्य परात्मा नहीं है। अनित्य का नित्य होना संभव नहीं है।

४३. आनंदमय कोष

आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बित तनुर्वृत्तिस्तमोजृम्भिता
स्यादानन्दमायाः प्रियादिगुणकः स्वेष्टार्थलाभोदयः ।
पुण्यस्यानुभवे विभाति कृतिनामानन्दरूपः स्वयं
सर्वो नन्दति यत्र साधु तनुभृन्मात्रः प्रयत्नं विना ॥ २०९ ॥

प्रेरित हेतु दैह्य विहारन । होता प्रकट तमोगुण भावन ।।
समझो इसे कोष आनंदमय । युक्त गुण प्रिय प्रमोदमय ।।
होता प्रकट जब पूर्ण मन्मन् । विशेषतः पा फल कर्म पावन ।।
होती अनुभूति सुख भूजन । होता भान कोष सौभाग्यन ।।
हेतु इस सुख हो आनंदित जन । बिन करे कोई कठिन प्रयत्न ।। (२०९)

भावार्थ: आत्मा से प्रेरित सुख तमोगुण भाव से उत्पन्न होता है। इस प्रिय, प्रमोदमय गुण से युक्त (सुख) को आनंदमय कोष समझो। यह इच्छा पूर्ण होने पर प्रकट होता है, विषेशतः पुण्य कर्म के फल हेतु। इससे प्राणी को सुख की अनुभूति होती है और सौभाग्यशाली को (आनंदमय) कोष का भान होता है। इसके कारण प्राणी बिना कठिन प्रयत्न किए आनंदित होता है।

आनन्दमायाकोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्तिरुत्कटा ।
स्वप्नजागरयोरीषदिष्ट संदर्शनाविना ॥ २१०॥

होता भान इस कोष बहुता । दशा सुषुप्ति जब जन सोता ।।
पर है संभव अवस्था जाग्रत । मिल जाए यदि वस्तु अभिमत ।। (२१०)

भावार्थ: इसका अधिकतर भान सुषुप्ति अवस्था में होता है जब प्राणी सोता है। परन्तु जाग्रत अवस्था में भी संभव है यदि वांछित वस्तु की प्राप्ति हो जाए।

नैवायमानन्दमायाः परात्मा सोपाधिकत्वात्प्रकृतेर्विकारात् ।
कार्यत्वहेतोः सुकृतक्रियाया विकारसङ्घातसमाहितत्वात् ॥ २११ ॥

नहीं यह परात्मा आनंदमय । होता है आनंद विकारमय ।।
मर्यादित कर्म फल आश्रित । और संघ विकार प्राकृत ।। (२११)

भावार्थ: परात्मा आनंदमय नहीं है। आनंद विकारमय, मर्यादित, कर्म फल पर आश्रित और प्राकृत विकार का समूह होता है।

पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः ।
तन्निषेधावधि साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते ॥ २१२ ॥

करो अनुसरण श्रुति कथन । करो तुम पञ्च कोष निषेधन ।।
होगा बोध तब अति पावन । बचाए जो दैह्य रुप वेदन ।। (२१२)

भावार्थ: श्रुति के कथन का अनुसरण करो। तुम पञ्च कोष को निषेध करो। तब अत्यंत पवित्र बोध होगा जो ज्ञान स्वरुप आत्मा को बचाएगा।

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्ष्यणः ।
अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता ॥ २१३॥

समझो आत्मा स्व-प्रकाशित । पृथक पञ्च-कोष उप कथित ।।
है तीनों दशाओं में स्थित । स्वप्न सुषुप्ति और जाग्रत ।।
जो सत निर्विकार पावन । कहें सतात्मा इसे विद्वन ।। (२१३)

भावार्थ: आत्मा को स्व-प्रकाशित, उपरोक्त कथन के अनुसार पञ्च-कोशों से रहित, तीनों अवस्थाओं - स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत में स्थित, सत रूप, निर्विकार और निर्मल समझो। इसे विद्वान् सत आत्मा कहते हैं।

४४.आत्म स्वरुप विषयक प्रश्न

शिष्य उवाच
मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु ।
सर्वाभावं विना किंचिन्न पश्याम्यत्र हे गुरो
विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वात्मनात्मविपश्चिता ॥ २१४॥

शिष्य उवाच
पूछता शिष्य हे गुरु महत ।हों जब पञ्च-कोष अविहित ।।
हो तब सर्वाभाव उपागम ।फिर है क्या आत्मा तत्वम ।।(२१४)

भावार्थः शिष्य पूछता है, 'हे महात्मा गुरु, जब पञ्च-कोष निषिद्ध होते हैं तो सर्वाभाव (शून्य का भाव) की प्रतीति होती है। फिर आत्मा तत्व क्या है?

४५.आत्म स्वरुप निरूपण

श्रीगुरुरुवाच
सत्यमुक्तं त्वया विदन्निपुणोऽसि विचारणे ।
अहमादिविकारास्ते तदभावोऽयमप्यनु ॥ २१५ ॥

श्रीगुरुरुवाच
कहें गुरुवर सुनो विद्वन ।निःसंदेह है यह उचित कथन ।।
किए मनन तुम अति कुशलता ।अपि युक्त तुम बहु विकारता ।।
पर हेतु विचार अति पावन ।है अभाव हिय यह सब व्यसन ।। (२१५)

भावार्थः गुरुदेव बोले, 'विद्वान् सुनो। निःसंदेह यह कथन उचित है। तुमने अत्यंत कुशलता से चिंतन किया हैं यद्यपि तुम में अनेक विकार हैं। परन्तु अति शुद्ध विचारों के कारण इन दुर्गुणों का हृदय में अभाव भी है।

सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते ।
तमात्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया ॥ २१६ ॥

हो सर्व जिस हेतु अनुभूति । पर न कर सके स्व-प्रतीति ।।
जिस सूक्ष्म बुद्धि से साक्षित्व । समझो उसे तुम आत्मतत्व ।। (२१६)

भावार्थ: जिस के कारण सब की अनुभूति हो, पर स्वयं का अनुभव न हो, जिस सूक्ष्म बुद्धि से यह प्रमाणित हो, उसे ही तुम आत्मतत्व (परात्मा) समझो।

तत्साक्षिकं भवेत्तत्तद्यद्यद्येनानुभूयते ।
कस्याप्यननुभूतार्थे साक्षित्वं नोपयुज्यते ॥ २१७ ॥

होता अनुभव जिस हेतु तत्व । कहें हम उसे उसका साक्षित्व ।।
बिन किए अनुभव न हो संभव । मानें साक्षी कोई वस्तु भव ।। (२१७)

भावार्थ: जिस कारण तत्व का अनुभव होता है, हम उसे उसका प्रमाण कहते हैं। बिना अनुभव किए संसार में किसी वस्तु को साक्षी मानें, ऐसा संभव नहीं है।

असौ स्वसाक्षिको भावो यतः स्वेनानुभूयते ।
अतः परं स्वयं साक्षात्प्रत्यगात्मा न चेतरः ॥ २१८॥

है साक्षी आत्मा स्वयं । यतः करे अनुभव वह स्वयं ।।
अतः है नहीं कोई परे तस्य । जो साक्षात सतात्मा दैव्य ।। (२१८)

भावार्थ: आत्मा स्वयं ही साक्षी है क्योंकि वह स्वयं ही अनुभव होता है। इसलिए जो साक्षात दिव्य सत्य आत्मा है, उससे परे कोई नहीं है।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृम्भते
प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यन्तः स्फुरन्नैकधा ।
नानाकारविकारभागिन इमान् पश्यन्नहंधीमुखान्
नित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि ॥ २१९ ॥

जाग्रत सुषुप्ति और स्वप्न ।जो रहता अंदर हृदय भूजन ।।
करता वह अहम भाव स्फुरित ।होता वह अन्तः प्रकाशित ।।
मदादि सम प्रकृति दोषवत । देखता वह साक्षी रूप अंतरत ।।
पर जब हो स्फुरित अति पावन ।शुभ चिदानंदमय निरूपन ।।
समझो उसे ही तुम हे विद्वन ।अपना आप स्व-अंतःकरन ।।(२१९)

भावार्थः जो प्राणी के हृदय के अंदर जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न (तीनों अवस्थाओं) में रहता है, वह अहम् भाव स्फुरित करता है। वह अंदर प्रकाशित होता है। अहंकार आदि समान प्रकृति के दोषों को वह अन्तःकरण में साक्षी रूप देखता है। परन्तु जब शुभ अति पवित्र चिदानंद रूप स्फुरित हो, हे विद्वान्, उसे ही अपने अंतःकरण में अपना आप समझो।

घटोदके बिम्बितमर्कबिम्बम् आलोक्य मूढो रविमेव मन्यते ।
तथा चिदाभासमुपाधिसंस्थं भ्रान्त्याहमित्येव जडोऽभिमन्यते ॥ २२० ॥

जैसे समझे है रवि मूढ़जन ।घट जल में झलकता द्युवन् ।।
सदृश समझे अज्ञानी जन ।हेतु भ्रम है वही आत्मन ।।(२२०)

भावार्थः जैसे मूर्ख व्यक्ति घड़े के जल में झलकते सूर्य को सूर्य समझ लेता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष भ्रम से स्वयं को आत्मा समझ लेता है।

घटं जलं तद्गतमर्कबिम्बं विहाय सर्वं विनिरीक्ष्यतेऽर्कः ।
तटस्थ एतत्त्रितयावभासकः स्वयंप्रकाशो विदुषा यथा तथा ॥ २२१ ॥
देहं धियं चित्प्रतिबिम्बमेवं विसृज्य बुद्धौ निहितं गुहायाम् ।
द्रष्टारमात्मानमखण्डबोधं सर्वप्रकाशं सदसद्विलक्षणम् ॥ २२२ ॥

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं अन्तर्बहिःशून्यमनन्यमात्मनः ।
विज्ञाय सम्यङ्निजरूपमेतत् पुमान् विपाप्मा विरजो विमृत्युः ॥ २२३ ॥

समझता स्पष्टतः जो विद्वन । पृथक घट जल छाया द्युवन् ।।
करे अनुभव वह सूर्य सत्य । जो स्वयं ही ज्योतिर्मय दिव्य ।। (२२१)
सद्दश धी आत्मा और तन । छोड़ कर यह त्रितत्व जो जन ।।
स्थित मति अन्तः करे बोधन । पावन दैह्य अखंड वर्पन् ।। (२२२)
समझे हैं भिन्न सत असत । करे धारण हिय श्री भगवत ।।
हैं जो सर्व स्थल अवभासित । शाश्वत विभु सूक्ष्म सर्वगत ।।
रहित जो भेद अंदर बाह्य । समझे स्वयं भिन्न दैह्य दैव्य ।।
हो जाता वह अघ रहित पावन । समझे उचित दैह्य निरूपन ।। (२२३)

भावार्थः जो विद्वान् पुरुष स्पष्टतः घड़ा, जल और सूर्य को पृथक समझता है, वह सत्य सूर्य जो स्वयं ही दिव्य रूप से प्रकाशित है, उसका अनुभव करता है। बुद्धि, आत्मा और शरीर, इन तीनों तत्वों को छोड़कर बुद्धि के अंदर स्थित पवित्र, अखंड आत्मा का बोध करता है, सत-असत में भिन्नता समझता है, हृदय में श्री हरि को धारण करता है जो सर्व स्थान पर प्रकाशित, नित्य, शक्तिवान, सूक्ष्म और सर्वगत हैं, अंदर बाहर के भेद से रहित है, अपने से दिव्य आत्मा को भिन्न समझता है, वह पाप रहित पवित्र हो जाता है और वह आत्मा का सत्य रूप समझता है।

विशोक आनन्दघनो विपश्चित् स्वयं कुतश्चिन्न बिभेति कश्चित् ।
नान्योऽस्ति पन्था भवबन्धमुक्तेः विना स्वतत्त्वावगमं मुमुक्षोः ॥ २२४ ॥

हो विशोक और आनंदघन । नहीं होता भीत वह विद्वन ।।
हेतु मुमुक्ष है ज्ञान आत्मन । पथ जो छुड़ाए भव-बन्धन ।। (२२४)

भावार्थः शोक रहित और आनन्दमय होकर वह विद्वान् भीत नहीं होता (नहीं डरता)। मुमुक्ष (मोक्ष की इच्छा रखने वाला) के लिए ब्रह्म ज्ञान मार्ग है जो भव-बन्धन से छुड़ाता है।

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम् ।
येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्म सम्पद्यते बुधैः ॥ २२५ ॥

नहीं भेद ब्रह्म और दैह्य । हो जब यह ज्ञान जन दिव्य ।।
हो जाता वह मुक्त भव-बंधन । पा कर तब वह पद विलक्षन ।।
हो आनंद स्वरुप पावन । पा धाम हरि पाता मोचन ।।(२२५)

भावार्थ: ब्रह्म और आत्मा में कोई भेद नहीं है, जब यह ज्ञान दिव्य पुरुष को हो जाता है तब वह भव-बंधन से मुक्त हो, अद्वितीय पद पा कर, पवित्र आनंदमय हो कर, प्रभु का धाम प्राप्त कर मोक्ष पाता है।

ब्रह्मभूतस्तु संसृत्यै विद्वान्नावर्तते पुनः ।
विज्ञातव्यमतः सम्यग्ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः ॥ २२६ ॥

हो कर ब्रह्मभूत तब भूजन । नहीं पड़ता चक्र जन्म मरन ।।
अतः समझो उचित शिष्यगन । नहीं आत्मा ब्रह्म से भिन्न ।।(२२६)

भावार्थ: तब प्राणी ब्रह्मभूत हो कर, जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ता। अतः शिष्यगण, यह भली भांति समझो कि आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतःसिद्धम् ।
नित्यानन्दैकरसं प्रत्यगभिन्नं निरन्तरं जयति ॥ २२७ ॥

है ब्रह्म ज्ञान अनंत और सत । स्वतः सिद्ध पावन शाश्वत ।।
आनंद रुप अंतरंग अभिन्न । उन्नतिशील सतत प्रकर्षिन् ।।(२२७)

भावार्थ: ब्रह्म ज्ञान सत्य, अनंत, स्वतः सिद्ध, नित्य और पवित्र है। यह आनंद स्वरुप, अंतरंग, अभिन्न, उन्नतिशील, निरंतर और श्रेष्ठ है।

४६. ब्रह्म और विश्व की एकता

सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात् ।
न ह्यन्यदस्ति किंचित्सम्यक्परमार्थतत्त्वबोधदशायाम् ॥ २२८ ॥

समझो अद्वैत पदार्थ सत । अतिरिक्त इसके सब है असत ।।
है यही स्वात्मा शिष्यजन । हो जाता जब यह सत बोधन ।।
होता जन ज्ञानी आत्म-तत्व । नहीं रहता कुछ ज्ञेय तत्व ।। (२२८)

भावार्थ: अद्वैत को सत पदार्थ समझो। इसके अतिरिक्त सब असत है। हे शिष्यजन, यही स्वात्मा है। जब यह सत ज्ञान हो जाता है तब प्राणी परमात्म-तत्व का ज्ञानी हो जाता है। कुछ और जानने योग्य नहीं रहता।

यदिदं सकलं विश्वं नानारूपं प्रतीतमज्ञानात् ।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम् ॥ २२९ ॥

हेतु अज्ञान होता निदर्शन । नाना भांति सम्पूर्ण भुवन ।।
पर है अद्वैत ब्रह्म पावन । है यह रहित दोष सब भावन ।। (२२९)

भावार्थ: अज्ञान के कारण सम्पूर्ण विश्व अनेक प्रकार का प्रतीत होता है। परन्तु पवित्र अद्वैत ब्रह्म सभी भावनाओं और दोष से रहित होता है।

मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात् ।
न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः कुतो मृषा कल्पितनाममात्रः ॥ २३० ॥

नहीं होता घट पृथक मृदा । चूँकि वह मृदा सदृश सदा ।।
नहीं होती घट कोई सत्ता । बिन मृदा मिथ्या वृतित्ता ।। (२३०)

भावार्थः घड़ा मिट्टी से पृथक नहीं होता चूंकि वह सदा मिट्टी रूप है। घड़े की अपनी कोई सत्ता नहीं होती। बिना मिट्टी के उसका अस्तित्व मिथ्या है (अर्थात कोई अस्तित्व नहीं है)।

केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते ।
अतो घटः कल्पित एव मोहान् मृदेव सत्यं परमार्थभूतम् ॥ २३१॥

नहीं दिखा सकता किंचित । है घट अन्य मृदा विविक्त ।।
अतः है घट कल्पित विस्मापन । है सत्य घट मृदा निरूपन ।। (२३१)

भावार्थः कोई यह नहीं दिखा सकता कि घड़ा मिट्टी से भिन्न है। अतः घड़ा कल्पित मोह है। सत्य में घड़ा मिट्टी का स्वरुप है।

सद्ब्रह्मकार्यं सकलं सदेवं तन्मात्रमेतन्न ततोऽन्यदस्ति ।
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्पः ॥ २३२ ॥

है कर्म सत कहते सब ग्रंथन । सम्पूर्ण विश्व सत्य निरूपन ।।
क्योंकि है यही सम्पूर्णन । है नहीं उससे कुछ विलक्षन ।।
कहे जो हैं यह इससे असमन । समझो वह ग्रस्त विस्मापन ।।
है यह कथन सम सुप्त भूजन । कर रहा प्रलाप स्व-स्वप्न ।। (२३२)

भावार्थः ग्रन्थ कहते हैं कि सत कर्म सम्पूर्ण विश्व का सत्य स्वरुप है। क्योंकि यही सम्पूर्णता है। इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यह कहता है कि यह इससे भिन्न है, समझो कि वह मोह से ग्रस्त हैं। यह कथन उस समान है कि सोया प्राणी स्वप्न में प्रलाप कर रहा है।

ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी श्रौती ब्रूतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा ।
तस्मादेतद्ब्रह्ममात्रं हि विश्वं नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य ॥ २३३ ॥

समझो ब्रह्म सम्पूर्ण भुवन। कहे यह अथर्व ग्रंथ पावन।।
अतः है ब्रह्म-मात्र यह संसार। क्योंकि यही इसका आधार।।
नहीं संभव इसकी अन्य सत्ता। समझो भली भांति सत्यता।।(२३३)

भावार्थः ब्रह्म को सम्पूर्ण विश्व समझो, ऐसा श्रेष्ठ अथर्व ग्रन्थ कहता है। अतः यह विश्व ब्रह्म-मात्र है क्योंकि यही इसका आधार है। इसकी अन्य सत्ता संभव नहीं इस सत्य को भली भांति समझो।

सत्यं यदि स्याज्जगदेतदात्मनो-ऽनन्ततत्त्वहानिर्निगमाप्रमाणता।
असत्यवादित्वमपीशितुः स्यान् नैतत्त्रयं साधु हितं महात्मनाम् ॥ २३४ ॥

यदि मानो है सत्य संसार। हो जाती दैह्य युक्त विकार।।
है जो अनंत अत्यंत पावन। होंगे तब ग्रंथ अश्रद्धेयन।।
होगी मिथ्य प्रतीति भगवन। जो सर्वज्ञ सत्य और पावन।।
है नहीं हितकर यह त्रिकथन। हेतु ज्ञानी सत्पुरुष महन।।(२३४)

भावार्थः यदि यह मानो कि संसार सत्य है, तब अनंत अत्यंत पवित्र आत्मा विकारमय हो जाती है। श्रुति अप्रमाणिक हो जाती है। ईश्वर जो सर्वज्ञ, सत्य और पवित्र हैं, उनका अस्तित्व मिथ्या लगने लगता है। यह तीनों कथन ज्ञानी महात्मा सत्पुरुषों के लिए हितकर नहीं हैं।

ईश्वरो वस्तुतत्त्वज्ञो न चाहं तेष्ववस्थितः।
न च मत्स्थानि भूतानीत्येवमेव व्यचीक्लृपत् ॥ २३५ ॥

ज्ञानी आत्म-तत्व मधुसूदन। कहे निश्चय यह गूढ़ कथन।।
नहीं स्थित मैं भूत भुवन। नहीं स्थित वह मम निरूपन।।(२३५)

भावार्थः आत्म-तत्व के ज्ञानी श्री कृष्ण ने यह गूढ़ कथन निश्चय रूप से कहा है कि न तो मैं भूत (प्राणियों) में स्थित हूँ और न वह मेरे स्वरुप में स्थित हैं।

यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुषुप्तामुपलभ्यताम् ।
यन्नोपलभ्यते किंचिदतोऽसत्स्वप्नवन्मृषा ॥ २३६ ॥

**समझो यदि तुम सत्य भुवन । है यह सम भूजन गहन शयन ।।
पर हो न प्रतीति काल जाग्रन । अतः है असत्य समान स्वप्न ।। (२३६)**

भावार्थः यदि तुम संसार को सत्य समझते हो तो यह प्राणी के गहन शयन (सुषुप्ति) के समान है। लेकिन जाग्रण काल में इसकी प्रतीति नहीं होती, अतः यह स्वप्न के समान असत्य है।

अतः पृथङ्नास्ति जगत्परात्मनः पृथक्प्रतीतिस्तु मृषा गुणादिवत् ।
आरोपितस्यास्ति किमर्थवत्ताद् धिष्ठानमाभाति तथा भ्रमेण ॥ २३७ ॥

**अतैव नहीं पृथक है भुवन । अन्यत् भगवन जो करते रचन ।।
जैसे न कर सको पृथक गुन । गुणी पुरुष जो अति विद्वन ।।
हैं असत आरोपित द्रव्यघन । हों भासित हेतु विस्मापन ।। (२३७)**

भावार्थः इस कारण संसार रचयिता भगवान् से पृथक नहीं है।जैसे गुण को अति विद्वान गुणी से पृथक नहीं कर सकते। यह आरोपित वस्तुएं असत हैं। भ्रम के कारण भासित होती है।

भ्रान्तस्य यद्यद्भ्रमतः प्रतीतं भ्रामैव तत्तद्रजतं हि शुक्तिः ।
इदंतया ब्रह्म सदैव रूप्यते त्वारोपितं ब्रह्मणि नाममात्रम् ॥ २३८ ॥

**हो प्रतीत जो कुछ भूजन । हेतु अज्ञान प्रिय शिष्यगन ।।
समझो जग तुम ब्रह्म वर्पन् । ब्रह्म में ही आरोप्य भुवन ।।
भ्रमवश लगे सीपी सम रजत । पर है तो वह कोंच तथ्यत ।। (२३८)**

भावार्थः हे प्रिय शिष्यगण, प्राणी को अज्ञानवश जो कुछ प्रतीत होता है, उसे तुम ब्रह्म समझो। ब्रह्म में ही संसार आरोपित है। भ्रमवश सीपी चांदी जैसी लगे, परन्तु वास्तविकता में है तो वह सीपी।

४७. ब्रह्म निरूपण

अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं विशुद्धविज्ञानघनं निरञ्जनम् ।
प्राशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम् ॥ २३९॥

है परब्रह्म अनुपम पावन । सत शांत शुद्ध विज्ञानघन ।।
रहित आदि-अंत अक्रिय । सदैव आनंदस्वरूप दिव्य ।। (२३९)

भावार्थ: परब्रह्म अद्वितीय, पवित्र, सत, शांत, शुद्ध विज्ञानघन, आदि-अंत से रहित, अक्रिय एवं सदैव आनंद स्वरूप दिव्य है।

निरस्तमायाकृतसर्वभेदं नित्यं सुखं निष्कलमप्रमेयम् ।
अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्ययं ज्योतिः स्वयं किंचिदिदं चकास्ति ॥ २४० ॥

है रहित समस्त भेद मायिक । सुख रूप बिन कला अमायिक ।।
है वह प्रमाणादि अविषय । अरूप अव्यक्त अनाम विषय ।।
अक्षय तेज समान आदित्य । रहता वह स्व-दीप्त हृदय ।। (२४०)

भावार्थ: यह समस्त मायावी भेदों से रहित, सुख रूप, कला रहित, निष्कपट, प्रमाणादि अविषय (अर्थात प्रमाणों की आवश्यकता नहीं), अरूप, अव्यक्त, अनाम विषय, अक्षय और सूर्य के समान तेज वाला है। वह हृदय में स्व-प्रकाशित रहता है।

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तं निर्विकल्पकम् ।
केवलाखण्डचिन्मात्रं परं तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ २४१ ॥

कहते इस परम तत्व को महन । रहित त्रिपुटी मानस चेतन ।।
ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान सम त्रिगुण । अनंत निर्कल्प अखंड चेतन ।। (२४१)

भावार्थ: इस परम तत्व को महात्मा आध्यात्मिक दृष्टि से त्रिपुटी, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान त्रिगुण से रहित, अनंत, निर्कल्प और अखंड चैतन्य कहते हैं।

अहेयमनुपादेयं मनोवाचामगोचरम् ।
अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्म पूर्णमहं महः ॥ २४२ ॥

है यह अयोग्य त्याग व् ग्रहन । परिपूर्ण अविषय मन वचन ।।
अप्रमेय रहित आदि-अंत । महान तेजोमय सम भगवंत ।। (२४२)

भावार्थः यह त्याग और ग्रहण के अयोग्य है। मन वाणी का अविषय, परिपूर्ण, अप्रमेय, आदि-अंत से रहित, भगवान् के समान तेजोमय है।

४८. महावाक्य विचार

तत्त्वंपदाभ्यामभिधीयमानयोः ब्रह्मात्मनोः शोधितयोर्यदीत्थम् ।
श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्यग् एकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः ॥ २४३ ॥

तत और त्वम् शब्द से शोधन । ब्रह्म और आत्मा तत्व महन ।।
श्रुति किए पूर्णतः विवरण । बारम्बार एकत्व निरूपण ।। (२४३)

भावार्थः तत और त्वम् शब्द से शुद्ध हुए ब्रह्म और आत्मा महान तत्व की श्रुति ने बारम्बार पूर्ण एकत्व रूप में व्याख्या की है।

एक्यं तयोर्लक्षितयोर्न वाच्ययोः निगद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः ।
खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययोः कूपाम्बुराश्योः परमाणुमेर्वोः ॥ २४४ ॥

हों परस्पर विरोधी विषय । जैसे हैं जुगुनू आदित्य ।।
सेवक सम्राट कूप रत्नाकर । परमाणु और गिरि उत्तमर ।।
इनका एकत्व है लक्ष्यार्थ । नहीं संभव हो वाच्यार्थ ।। (२४४)

भावार्थः यदि परस्पर विरोधी विषय हैं जैसे, जुगुनू सूर्य, सेवक सम्राट, कूप सागर, परमाणु और सुमेरु, इनका एकत्व लक्ष्यार्थ में ही है (अर्थात लाक्षणिक है), वाच्यार्थ (अक्षरशः) संभव नहीं।

तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेषः ।
ईशस्य माया महदादिकारणं जीवस्य कार्यं शृणु पञ्चकोशम् ॥ २४५ ॥

है यह विरोध हेतु नियमन । नहीं सत्य यह उपाधि भूजन ।।
महत विषय तत्व आदि गुण । समझो तुम है माया भगवन ।।
कर्म पञ्च-कोष इस भुवन । हैं हेतु जीव तत्व बुद्धिवन ।। (२४५)

भावार्थ: यह विरोध मर्यादा के कारण हैं। हे प्राणी, यह मर्यादा सत्य नहीं है। यह समझो कि महत विषय तत्व आदि गुण प्रभु की माया के कारण हैं। हे विवेकी पुरुष, पञ्च-कोश (अन्नमयकोष, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश) कर्म पृथ्वी पर प्राणी के तत्व के कारण हैं।

एतावुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यङ्निरासे न परो न जीवः ।
राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटक् तयोरपोहे न भटो न राजा ॥ २४६॥

यह मर्यादा जीव व् भगवन । हों जब बाध उचित निरूपन ।।
न रहे जीवात्मा न भगवन । जैसे है राज्य उपाधि राजन ।।
है उपाधि भट अस्त्र कवच । यदि हो नहीं राज्य और कवच ।।
तब न कोई अस्तित्व राजन । नहीं कोई अस्तित्व युद्धिवन ।। (२४६)

भावार्थ: यह मर्यादा जीव और भगवान् की हैं। जब यह भली भांति बाधित हो जाते हैं, तब न जीवात्मा रह जाती है, और न ही भगवान् । जैसे राजा की उपाधि राज्य है और सैनिक की उपाधि अस्त्र कवच। यदि न राज्य हो न कवच, तो न राजा का कोई अस्तित्व है और न ही सैनिक का।

अथात आदेश इति श्रुतिः स्वयं निषेधति ब्रह्मणि कल्पितं द्वयम् ।
श्रुतिप्रमाणानुगृहीतबोधात् तयोर्निरासः करणीय एव ॥ २४७॥

ब्रह्म में है द्वैत कल्पित । करती इसका निषेध श्रुति ।।
कर बाध अतैव यह नियमन । करें श्रुति कथन अनुसरन ।। (२४७)

भावार्थ: ब्रह्म में द्वैत कल्पित है (अर्थात ईश्वर, जीव और जगत को नित्य रूप से अलग-अलग मानना कल्पित है)। इसका श्रुति निषेध करती है। इस मर्यादा को नियंत्रित कर श्रुति के कथन का अनुसरण करें।

नेदं नेदं कल्पितत्वान्न सत्यं रज्जुदृष्टव्यालवत्स्वप्नवच्च ।
इत्थं दृश्यं साधुयुक्त्या व्यपोह्य ज्ञेयः पश्चादेकभावस्तयोर्यः ॥ २४८ ॥

है यह जन कल्पना नहीं सत्य । हैं जैसे स्वप्न दृश्य असत्य ।।
समझो जैसे भ्रमवश भूजन । लगती रस्सी सम विषानन ।।
हो जाता जब ज्ञान अद्वैत्व । यह एकीभाव बनाता दिव्य ।। (२४८)

भावार्थ: यह प्राणी की कल्पना है, सत्य नहीं है, जैसे कि स्वप्न के दृश्य सत्य नहीं हैं। हे प्राणी, इसे उसी भांति समझो जैसे भ्रमवश रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है। जब अद्वैत्व का ज्ञान हो जाता है, तब यह एकीभाव (पुरुष को) दिव्य बनाता है।

ततस्तु तौ लक्ष्यणया सुलक्ष्यौ तयोरखण्डैकरसत्वसिद्धये ।
नालं जहत्या न तथाजहत्या किन्तूभयार्थात्मिकयैव भाव्यम् ॥ २४९ ॥

जीवात्मा और परमात्मा । हैं अखंड समझो महात्मा ।।
करो महाकाव्य अनुसरण । होती तब सिद्धि ज्ञान भूजन ।।
रहे स्मरण न पाएं यह ज्ञान । हेतु जहति अजहति प्रज्ञान ।।
अतैव करो प्रयोग महन । इस स्थल मिश्रण त्याग सलंग्न ।। (२४९)

भावार्थ: जीवात्मा और परमात्मा को हे महात्मा, अखंड समझो। महाकाव्य (श्रुति) का अनुसरण करो, तब हे प्राणी, यह ज्ञान सिद्ध होता है। स्मरण रहे कि यह ज्ञान जहति (पूर्ण त्याग) अथवा अजहति (पूर्ण सलंग्नता) से नहीं पा सकते। अतैव इस स्थान पर त्याग और सलंग्नता के मिश्रण का प्रयोग करें।

स देवदत्तोऽयमितीह चैकता विरुद्धधर्मांशमपास्य कथ्यते ।
यथा तथा तत्त्वमसीतिवाक्ये विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा ॥ २५० ॥

श्रुति कथित देवदत्त स्वर । समझो भली भांति प्रियवर ।।
समझाई यहां श्रुति एकता । समझो एक हैं जीव भगवंता ।।
है यही ब्रह्म ज्ञान महन । कहें स्पष्ट ग्रन्थ सहस्त्रन ।। (२५०)

भावार्थ: श्रुति में जो देवदत्त (ईश्वर द्वारा दिया हुआ) कथन है, उसे प्रियवर, भली भांति समझो। इसमें श्रुति ने एकता समझाई है (ईश्वर द्वारा दिए हुए ब्रह्म-ज्ञान कि ईश्वर और जीव एक है, इसकी महत्वा समझाई है)। तुम ईश्वर और जीव को एक समझो। यही महान ब्रह्म ज्ञान है जो सहस्त्रों ग्रंथों ने स्पष्ट कहा है।

संलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनोः अखण्डभावः परिचीयते बुधैः ।
एवं महावाक्यशतेन कथ्यते ब्रह्मात्मनोरैक्यमखण्डभावः ॥ २५१ ॥

कर प्राप्त ज्ञान तब भूजन । नहीं पृथक जीव और भगवन ।।
कर निश्चय एकता अंश चेतन । करते प्राप्त अखंड भाव जन ।।
करते हेतु यही वाक्य वर्णन । असंख्य ग्रन्थ सनातन पावन ।। (२५१)

भावार्थ: प्राणी जीव और ईश्वर पृथक नहीं हैं, यह ज्ञान प्राप्त कर चेतन अंश की एकता को निश्चित करते हुए अखंड भाव प्राप्त करते हैं। असंख्य पवित्र सनातन ग्रन्थ वाक्यों से यही वर्णन करते हैं।

४९. ब्रह्म भावना

अस्थूलमित्येतदसन्निरस्य सिद्धं स्वतो व्योमवदप्रतर्क्यम् ।
अतो मृषामात्रमिदं प्रतीतं जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम् ॥
ब्रह्माहमित्येव विशुद्धबुद्ध्या विद्धि स्वमात्मानमखण्डबोधम् ॥ २५२ ॥

करो तुम अनात्म भाव त्यजन । देती यह भाव लौकिक अर्जन ।।
करो स्थापित ज्ञान आत्मन । जो स्वतः सिद्ध असंग सम गगन ।।
जो परे मर्यादा विचार मन । होगी तब प्रतीति असत्य तन ।।
'मैं हूँ ब्रह्म' हो विचार मन । जानो ब्रह्म हेतु धी पावन ।। (२५२)

भावार्थ: अनात्म भावना (मैं शरीर हूँ, यह भावना) को त्यागो, यह सांसारिक लाभ देती है। आत्मज्ञान (परमात्मा का ज्ञान) को मन में स्थापित करो जो स्वतः सिद्ध एवं आकाश के समान अनासक्ति स्वरुप है और जो मन के विचारों की मर्यादा से दूर है। तब शरीर के मिथ्यापन की अनुभूति होगी। शुद्ध बुद्धि से मैं ब्रह्म हूँ, ऐसे विचार से ब्रह्म (आत्मा को) जानो।

मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं मृन्मात्रमेवाहितं
तद्वत्सज्जनितं सदात्मकमिदं सन्मात्रमेवाखिलम् ।
यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि तत्सत्यं स आत्मा स्वयं
तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥ २५३ ॥

जिस प्रकार निर्मित मृदा । घट आदि हैं सत्य में मृदा ।।
सदृश करे उत्पन्न जो भुवन । है वह ब्रह्म न अन्य परायन ।।
क्योंकि नहीं परे कुछ सत्य । है आत्मा ही सत्य और दिव्य ।।
अतः है जो ब्रह्म शांत पावन । हो तुम्हीं परब्रह्म शोभन ।। (२५३)

भावार्थ: जिस प्रकार मिट्टी से निर्मित घड़े आदि यथार्थ में मिट्टी ही हैं, उसी प्रकार जो संसार को उत्पन्न करता है, वह ब्रह्म ही है कोई और विषय नहीं। क्योंकि सत्य से परे कुछ भी नहीं है और आत्मा ही सत्य और दिव्य है। अतैव जो शांत, शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रह्म है, वह तुम्हीं हो।

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादि सर्वं यथा
मिथ्या तद्वदिहापि जाग्रति जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वतः ।
यस्मादेवमिदं शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यसत्
तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥ २५४ ॥

जैसे हेतु कल्पना दोष स्वप्न । हैं असत्य देश काल विद्वन ।।
सदृश अवस्था प्रतिबोधन । है जग असत्य हेतु विस्मापन ।।
हैं असत्य प्राण इन्द्रियाँ तन । मद आदि सब लौकिक लक्षन ।।
सत्य केवल यह तुम परब्रह्म । शांत अद्वितीय और पावन ।। (२५४)

भावार्थः जैसे स्वप्न दोष में देश, काल, कल्पना (असत्य) हैं, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में माया (अज्ञान) के कारण संसार असत्य है। प्राण, इन्द्रियाँ, शरीर, अहंकार आदि सब सांसारिक गुण असत्य हैं। केवल शांत, उत्कृष्ट और पवित्र तुम परब्रह्म ही सत्य हो।

जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं नामरूपगुणदोषवर्जितम् ।
देशकालविषयातिवर्ति यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५५ ॥

जो परे जाति कुल वंश जनन । रहित नाम गुण दोष वर्पन् ।।
है पृथक काल वस्तु देशजन । हो तुम वही ब्रह्म सोचो मन ।। (२५५)

भावार्थः जो जाति, कुल और वंश गोत्र से परे है, नाम, गुण, दोष और स्वरुप से रहित है, काल, वस्तु और राष्ट्र से पृथक है, वह ब्रह्म तुम ही हो, ऐसा मन में विचार करो।

यत्परं सकलवागगोचरं गोचरं विमलबोधचक्षुषः ।
शुद्धचिद्घनमनादि वस्तु यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५६ ॥

परे प्रकृति विषय वाचन । है निर्मल ज्ञेय ज्ञान नयन ।।
अनादि वस्तु शुद्ध चिद्घन । तुम वही ब्रह्म सोचो स्व-मन ।। (२५६)

भावार्थः प्रकृति एवं विषय वाचन से परे, निर्मल, ज्ञान नेत्रों से जानने वाला, अनादि वस्तु (जिसका कोई आदि नहीं), शुद्ध, चेतन ब्रह्म तुम ही हो, ऐसा अपने मन में सोचो।

षड्भिरूर्मिभिरयोगि योगिहृद् भावितं न करणैर्विभावितम् ।
बुद्ध्यवेद्यमनवद्यमस्ति यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५७ ॥

रहित छै उर्मि सम क्षुधा तर्षन । करते ध्यान जिसका योगीजन ।।
है अग्रहण हेतु इन्द्रिय । अगम्य बुद्धि दिव्य और स्तुत्य ।।
हो तुम वही ब्रह्म शिष्यगन । रखो यही भावना स्व-मन ।। (२५७)

भावार्थः छै उर्मियाँ से रहित जैसे भूख, प्यास (छै उर्मियाँ हैं - भूख, प्यास, सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु) योगीजन जिसका ध्यान करते हैं, इन्द्रियों सो जो ग्रहण नहीं की जा सकती, बुद्धि से अगम्य (बुद्धि से समझना असंभव), दिव्य और पूजन योग्य है, हे शिष्यगण, वह ब्रह्म तुम ही हो, ऐसी भावना अपने मन में रखो।

भ्रान्तिकल्पितजगत्कलाश्रयं स्वाश्रयं च सदसद्विलक्ष्यणम् ।
निष्कलं निरुपमानवद्धि यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५८ ॥

कल्पित आधार भ्रान्ति विश्व । है जो स्थित स्व-आश्रय तत्व ।।
भिन्न सत असत रहित अंग तन । रहित उपमा ऐश्वर्य संपन्न ।।
हो तुम वही ब्रह्म निरूपन । रखो सदैव यह विचार मन ।। (२५८)

भावार्थः भ्रान्ति कल्पित जगत (भ्रम से कल्पना किया जगत) का आधार तत्व जो अपने ही आश्रय में स्थित है (अर्थात स्वतंत्र है), सत असत से भिन्न (न सत है, न असत), शरीर अंग से रहित, उपमा रहित (जिसकी कोई उपमा नहीं की जा सकती), ऐश्वर्य संपन्न, वह ब्रह्म स्वरुप तुम ही हो, ऐसा विचार सदैव मन में रखो।

जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षय व्याधिनाशनविहीनमव्ययम् ।
विश्वसृष्ट्यवविघातकारणं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५९ ॥

जो रहित छै दोष सम विकास । जन्म वृद्धि रोग नाश ह्रास ।।
है अविनाशी हेतु त्रिभुवन । उद्भावन पालन और कदन ।।
हो तुम वही ब्रह्म हे दिव्य । रखो यही भावना स्व-हिय ।। (२५९)

भावार्थः जो छै विकार जैसे विकास, जन्म, वृद्धि, रोग, नाश और गिरावट से रहित अविनाशी है, त्रिभुवन की सृष्टि, पालन और विनाश का कारण है, हे दिव्य, तुम वही ब्रह्म हो, ऐसी भावना अपने हृदय में रखो।

अस्तभेदमनपास्तलक्ष्यणं निस्तरङ्गजलराशिनिश्चलम् ।
नित्यमुक्तमविभक्तमूर्ति यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६० ॥

जो रहित भेद और परिवर्तन। तरंग हीन निश्चल सम जलघन ।।
नित्य-मुक्त रहित विभाजन। वही ब्रह्म तुम रखो स्व-मन ।।(२६०)

भावार्थ: जो भेद और परिवर्तन से रहित, जलराशि के समान तरंगहीन निश्चल, सदैव स्वतंत्र और विभाजन की भावना से रहित है, वह ब्रह्म तुम हो, ऐसा अपने मन में रखो।

एकमेव सदनेककारणं कारणान्तरनिरास्यकारणम् ।
कार्यकारणविलक्ष्यणं स्वयं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६१ ॥

है जो एक परन्तु हेतु अनेक। हेतु निषेध अन्य कारण अनेक ।।
रहता पृथक भाव स्व-कर्तृन। वही ब्रह्म तुम करो मन मनन ।।(२६१)

भावार्थ: जो एक है परन्तु अनेक का कारण है, अन्य अनेक कारणों के निषेध का कारण है (अन्य कारण भी नहीं होने देता), स्व-कर्ता के भाव से पृथक रहता है, वह ब्रह्म तुम हो, ऐसा मन में चिंतन करो।

निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं यत्क्षराक्षरविलक्ष्यणं परम् ।
नित्यमव्ययसुखं निरञ्जनं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६२ ॥

जो रहित परिवर्तन महन। अविनाशी क्षर अक्षर भिन्न ।।
अव्यय आनंदरूप पावन। निष्कलंक रहित दोष भुवन ।।
हो तुम वही ब्रह्म रूप दिव्य। रखो सदा यह विचार हृदय ।।(२६२)

भावार्थ: जो परिवर्तन से रहित, महान, अविनाशी, क्षर-अक्षर से भिन्न, अव्यय, आनंद रूप, पवित्र, इस संसार के दोषों से रहित निष्कलंक है, हे दिव्य, वह ब्रह्म रूप तुम ही हो, ऐसा विचार सदैव हृदय में रखो।

यद्विभाति सदनेकधा भ्रमान् नामरूपगुणविक्रियात्मना ।
हेमवत्स्वयमविक्रियं सदा ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६३ ॥

जो निर्विकार सत सम स्वर्ण । पर भ्रमवश करें अभिभाषण ।।
नाना नाम रूप गुण विकार । हो ब्रह्म तुम रखो मन विचार ।। (२६३)

भावार्थ: जो स्वर्ण के समान निर्विकार सत है परन्तु भ्रमवश उसे नाना नाम, रूप, गुण और विकार से भासित किया जाता है, वह ब्रह्म तुम हो, ऐसा मन में विचार रखो।

यच्चकास्त्यनपरं परात्परं प्रत्यगेकरसमात्मलक्ष्यणम् ।
सत्यचित्सुखमनन्तमव्ययं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६४ ॥

नहीं परे जिसके कोई तत्व । होता प्रकाशमान सम दिव्य ।।
अध्यात्म एकरस अंतर दैह्य । सच्चिदानंद अनंत अव्यय ।।
हो तुम ही वह ब्रह्म दिव्य । रखो यह भाव सदा स्व-हिय ।। (२६४)

भावार्थ: जिसके परे कोई तत्व नहीं है, दिव्य समान प्रकाशित होता है, अध्यात्म, एकरस, अंतरात्मा, सच्चिदानंद, अनंत अव्यय है, वह दिव्य ब्रह्म तुम ही हो, ऐसा भाव अपने हृदय में रखो।

उक्तमर्थमिममात्मनि स्वयं भावयेत्प्रथितयुक्तिभिर्धिया ।
संशयादिरहितं कराम्बुवत् तेन तत्त्वनिगमो भविष्यति ॥ २६५ ॥

करो विचार यह विषय गहन । हेतु सुबुद्धि यथा ग्रंथन ।।
सम जल हस्त हो दूर संशय । हो बोध तत्व रहित विपर्यय ।। (२६५)

भावार्थ: इस विषय पर जैसा ग्रंथों में कहा है, सद्बुद्धि से गहन विचार करो। हस्तगत जल के समान संशय दूर होंगे और विकार रहित तत्व बोध होगा।

स्वं बोधमात्रं परिशुद्धतत्त्वं विज्ञाय सङ्घे नृपवच्च सैन्ये ।
तदाश्रयः स्वात्मनि सर्वदा स्थितो विलापय ब्रह्मणि विश्वजातम् ॥ २६६ ॥

समान मध्य सेना जो राजन । स्थित मध्य संसर्ग भूत तन ।।
सदृश्य रहते मध्य इस भुवन । करो बोध तुम ब्रह्म पावन ।।
है जो दिव्य और स्व-तापन । करो उनमें तन्मय तुम स्व-मन ।।
हो जाओ लीन ब्रह्म विद्वन । संग सम्पूर्ण दृश्यवर्ग भुवन ।। (२६६)

भावार्थ: जैसे सेना के मध्य में सम्राट, भूतों के संसर्ग में मध्य में स्थित शरीर, उसी प्रकार तुम विश्व में रहते हुए पवित्र ब्रह्म का बोध करो जो दिव्य और स्व-प्रकाशित है। उनमें तुम अपने मन को तन्मय करो। हे विद्वान्, इस प्रकार विश्व के समस्त दृश्यवर्ग के साथ ब्रह्म में लीन हो जाओ।

बुद्धौ गुहायां सदसद्विलक्ष्यणं ब्रह्मास्ति सत्यं परमद्वितीयम् ।
तदात्मना योऽत्र वसेद्गुहायां पुनर्न तस्याङ्गगुहाप्रवेशः ॥ २६७ ॥

रहता सदैव यह तत्व स्थित । परब्रह्म विलक्षण सत असत ।।
अद्वितीय गुहा हो एकरूप । नहीं लेता जन्म यह तन रूप ।। (२६७)

भावार्थ: यह तत्व सदा सत असत से विलक्षण, परब्रह्म, अद्वितीय कंदरा में एकरूप होकर स्थित रहता है। यह शरीर रूप में जन्म नहीं लेता (अर्थात जन्म-मरण चक्र में नहीं पड़ता)।

५०. वासना त्याग

ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनानादिरेषा
कर्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य संसारहेतुः ।
प्रत्यग्दृष्ट्यात्मनि निवसता सापनेया प्रयत्नान्
मुक्तिं प्राहुस्तदिह मुनयो वासनातानवं यत् ॥ २६८ ॥

पा आत्म-तत्व ज्ञान विद्वन । यदि रहे कर्ता भर्ता भावन ।।
है यह हेतु चक्र जन्म-मरन । करो दूर यह अनादि दुर्गन ।।
यद्यपि होता यह भाव प्रबल । पर हो स्थित अन्तरात्म बल ।।
करो दूर हेतु कठिन प्रयत्न । हो यह क्षीण मिले निर्मोचन ।। (२६८)

भावार्थ: हे विद्वान्, आत्म-तत्व का ज्ञान पा कर यदि कर्ता-भर्ता का भाव रहे तो यह जन्म-मरण चक्र का कारण है। इस अनादि वासना (जिस वासना का कभी अंत न हो) को दूर करो। यद्यपि यह भाव प्रबल है, परन्तु अन्तरात्म बल में स्थित होकर (अंतःकरण के दृढ़ निश्चय से) इसे दूर करो। इसको दूर करने का कठिन प्रयास करो। जब यह (भाव) क्षीण होता है, तब मोक्ष मिलता है।

अहं ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि ।
अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया ॥ २६९ ॥

है अध्यास अहम मम संवेदन । अनात्म वस्तु सम इन्द्रिय तन ।।
हेतु आत्मनिष्ठा हे विद्वन । करो दूर तुरंत यह दुर्गुन ।। (२६९)

भावार्थ: अनात्म (अंत हो जाने वाली वस्तुएं) जैसे इन्द्रिय, शरीर में अहम और मेरा भाव ही अध्यास (सत्य पर असत्य को समझना, जैसे रस्सी में सांप का भ्रम या आत्मा पर शरीर का आरोप) है। हे विद्वान्, आत्मनिष्ठा के द्वारा इस दुर्गुण को तुरंत दूर करो।

ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्वृत्तिसाक्षिणम् ।
सोऽहमित्येव सद्वृत्त्यानात्मन्यात्ममतिं जहि ॥ २७० ॥

हेतु बुद्धि प्राप्त ज्ञान सहज । कर जाग्रत अंतःकरण प्रयज् ।।
'हूँ मैं ब्रह्म' रख यह विचार । करो त्याग दूषित विकार ।।
जो हेतु आत्म-बुद्धि आचार । हैं अनात्म विषय विचार ।। (२७०)

भावार्थ: बुद्धि से सहज ज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) प्राप्त कर, अन्तःकरण में त्याग भावना को जाग्रत कर, 'मैं ब्रह्म हूँ' यह विचार रख, दूषित विकारों का जो आत्म-बुद्धि के आचरण के कारण अनात्म विषय के विचार हैं, उनका त्याग करो।

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम् ।
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७१ ॥

भाव लोक शास्त्र और तन । यद्यपि प्रमुख तीन संवेदन ।।
करो त्याग अध्यास विद्वन । हेतु जग हुए जो दैह्य उत्पन्न ।। (२७१)

भावार्थः हे विद्वान, लोक, शास्त्र और शरीर भाव, यह तीन यद्यपि प्रमुख भावनाओं हैं, पर लौकिक कारणों से आत्मा में उत्पन्न अध्यास हैं, इनका त्याग करो।

लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च ।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥ २७२॥

भाव लोक शास्त्र और तन । हैं यह तीन उत्तरदायिन् ।।
जिन हेतु हो न उचित ज्ञान जन । भटके वह लौकिक विस्मापन ।। (२७२)

भावार्थः लोक, शास्त्र और शरीर भाव, यह तीन भावनाएं प्राणी को उचित ज्ञान न होने के उत्तरदायी हैं और वह सांसारिक माया में भटकता रहता है।

संसारकारागृहमोक्षमिच्छोर् अयोमायां पादनिबन्धशृङ्खलम् ।
वदन्ति तज्ज्ञाः पटु वासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः समुपैति मुक्तिम् ॥ २७३ ॥

है यदि इच्छा पाएं मोचन । इस जग रुप कारागार बंधन ।।
तोड़ो सम स्व-पग लौह पाश । संभव तभी मोक्ष की आश ।। (२७३)

भावार्थः यदि इस सांसारिक रूप कारागार बंधन से मुक्त होने की इच्छा है, तब जो स्वयं के पैर में लोहे की बेड़ी समान हैं, उसको तोड़ो। तभी मोक्ष की आशा संभव है।

जलादिसंसर्गवशात्प्रभूत दुर्गन्धधूतागरुदिव्यवासना ।
संघर्षणेनैव विभाति सम्यग् विधूयमाने सति बाह्यगन्धे ॥ २७४ ॥

अन्तःश्रितानन्तदूरन्तवासना धूलीविलिप्ता परमात्मवासना ।
प्रज्ञातिसंघर्षणतो विशुद्धा प्रतीयते चन्दनगन्धवत्स्फुटम् ॥ २७५ ॥

हो यदि वस्तु अति विगंधन । हेतु संसर्ग जल आदि लेपन ।।
पर करें जब वह वस्तु संघर्षण । हो दूर लेप लौटे सुगंधन ।। (२७४)
सदृश विकार अन्तःकरण जन । है ढका हेतु लौकिक वासन ।।
हेतु सदबुद्धि बनो पावन । हो स्पष्ट सुगन्धित सम चन्दन ।। (२७५)

भावार्थः यदि वस्तु जल आदि के संसर्ग से लेप के कारण अत्यंत दुर्गन्ध वाली हो तब उस वस्तु को घिस कर लेप दूर करने पर उसकी सुगंध लौट आती है। उसी प्रकार प्राणी का अंतःकरण लौकिक वासनाओं के कारण जब विकार से भरा हो, तब सदबुद्धि से पवित्र होकर वह स्पष्ट चन्दन समान सुगन्धित हो जाता है।

अनात्मवासना जालैस्तिरोभूतात्मवासना ।
नित्यात्मनिष्ठया तेषां नाशे भाति स्वयं स्फुटम् ॥ २७६ ॥

हेतु समूह अनात्म-वासना । छुपती पावन आत्म-वासना ।।
रहो निरंतर आत्म समर्पन । हो नाश तब भाव अनात्मन ।।
हो आत्मा तब स्पष्ट पावन । देख सकें विद्वान् अंतर्मन ।। (२७६)

भावार्थः अनात्म-वासना के समूह (लौकिक प्रेम) के कारण पवित्र आत्म-वासना (ब्रह्म) छुपी रहती है। निरंतर आत्म समर्पण (आत्म अभ्यास) में रहने से अनात्म भावना का नाश होता है। तब विद्वान् अपने अंतर्मन में पवित्र आत्मा को स्पष्ट देख सकते हैं।

यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनः तथा तथा मुञ्चति बाह्यवासनाम् ।
निःशेषमोक्षे सति वासनानां आत्मानुभूतिः प्रतिबन्धशून्या ॥ २७७ ॥

होता शनैः अन्तर्मुख मन । संभव तब हों त्याग वासन ।।
हों मुक्त जब वासना भुवन । हो अनुभव तब अंत बंधन ।। (२७७)

भावार्थ: जब शनैः मन अंतर्मुखी होता है तब लौकिक भावनाओं का त्याग संभव है। जब लौकिक भावनाओं से मुक्ति मिल जाती है तब (लौकिक) बंधन का अंत अनुभव होता है।

५१. अध्याय-निरास

स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः ।
वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७८ ॥

नहीं भटकता योगीजन मन । रहें स्थिर जब आत्म-वर्पन् ।।
होते क्षय तब हृदय विकार । करो नष्ट अध्यास इस प्रकार ।। (२७८)

भावार्थ: जब आत्म-स्वरूप में स्थिर रहते हैं तब योगियों का मन नहीं भटकता। हृदय के विकार तब नष्ट होते है। इस प्रकार अध्यास को दूर करो।

तमो द्वाभ्यां रजः सत्त्वात्सत्त्वं शुद्धेन नश्यति ।
तस्मात्सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७९ ॥

हेतु रजोगुण और सत्वगुण । होता नाश तम आदि गुण ।।
हेतु सत्वगुण हो नष्ट रज गुण । करता पावन जन सत्वगुण ।।
अतैव ले आश्रय सत्वगुण । करो दूर अध्यास दुर्गुण ।। (२७९)

भावार्थ: रजोगुण और सतोगुण से तम आदि गुणों का नाश होता है। सतोगुण से रज गुण नष्ट होते हैं। सतोगुण प्राणी को पवित्र करता है। अतः सतोगुण का आश्रय लेकर अध्यास दुर्गुणों को दूर करो।

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ।
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८० ॥

करता प्रारब्ध पोषण तन । कर निश्चय यह भाव शोभन ।।
कर धारण धैर्य अपने मन । त्यागो अध्यास कर घोर यत्न ।। (२८०)

भावार्थः प्रारब्ध शरीर का पोषण करता है, इस सत्य भाव से निश्चय कर, अपने मन में धैर्य धारण कर, गहन यत्न से अध्यास का त्याग करो।

नाहं जीवः परं ब्रह्मेत्यतद्व्यावृत्तिपूर्वकम् ।
वासनावेगतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८१ ॥

'हूँ मैं परब्रह्म नहीं जीव' । ऐसे करो निषेध भाव जीव ।।
पाया जो भाव हेतु वासना । करो नष्ट यह अध्यास कामना ।। (२८१)

भावार्थः 'मैं परब्रह्म हूँ, जीव (शरीर) नहीं', ऐसे जीव भाव का निषेध करो (जीव भाव का त्याग करो)। जो भाव वासना के कारण है, उस अध्यास कामना का त्याग करो।

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सार्वात्म्यमात्मनः ।
क्वचिदाभासतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८२ ॥

जानो है आत्मा पूर्णत्व । सर्व शक्ति हेतु ज्ञान तत्व ।।
श्रुति युक्ति और अनुभूति । पाओ तब अध्यास निवृत्ति ।। (२८२)

भावार्थः ज्ञान तत्व, श्रुति, युक्ति और अनुभव से यह जानो कि आत्मा पूर्ण सर्व शक्ति है। तब अध्यास से मुक्ति मिलेगी।

अनादानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः ।
तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८३ ॥

है न कुछ ग्राह्य और त्याज्य । हेतु प्रज्ञ मुनि जानो आज्य ।।
नहीं बंधें वह कोई कर्तव्य । समझो यह भली भांति तथ्य ।।
अतैव निरंतर आत्म समर्पन । करो त्याग अध्यास भूजन ।। (२८३)

भावार्थः हे अज वंसज (आर्य), ज्ञानी मुनियों के लिए कुछ भी ग्राह्य और त्याज्य नहीं है। वह किसी (लौकिक) कर्तव्य से नहीं बंधते। इस सत्य को भली भांति जानो। अतः हे प्राणी, निरंतर आत्म समर्पण (आत्म योग) से अध्यास का त्याग करो।

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थ ब्रह्मात्मैकत्वबोधतः ।
ब्रह्मण्यात्मत्वदार्ढ्याय स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८४ ॥

हेतु छान्दोग्योपनिषद्म । तत्वमसि ‘तुम परब्रह्म स्वयं’ ।।
हैं ब्रह्म और आत्मा अभिन्न । करो बुद्धि दृढ़ यह बोधन ।।
हो जब प्राप्त यह ज्ञान महन । हो तब दूर अध्यास दुर्गुन ।। (२८४)

भावार्थ: छान्दोग्योपनिषद् ग्रन्थ के द्वारा तत्वमसि, ‘तुम स्वयं ब्रह्म हो’, ब्रह्म और आत्मा भिन्न नहीं हैं, इस ज्ञान से बुद्धि को दृढ़ करो। जब यह महान ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो अध्यास दुर्गुण दूर होते हैं।

अहंभावस्य देहेऽस्मिन्निःशेषविलयावधि ।
सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८५ ॥

नहीं हो जाए जब तक नष्ट तन । भाव अहंकार समान ‘मैं पन’ ।।
तब तक तुम युक्त चित्त साधन । करो दूर अध्यास दुर्गुन ।।(२८५)

भावार्थ: जब तक शरीर में अहम् भाव अहंकार जैसे 'मैं पन' नष्ट न हो जाए, तब तक युक्त चित्त से साधना करते हुए अध्यास दुर्गुण को दूर करो।

प्रतीतिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावता ।
तावन्निरन्तरं विद्वन्स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८६ ॥

हो रही जब तक जग जीवन । प्रतीति समान दशा स्वप्न ।।
तब तक सतत प्रयास विद्वन । करो दूर अध्यास दुर्गुन ।।(२८६)

भावार्थ: जब तक जगत और जीवन (देह) में स्वप्न अवस्था समान प्रतीति हो रही है, तब तक हे प्राज्ञ, निरंतर प्रयास से अध्यास दुर्गुण को दूर करो।

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः ।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ २८७ ॥

न दो अवसर आत्म-विस्मृति । हेतु शयन लौकिक प्रतीति ।।
करते रहो निरंतर चिंतन । 'हूँ मैं आत्मा' स्व-अंतःकरन ।। (२८७)

भावार्थः निद्रा, सांसारिक प्रतीति से आत्म-विस्मृति (स्वयं को भूलने) का अवसर नहीं दो। अपने अन्तःकरण में यह निरंतर चिंतन करते रहो कि 'मैं आत्मा हूँ'।

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमायां वपुः ।
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव ॥ २८८ ॥

हेतु वीर्य जनक हो उत्पन्न । भरा हुआ मल मांस यह तन ।।
समझो सम चांडाल भूजन । रहो दूर तुम स्थित भगवन ।। (२८८)

भावार्थः हे प्राणी, माता पिता के वीर्य से उत्पन्न मल मांस से भरे हुए इस शरीर को चांडाल के समान समझो। इससे तुम दूर रहो और भगवान् (ब्रह्म) में स्थित हो।

घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि ।
विलाप्याखण्डभावेन तूष्णी भव सदा मुने ॥ २८९॥

होता जब नाश बादल विद्वन । मिलते घट तब महान गगन ।।
करो सदृश लीन जीवात्मा । तुम प्राणी अन्तः परमात्मा ।।
हो स्थित अखंड भाव भूजन । हो मौन डूबो भाव भगवन ।। (२८९)

भावार्थः जब बादलों का (आकाश में) नाश होता है, तब यह बादल महान आकाश में मिल जाते हैं (अर्थात बादल वृहत आकाश में विलीन हो जाते हैं)। उसी प्रकार, हे प्राणी, तुम जीवात्मा को परमात्मा के अंदर विलीन करो। हे प्राणी, तब अखंड भाव में स्थित हो मौन होकर भगवद (ब्रह्म) भाव में डूब जाओ।

स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयंभूय सदात्मना ।
ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं त्यज्यतां मलभाण्डवत् ॥ २९० ॥

समझो है अधिष्ठाता भुवन । स्व-द्युतित परब्रह्म भगवन ।।
कर विलीन इस रूप पावन । करो त्याग यह भव और तन ।।
सम विनाशी मृतिका बर्तन । भरा हुआ जो मल और मेहन ।। (२९०)

भावार्थ: यह समझो कि जगत के अधिष्ठाता स्व-प्रकाशित परब्रह्म भगवन हैं। इस पवित्र रूप में विलीन हो इस संसार और शरीर को जो मल मूत्र से भरा है, मिट्टी के विनाशी बर्तन के समान त्याग दो (अर्थात इस पर ध्यान न दो)।

चिदात्मनि सदानन्दे देहारूढामहंधियम् ।
निवेश्य लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा ॥ २९१ ॥

अहम् बुद्धि व्याप्त जो यह तन । करो स्थित चिदात्मा भूजन ।।
त्याग अभिमान इस लिंग तन । हो स्थित अनन्य ब्रह्म वर्पन् ।। (२९१)

भावार्थ: हे प्राणी, इस शरीर में व्याप्त अहम अबुद्धि को चिदात्मा (पवित्र आत्मा) में स्थित करो। इस लिंग शरीर का अभिमान त्याग कर अद्वितीय ब्रह्म रूप में स्थित हो जाओ।

यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्तः पुरं यथा ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ २९२ ॥

करो संकल्प तुम अपने मन । जो जग प्रतिबिम्ब भव दर्पन ।।
'हूँ मैं स्वयं ही वह ब्रह्म' । हों तब लोमन कृतवेदिन् ।। (२९२)

भावार्थ: तुम अपने मन में यह संकल्प करो कि इस संसार दर्पण में जो प्रतिबिम्ब है (अर्थात मेरा अस्तित्व है), 'वह ब्रह्म मैं स्वयं ही हूँ'। तब रोम रोम कृतज्ञ होंगे।

यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं चिदद्वयानन्दमरूपमक्रियम् ।
तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजेत शैलूषवद्वेषमुपात्तमात्मनः ॥ २९३ ॥

है जो अद्वितीय ब्रह्म वर्पन् । निष्क्रिय आनंद रूप चेतन ।।
कर प्रयत्न पाएं वह पावन । त्यागें तन सम नट असत वेषन ।। (२९३)

भावार्थ: जो अद्वितीय, निष्क्रिय, आनंद रूप, चेतन ब्रह्म है, उस पवित्र को प्रयास कर पाएं। नट की भांति इस मिथ्या वेश तन का त्याग करें।

५२. अहं पदार्थ निरूपण

सर्वात्मना दृश्यमिदं मृषैव नैवाहमर्थः क्षणिकत्वदर्शनात् ।
जानाम्यहं सर्वमिति प्रतीतिः कुतोऽहमादेः क्षणिकस्य सिध्येत् ॥ २९४ ॥

है सब असत्य जो दृश्य भुवन । है नहीं अहम् चूँकि क्षणिन् ।।
हेतु क्षणिक मिथ्या प्रवृत्ति । 'जानूं सब है' दर्प वृत्ति ।। (२९४)

भावार्थ: जो जगत में दिखाई देता है वह सब असत्य है। चूंकि यह (जगत) क्षणिक है, अतः अहम् नहीं है। क्षणिक होने के कारण यह मिथ्या बोध है। 'सब जानता हूँ' यह अहंकार वृत्ति है।

अहंपदार्थस्त्वहमादिसाक्षी नित्यं सुषुप्तावपि भावदर्शनात् ।
ब्रूते ह्यजो नित्य इति श्रुतिः स्वयं तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्ष्यणः ॥ २९४ ॥

है साक्षी दर्प आदि अहम् । होता बोध अपि शयन कालम् ।।
कहे श्रुति इसे 'अजो नित्य' । है यह आत्मिक भिन्न सत असत्य ।। (२९५)

भावार्थ: अहंकार आदि का साक्षी अहम् है। इसका बोध शयन अवस्था में भी होता है। इसे श्रुति 'अजो नित्य' कहती है। यह आत्मिक है जो सत और असत्य से भिन्न है।

विकारिणां सर्वविकारवेत्ता नित्याविकारो भवितुं समर्हति ।
मनोरथस्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटं पुनः पुनर्दृष्टमसत्त्वमेतयोः ॥ २९६ ॥

हो ज्ञान जब दर्प सम विकार । होता तब जन नित्य अविकार ।।
हो अवस्था जाग्रत या शयन । अथवा दशा सम विस्मापन ।।
देखता वह मिथ्यता इनकी । इस सूक्ष्म या स्थूल तन की ।। (२९६)

भावार्थ: अहंकार आदि का ज्ञानी नित्य और अविकारी होता है। उसे जाग्रत, शयन अथवा भ्रम अवस्था में सूक्ष्म और स्थूल (दोनों) शरीर की मिथ्यता दिखाई देती है।

अतोऽभिमानं त्यज मांसपिण्डे पिण्डाभिमानिन्यपि बुद्धिकल्पिते ।
कालत्रयाबाध्यमखण्डबोधं ज्ञात्वा स्वमात्मानमुपैहि शान्तिम् ॥ २९७ ॥

अतैव सुनो ध्यान से विद्वन । करो त्याग युक्त मांस इस तन ।।
छोड़ो अहम् बुद्धि दम्भी तन । हो तब आत्मा अयुक्त बंधन ।।
पाओ अखंड ज्ञान निरूपन । हो प्राप्ति तब शान्ति भूजन ।। (२९७)

भावार्थ: अतैव हे विद्वान्, ध्यान से सुनो। इस मांस युक्त शरीर का त्याग करो (अर्थात शरीर से जुड़े लौकिक सुखों का त्याग करो)। इस अहंकारी शरीर की अहम बुद्धि छोड़ो (अर्थात 'मैं सब जानता हूँ', ऐसी प्रवृत्ति का त्याग करो)। तब आत्मा बंधन विहीन होगी (लौकिक बंधनों से छुटकारा मिल जाएगा)। अखंड ज्ञान स्वरुप पाओगे और हे प्राणी, तब शान्ति प्राप्त होगी।

त्यजाभिमानं कुलगोत्रनाम रूपाश्रमेष्वार्द्रशवाश्रितेषु ।
लिङ्गस्य धर्मानपि कर्तृतादिंस् त्यक्ता भवाखण्डसुखस्वरूपः ॥ २९८ ॥

करो त्याग तुम इस तन विद्वन । है जो युक्त मांस और असन् ।।
छोड़ो दर्प कुल गोत्र वर्पन् । नाम आश्रम अन्य अकल्पन ।।
कर्ता भोक्ता धर्म लिंग तन । होगे तब आनंद निरूपन ।। (२९८)

भावार्थ: हे विद्वान्, इस मांस और रक्त से युक्त शरीर का तुम त्याग करो (अर्थात लौकिक सुखों का त्याग करो)। कुल, गोत्र, रूप, नाम, आश्रम एवं अन्य यश, इस लिंग शरीर के धर्म कर्ता, भोक्ता के अभिमान का त्याग करो। तब आनंद स्वरुप हो जाओगे।

५३. अहंकार निंदा

सन्त्यन्ये प्रतिबन्धाः पुंसः संसारहेतवो दृष्टाः ।
तेषामेवं मूलं प्रथमविकारो भवत्यहंकारः ॥ २९९ ॥

हैं हेतु अनेक पाए जन बंधन । पर मूल हेतु दर्प अंतःकरन ।।
है यह विकार अत्यंत महन । हों अन्य दोष इससे उत्पन्न ।। (२९९)

भावार्थः प्राणी के बंधन के अनेक कारण हैं, लेकिन मूल कारण अंतःकरण का अहंकार है। यह विकार सबसे बड़ा है। इसी से अन्य दुर्गुण उत्पन्न होते हैं।

यावत्स्यात्स्वस्य संबन्धोऽहंकारेण दुरात्मना ।
तावन्न लेशमात्रापि मुक्तिवार्ता विलक्ष्यणा ॥ ३०० ॥

रहता जब तक सम्बन्ध आत्मा । इस विकार महत महात्मा ।।
नहीं दे सके कोई आश्वासन । पा सके मुमुक्ष निर्मोचन ।। (३००)

भावार्थः हे महात्मा, जब तक इस महान विकार का आत्मा के साथ सम्बन्ध रहता है तब तक मुमुक्ष को मोक्ष प्राप्ति का आश्वासन कोई नहीं दे सकता।

अहंकारग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते ।
चन्द्रवद्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः ॥ ३०१ ॥

पा मुक्ति दर्प सम राहु जन । हो जैसे सोम पूर्ण पावन ।।
हो भक्त निर्मल स्व-उद्योतन । नित्यानंद स्वरुप भूजन ।। (३०१)

भावार्थः राहु के समान अहंकार से मुक्ति पाकर, जिस प्रकार चन्द्रमा (राहु से मुक्ति पाकर) पूर्ण और पवित्र हो जाता है, हे प्राणी, भक्त भी निर्मल, स्व-प्रकाशित और नित्यानंद स्वरुप हो जाता है।

योवा पुरे सोऽहमिति प्रतीतो बुद्ध्या प्रक्लृप्तस्तमसातिमूढया ।
तस्यैव निःशेषतया विनाशे ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः ॥ ३०२ ॥

हो मोहित अज्ञान भूजन । 'हूँ यही मैं' होता बोधन ।।
होता जब नाश यह असतपन । पाए ब्रह्मज्ञान तब भूजन ।। (३०२)

भावार्थ: अज्ञान के मोह में 'मैं यही हूँ', ऐसा प्राणी को बोध होता है। जब इस मिथ्यापन का नाश हो जाता है, तब प्राणी को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है)।

ब्रह्मानन्दनिधिर्महाबल वताहंकारघोराहिना
संवेष्ट्यात्मनि रक्ष्यते गुणमायाइश्चण्डेस्त्रिभिर्मस्तकैः ।
विज्ञानाख्यमहासिना श्रुतिमता विच्छिद्य शीर्षत्रयं
निर्मूल्याहिमिमं निधिं सुखकरं धीरोऽनुभोक्तुंक्षमः ॥ ३०३॥

यद्यपि ब्रह्म आनंद परम धन । पर हेतु दर्प सर्प निरूपन ।।
छिपा रखा इसे सत रज तम । अन्तः प्रचंड मस्तिष्क भूजन ।।
काटे खड्ग यह सर जब महन । हों दूर विकार हेतु त्रिगुन ।।
करे वध सर्प रूप अहंकार । पाए तब आनंद रहित विकार ।। (३०३)

भावार्थ: यद्यपि ब्रह्म आनंद परम धन है परन्तु सर्प रूप अहंकार सत, रज, तम (तीन गुणों) ने प्राणी के प्रचंड मस्तिष्क में इसे छिपा रखा है। जब कोई महात्मा इस मस्तिष्क को खड़ग से काटकर इन त्रिगुणों के विकार का दूर करता है, सर्प रूप अहंकार का वध कर देता है, तब अविकारी हो आनंद पाता है।

यावद्वा यत्किंचिद्विषदोषस्फूर्तिरस्ति चेद्देहे ।
कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहन्तापि योगिनो मुक्त्यै ॥ ३०४॥

जब तक है तनिक यह विष तन । हो न निरोगी न पाए मोचन ।।
अतैव अहंकार है बंधन । प्राप्ति मुक्ति समझ योगीजन ।। (३०४)

भावार्थ: जब तक तनिक भी यह विष (अहंकार) शरीर में है, तब तक न निरोगी (तन) होगा और न मोक्ष पाएगा। हे योगी समझ कि इस कारण अहंकार मुक्ति पाने में बंधन है।

अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या तत्कृतनानाविकल्पसंहृत्या ।
प्रत्यक्तत्त्वविवेकादिदमहमस्मीति विन्दते तत्त्वम् ॥ ३०५ ॥

हो जब निवृत्ति दर्प भूजन । तब हों नाश विकल्प उत्पन्न ।।
जगता तब विवेक आत्म तत्व । 'हूँ मैं ब्रह्म' बोध परम तत्व ।। (३०५)

भावार्थ: हे प्राणी, जब अहंकार की निवृत्ति हो जाती है, तब विकल्पों का नाश हो जाता है (असत्यपन दूर हो जाता है और विकार नष्ट हो जाते हैं)। तब आत्म तत्व का विवेक जग जाता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस परम तत्व का बोध होता है।

अहङ्कर्तर्यस्मिन्नहमिति मतिं मुञ्च सहसा
विकारात्मन्यात्मप्रतिफलजुषि स्वस्थितिमुषि ।
यदध्यासात्प्राप्ता जनिमृतिजरादुःखबहुला
प्रतीचश्चिन्मूर्तेस्तव सुखतनोः संसृतिरियम् ॥ ३०६ ॥

करो त्याग शीघ्र तुम विद्वन । अहम् बुद्धि युक्त अवलेपन ।।
जो युक्त विकार भव दर्पन । जो हेतु नाना दुःख भुवन ।।
रखो स्मरण हो तुम भूजन । चैतन्य परमानंद निरूपन ।। (३०६)

भावार्थ: हे विद्वान्, तुम शीघ्र अहंकार युक्त अहम् बुद्धि का त्याग करो जो इस संसार रूपी दर्पण में विकार युक्त है और इस संसार में अनेक दुःखों का कारण है (जैसे वृद्ध अवस्था, रोग, जन्म, मरण)। हे प्राणी स्मरण रखो कि तुम चैतन्य परमानंद स्वरुप हो (अतैव इस दुर्बुद्धि का त्याग करो)।

सदैकरूपस्य चिदात्मनो विभोर् आनन्दमूर्तेरनवद्यकीर्तेः ।
नैवान्यथा क्वाप्यविकारिणस्ते विनाहमध्यासममुष्य संसृतिः ॥ ३०७ ॥

हों दूर जब दर्पादि विद्वन । देते जो अध्यास भव- बंधन ।।
मिलते तब सर्वज्ञ रूप एकन । चिदात्मा व्यापक कीर्तिवन ।।
अविकारी आनंद आत्मन । जो सब प्रकार रहित बंधन ।। (३०७)

भावार्थ: हे विद्वान्, जब अहंकार आदि (दुर्गुण) जो अध्यास भव-बंधन देते हैं, दूर होते हैं, तब सर्वज्ञ, एक रूप, चिदात्मा, व्यापक, कीर्तिवान, अविकारी आनन्दात्मा (परमात्मा) मिलते हैं जो सब प्रकार से बंधन से रहित हैं।

तस्मादहंकारमिमं स्वशत्रुं भोक्तुर्गले कण्टकवत्प्रतीतम् ।
विच्छिद्य विज्ञानमहासिना स्फुटं भुङ्क्ष्वात्मसाम्राज्यसुखं यथेष्टम् ॥ ३०८ ॥

सम कण्टक भोजन हे विद्वन । त्याग अहंकार है जो सपत्न ।।
कर प्रयोग विज्ञान निरूपण । करो तुम महा खड़ग से छेदन ।।
हो संभव कर सको तब सेवन । आत्म साम्राज्य सुख भूजन ।। (३०८)

भावार्थ: हे विद्वान, भोजन में कांटे के समान शत्रु अहंकार का त्याग करो। विज्ञान रूपी महाखड़ग का प्रयोग कर इसे छेदन करो (इसे काट दो)। तब हे प्राणी, आत्म साम्राज्य सुख का सेवन संभव हो सकेगा

ततोऽहमादेर्विनिवर्त्य वृत्तिं संत्यक्तरागः परमार्थलाभात् ।
तूष्णीं समास्स्वात्मसुखानुभूत्या पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्विकल्पः ॥ ३०९ ॥

कर अंत कर्ता भोक्तापन । हेतु सम अहंकार दौर्जन ।।
रहित राग हो जाओ पावन । करो प्राप्त तब तत्व ब्रह्मन् ।।
डूब अनुभव आनंद आत्मा । हो जाओ शांत स्थिर आत्मा ।। (३०९)

भावार्थ: अहंकार आदि समान दुर्गुण के कारण कर्ता और भोक्तापन का अंत कर राग रहित हो पवित्र हो जाओ, तब ब्रह्म तत्व की प्राप्ति होगी। आत्मानन्द में डूब कर तब शांत और निर्विकल्प आत्मा हो जाओ।

समूलकृत्तोऽपि महानहं पुनः व्युल्लेखितः स्याद्यदि चेतसा क्षणम् ।
संजीव्य विक्षेपशतं करोति नभस्वता प्रावृषि वारिदो यथा ॥ ३१० ॥

रखो स्मरण सदा तुम विद्वन । हों विनष्ट समूल यदि दुर्गुन ।।
पर रहे किंचित इनका चिंतन । हो जाते यह प्रकट पुनः पुन ।।
मचाते उत्पात सहस्त्रन । सम ऋतु वर्षा मेघ युक्त पवन ।। (३१०)

भावार्थ: हे विद्वान्, यह स्मरण रखो कि यदि दुर्गुण समूल नष्ट हो जाएं, पर लेश मात्र भी चिंतन रह जाए तो यह बारम्बार प्रकट हो कर सहस्त्रों उत्पात मचाते हैं जैसे वर्षा ऋतु में वायु से युक्त बादल।

५४. क्रिया, चिंता और वासना का त्याग

निगृह्य शत्रोरहमोऽवकाशः क्वचिन्न देयो विषयानुचिन्तया ।
स एव संजीवनहेतुरस्य प्रक्षीणजम्बीरतरोरिवाम्बु ॥ ३११ ॥

कर निग्रह यह दर्प सम सपत्न । करते रहो सदा विषय चिंतन ।।
न दो अवसर हो पुनः उत्पन्न । न दो जल विनष्ट निम्बुक सस्यन ।। (३११)

भावार्थ: अहंकार समान शत्रु का विनाश कर इस विषय पर सदैव चिंतन करते रहो। इसे पुनः उत्पन्न होने का अवसर नहीं दो। नष्ट हुए नीबू के वृक्ष को जल नहीं दो।

देहात्मना संस्थित एव कामी विलक्ष्यणः कामयिता कथं स्यात् ।
अतोऽर्थसन्धानपरत्वमेव भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतुः ॥ ३१२ ॥

यदि स्थित देहात्म बुद्धि मन । करे लिप्त यह कामना भुवन ।।
हो जाए यदि पृथक यह तन । होती तब जनात्मा विलक्षन ।।
हेतु भेद आसक्ति चिंतन । है परम कारण भव-बंधन ।। (३१२)

भावार्थ: यदि मन देहात्म बुद्धि में स्थित है, तो यह लौकिक कामनाओं में लिप्त करता है। यदि तन इससे पृथक हो जाए (अर्थात लौकिक वासनाओं से हट जाए) तब प्राणी की आत्मा विलक्षण हो जाती है। भेद आसक्ति का चिंतन भव-बंधन का परम कारण है।

कार्यप्रवर्धनाद्बीजप्रवृद्धिः परिदृश्यते ।
कार्यनाशाद्बीजनाशस्तस्मात्कार्यं निरोधयेत् ॥ ३१३ ॥

बढ़े कार्य हो तब वृद्धि बीज । होता यह नाश जब नष्ट बीज ।।
अतः करो बीज नष्ट भूजन । पाओगे तब तुम निर्मोचन ।। (३१३)

भावार्थ: बीज की वृद्धि से कार्य बढ़ता है (अर्थात इच्छाएं बढ़ने से वासना बढ़ती है)। बीज के नाश होने पर यह भी नष्ट हो जाता है। अतः प्राणी, बीज को नष्ट करो तब तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी।

वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्ध्या च वासना ।
वर्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते ॥ ३१४ ॥

बढ़े इच्छा जब बढ़े वासना । हेतु वासना अतः कामना ।।
है यह चक्र अत्यंत विलक्षन । नहीं छूटता लौकिक बंधन ।। (३१४)

भावार्थ: इच्छा के बढ़ने से वासना बढ़ती है। वासना का कारण कामना है। यह चक्र अति विलक्षण है। इससे लौकिक बंधन नहीं छूटता।

संसारबन्धविच्छित्त्यै तद्द्वयं प्रदहेद्यतिः ।
वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तया क्रियया बहिः ॥ ३१५ ॥

करो अतः दूर यह दुर्गुण । मुनि हों दूर तब भव-बंधन ।।
बाह्य क्रिया व् विषय चिंतन । हैं समझो हेतु वृद्धि मन्मन् ।। (३१५)

भावार्थः अतः हे मुनि, भव-बंधनों को दूर करने के लिए के लिए इन दुर्गुणों को दूर करो। बाह्य क्रिया (शरीर के द्वारा की गई क्रियाएं) और विषय चिंतन (भोग विलासों के विषय पर चिंतन) ही इच्छा वृद्धि के कारण हैं, यह समझो।

ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृतिमात्मनः ।
त्रयाणां च क्षयोपायः सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ३१६ ॥
सर्वत्र सर्वतः सर्वब्रह्ममात्रावलोकनैः ।
सद्भाववासनादार्ढ्यात्तत्त्रयं लयमश्नुते ॥ ३१७ ॥

हेतु उपरोक्त द्वि दोष कथन । करती वासना उत्पन्न बंधन ।।
हेतु आत्मा तब बुद्धिवन । बंधता जन जन्म-मरण बंधन ।। (३१६)
पर जब देखो ब्रह्ममय भूजन । सब ओर सब स्थान तुम विद्वन ।।
होता तब क्षय त्रिदुर्गुन । होता दृढ़ मन ब्रह्म बोधन ।। (३१७)

भावार्थः हे बुद्धिवान, आत्मा के लिए वासना उपरोक्त दो कथनों से बंधन उत्पन्न करती है। तब प्राणी जन्म-मरण के बंधन में पड़ जाता है। पर हे महात्मा, जब सब ओर और सब स्थान पर प्राणी को ब्रह्ममय देखो (ईश्वर का रूप देखो), तब यह तीनों दुर्गुण क्षय हो जाते हैं और मन ब्रह्म-ज्ञान में दृढ़ हो जाता है।

क्रियानाशे भवेच्चिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः ।
वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते ॥ ३१८ ॥

होती नष्ट तब क्रिया भूजन । होता तब नष्ट शिरोवेदन ।।
होतीं तब नष्ट वासना मन । हेतु विनाश चिंता भुवन ।।
क्षय वासना ही निर्मोचन । जो देता जन मुक्ति जीवन ।। (३१८)

भावार्थः जब प्राणी की क्रिया नष्ट हो जाती है (ब्रह्म-ज्ञान हेतु अकर्मता आ जाती है), तब चिंताएं नष्ट हो जाती हैं। तब सांसारिक चिंताओं के विनाश के कारण मन की वासना विलीन हो जाती हैं। वासना का क्षय होना ही मोक्ष है जो प्राणी के जीवन को मुक्ति देता है।

सद्वासनास्फूर्तिविजृम्भणे सति ह्यसौ विलीनाप्यहमादिवासना ।
अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभायां विलीयते साधु यथा तमिस्रा ॥ ३१९ ॥

होता जैसे नाश रात्रि तम । होते उदय जब रवि प्रभातम ।।
सम हों दूर दर्पादि व्यसन । होती जब स्फूर्ति ब्रह्म मन ।। (३१९)

भावार्थः जैसे प्रातः में सूर्य के उदय होने पर रात्रि के अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार मन में ब्रह्म की स्फूर्ति होने पर दर्प आदि दुर्गुण दूर हो जाते हैं।

तमस्तमःकार्यमनर्थजालं न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे ।
तथाद्वयानन्दरसानुभूतौ न वास्ति बन्धो न च दुःखगन्धः ॥ ३२० ॥

होते जब रवि उदित भुवन । नहीं देख सकें अनर्थ भूजन ।।
सम जब अनुभव ब्रह्म विलक्षन । डूबता आत्म आनंद बुद्धिवन ।।
नहीं रहता तब लौकिक बंधन । नहीं रहते भाव दुःख भूजन ।। (३२०)

भावार्थः जब जग में सूर्य का उदय होता है तो प्राणी को अनर्थ नहीं दिखाई देते (यहां अनर्थ का तात्पर्य उन बुरे कार्यों से है जो रात्रि के अँधेरे में किए जाते हैं जैसे चोरी चकारी आदि)। उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म का अनुभव होने पर बुद्धिवान आत्मानंद में डूब जाता है। तब सांसारिक बंधन नहीं रहते और न ही प्राणी को दुःख का भाव रहता है।

५५. प्रमाद निंदा

दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन्सन् सन्मात्रमानन्दघनं विभावयन् ।
समाहितः सन्बहिरन्तरं वा कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे ॥ ३२१ ॥

है यदि शेष तुम्हारा बंधन । करो लय लौकिक अवलोकन ।।
हो सावधान स्व-अंतर्मन । करो ब्रह्म आंनदघन चिंतन ।।
न करो तुम व्यर्थ समय भूजन । करो रूप सत्त्व शुद्ध मनन ।। (३२१)

भावार्थः यदि तुम्हारा बंधन शेष है तो सांसारिक दृश्यों को लय करो (सांसारिक वासनाओं से दूर हो जाओ)। अपने अंतर्मन में सावधान हो कर आनंद चित्त ब्रह्म का चिंतन करो। हे प्राणी, व्यर्थ में समय न व्यतीत करो। शुद्ध सत्त्व रूप (ब्रह्म) का मनन करो।

प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन ।
प्रमादो मृत्युरित्याह भगवान्ब्रह्मणः सुतः ॥ ३२२ ॥

न करो कभी प्रमाद हे महन । करो जब गहन ब्रह्म चिंतन ।।
कहे श्री सनत्कुमार मुनिजन । समझो प्रमाद है सम मरन ।। (३२२)

भावार्थः हे महात्मा, जब गहन ब्रह्म का चिंतन कर रहे हो तब प्रमाद (आलस्य) मत कर। मुनि श्री सनत्कुमार ने कहा है कि प्रमाद को मरण समान समझो।

न प्रमादादनर्थोऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः ।
ततो मोहस्ततोऽहंधीस्ततो बन्धस्ततो व्यथा ॥ ३२३ ॥

नहीं अनर्थ कोई अधिकतम । डूबा रहे प्रमाद जन परम ।।
है यह हेतु मोह भव-बंधन । दे जन्म जो दर्प दुःख भुवन ।। (३२३)

भावार्थः परम प्राणी (महात्मा) प्रमाद में डूबा रहे, इससे अधिकतम अनर्थ और कोई नहीं है। यह भव-बंधन मोह का कारण है जो इस संसार में अहंकार और दुःख देता है।

विषयाभिमुखं दृष्ट्वा विद्वांसमपि विस्मृतिः ।
विक्षेपयति धीदोषैर्योषा जारमिव प्रियम् ॥ ३२४ ॥

जैसे एक कुलक्षिणी नारि । करती बुद्धि भ्रष्ट स्व-जार ।।
सम यदि हुई विषय प्रवृत्ति । होते उनकी बुद्धि विक्षप्ति ।। (३२४)

भावार्थः जैसे एक कुलक्षिणी स्त्री अपने प्रेमी की बुद्धि भ्रष्ट कर देती है, उसी प्रकार विषय (सांसारिक) में प्रवृत्ति बुद्धि विक्षेप कर देती है।

यथापकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति।
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम् ॥ ३२५ ॥

जैसे यदि हटा दो काई जल।ढक लेती तुरंत पुनः जल तल।।
सम यदि न करो सतत चिंतन।घिर जाता माया से भूजन।।(३२५)

भावार्थः जैसे जल से काई हटा देने पर वह जल तल को पुनः तुरंत ढक लेती है, उसी प्रकार यदि निरंतर (ब्रह्म) चिंतन न करो तो प्राणी माया से घिर जाता है।

लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीषद् बहिर्मुखं सन्निपतेत्ततस्ततः।
प्रमादतः प्रच्युतकेलिकन्दुकः सोपानपङ्क्तौ पतितो यथा तथा ॥ ३२६ ॥

छूट कर गिरे गेंद सोपान।गिरती अनन्तर पथ-सोपान।।
समान यदि हट गया लक्ष्य मन।हो बहिर्मुख जाए पथ पतन।। (३२६)

भावार्थः यदि हाथ से गेंद छूटकर सीढ़ी पर गिर गई, तो वह निरंतर दूसरे चरण पर गिरती रहती है। उसी प्रकार यदि मन (चित्त) लक्ष्य से हट गया (ब्रह्म प्राप्ति लक्ष्य) तो बहिर्मुख होकर (विषयों में लीन हो कर) पतन के मार्ग पर जाता है।

विषयेष्वाविशच्चेतः संकल्पयति तद्गुणान्।
सम्यक्संकल्पनात्कामः कामात्पुंसः प्रवर्तनम् ॥ ३२७ ॥

हो जाता लिप्त विषय जब जन।करता रहता वह विषय चिंतन।।
हो जाग्रत हेतु सतत रमन।भावना काम हिय उस भूजन।।
हुई उत्पन्न जब कामना जन।करती प्रवृत्ति बुद्धि भुवन।।(३२७)

भावार्थः जब प्राणी का मन विषय (लौकिक) में लिप्त हो जाता है, तब वह विषय के बारे में ही सोचता रहता है। इस निरंतर चिंतन से उस प्राणी के हृदय में काम भावना जाग्रत होती है। जब काम भावना जाग्रत हो जाती है तो वह बुद्धि को संसार में प्रवृत्त कर देती है।

ततः स्वरूपविभ्रंशो विभ्रष्टस्तु पतत्यधः ।
पतितस्य विना नाशं पुनर्नारोह ईक्ष्यते ॥
संकल्पं वर्जयेत्तस्मात्सर्वानर्थस्य कारणम् ॥ ३२८ ॥

हेतु विषय चिंतन वह भूजन । गिर जाता तब आत्म निरूपन ।।
गिर जाता जब एक बार जन । होता उसका निरंतर पतन ।।
है कठिन कर पाए उत्पतन । नहीं कोई विकल्प पतित जन ।।
अतः करो त्याग यह दुर्गुण । चाहो यदि तुम निर्मोचन ।। (३२८)

भावार्थ: विषय चिंतन के कारण वह प्राणी आत्म-स्वरुप (ब्रह्म स्वरुप) से गिर जाता है। एक बार जब प्राणी गिर जाता है तब उसका निरंतर पतन होता है। उसका उत्थान कठिन है। ऐसे पतित प्राणी के लिए कोई विकल्प नहीं है। अतः यदि तुम्हें मुक्ति की चाह है तो इन दुर्गुणों का त्याग करो।

अतः प्रमादान्न परोऽस्ति मृत्युः विवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ ।
समाहितः सिद्धिमुपैति सम्यक् समाहितात्मा भव सावधानः ॥ ३२९ ॥

अतः हेतु ब्रह्मवेत्ता भूजन । है जो विवेकी मुमुक्षजन ।।
करना प्रमाद जब लिप्त मनन । समझो है तुम समान मरन ।।
कर सके प्राप्त वह ब्रह्म सिद्धि । जिस बुद्धिवन की स्थिर बुद्धि ।। (३२९)

भावार्थ: अतः ब्रह्मवेत्ता और विवेकी मुमुक्ष प्राणी के लिए जब मनन (साधना) में लिप्त हो, तब प्रमाद मरण के समान है। जिस बुद्धिवान की बुद्धि स्थिर है, वही आत्म सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

५६. असत परिहार

जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे स च केवलः ।
यत्किंचित्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुःश्रुतिः ॥ ३३० ॥

पा सका वैराग्य जो जीवन । पाए वही मरण बाद मोचन ।।
रखे जो क्षण मात्र भी संशय । कहे ग्रन्थ यजुर्वेद है यह भय ।। (३३०)

भावार्थ: जो जीवन में वैराग्य पा सका, वही मरण पर मोक्ष पाता है। यदि इसमें क्षण मात्र भी संशय है तो यजुर्वेद ग्रन्थ कहता है कि यह उसके लिए भय है (भय कि क्या वह मोक्ष पा सकता है?)।

यदा कदा वापि विपश्चिदेष ब्रह्मण्यनन्तेऽप्यणुमात्रभेदम् ।
पश्यत्यथामुष्य भयं तदैव यद्वीक्षितं भिन्नतया प्रमादात् ॥ ३३१ ॥

यदि ब्रह्म में किंचित संशय । होती प्राप्ति उस भूजन भय ।।
हेतु प्रमाद स्व-निरूपन । हो प्रतीति भेद ब्रह्म महन ।। (३३१)

भावार्थ: यदि ब्रह्म में किंचित भी संशय है तो उस प्राणी को भय की प्राप्ति होती है। स्व-स्वरुप (ब्रह्म) में प्रमाद होने के कारण महान ब्रह्म में भेद की प्रतीति होती है।

श्रुतिस्मृतिन्यायशतैर्निषिद्धे दृश्येऽत्र यः स्वात्ममतिं करोति ।
उपैति दुःखोपरि दुःखजातं निषिद्धकर्ता स मलिम्लुचो यथा ॥ ३३२ ॥

जो वर्जित श्रुति स्मृति युक्ति । करे कर्म हो भव आसक्ति ।।
है वह निषिद्ध कर्म कर्ता । सम चोर होता दुःख भर्ता ।। (३३२)

भावार्थ: जो श्रुति, स्मृति, युक्ति से वर्जित संसार में आसक्त हो (मनमाना) कर्म करता है, वह निषिद्ध कर्मों का कर्ता है। चोर के समान वह दुःख का स्वामी है (अतः दुःख भोगता है)।

सत्याभिसंधानरतो विमुक्तो महत्त्वमात्मीयमुपैति नित्यम् ।
मिथ्याभिसन्धानरतस्तु नश्येद् दृष्टं तदेतद्यदचौरचौरयोः ॥ ३३३॥

करता जो सत ब्रह्म अन्वेषन। हो मुक्त पाता लक्ष्य जीवन ।।
पर करता जो विषय अनुसरन। होता निश्चित उस अभग पतन ।।
जैसे यदि पकड़ा गया चोर। दें दंड उसे राज पुरुष घोर ।।
चाहे करे स्वीकार अपराध। या कहे नहीं लिप्त अपराध ।। (३३३)

भावार्थ: जो सत ब्रह्म की खोज करता है वह मुक्त होकर जीवन का लक्ष्य पाता है। परन्तु जो विषय (लौकिक) अनुसरण करता है, उस अभागे का पतन निश्चित है। जैसे यदि चोर पकड़ा गया तो राज कर्मचारी उसे घोर दंड देते हैं चाहे वह अपना अपराध स्वीकार करे अथवा कहे कि उसने अपराध नहीं किया।

यतिरसदनुसन्धिं बन्धहेतुं विहाय
स्वयमायामहमस्मीत्यात्मदृष्ट्यैव तिष्ठेत् ।
सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या
हरति परमविद्याकार्यदुःखं प्रतीतम् ॥ ३३४ ॥

'हूँ मैं ही ब्रह्म' हो बोधन। त्यागो असत वस्तु हे योगिन् ।।
रहो दृढ़ सदा आत्म स्थिति। हो तब ब्रह्म निष्ठा उत्पत्ति ।।
हेतु अविद्या जो हुए प्रपंच। हों दूर हो मन निष्प्रपञ्च ।।
होंगे दूर तब दुःख विद्वन। पा सकोगे तुम निर्मोचन ।। (३३४)

भावार्थ: 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा बोध करो। हे योगी, असत वस्तुओं का त्याग करो। आत्म-स्थिति (ब्रह्म) में सदैव दृढ़ रहो। तब ब्रह्म निष्ठा की उत्पति होगी (अतः ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होगी)। अविद्या के कारण जो प्रपंच हुए, वह दूर होंगे और मन पवित्र होगा। हे विद्वान्, तब दुःख दूर होंगे और तुम मोक्ष पा सकोगे।

बाह्यानुसन्धिः परिवर्धयेत्फलं दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् ।
ज्ञात्वा विवेकैः परिहृत्य बाह्यं स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम् ॥ ३३५ ॥

करोगे यदि बाह्य वस्तु चिंतन। देगा यह फल रूप दुर्वासन ।।
अतः समझ कर आत्म निरूपन। कर त्याग बाह्य विषय चिंतन ।।
करते रहो तुम आत्म अन्वेषन। पाओगे निःसंशय निर्मोचन ।। (३३५)

भावार्थः यदि बाह्य वस्तु (सांसारिक वस्तु) का चिंतन करोगे तो दुष्कर्म रूप फल पाओगे। अतः आत्म स्वरुप (ब्रह्म) को समझ कर और बाह्य विषय का त्याग कर ब्रह्म खोज करते रहो। निःसंदेह मोक्ष पाओगे।

बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम् ।
तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो बहिर्निरोधः पदवी विमुक्तेः ॥ ३३६ ॥

होता जब बाह्य विषय वर्जन । भर जाता तब परम आंनद मन ।।
हेतु अतिसय आनंदित मन । मिल जाते तब श्री भगवन ।।
होता तब विनाश भव-बंधन । है यही मार्ग हेतु मोचन ।। (३३६)

भावार्थः जब बाह्य विषय का निषेध होता है तब मन परमानंद से भर जाता है। इस मन के अत्यंत आनंद के कारण भगवान् का साक्षात्कार होता है। तब लौकिक बंधन नष्ट हो जाते है। मुक्ति पाने का यही मार्ग है।

कः पण्डितः सन्सदसद्विवेकी श्रुतिप्रमाणः परमार्थदर्शी ।
जानन्हि कुर्यादसतोऽवलम्बं स्वपातहेतोः शिशुवन्मुमुक्षुः ॥ ३३७ ॥

विवेकी सत असत अभिज्ञन । प्राज्ञ श्रृति प्रमाण गहन ।।
सर्वश परमार्थ तत्व वेदन । रखे इच्छा मुक्ति जो भूजन ।।
करेगा क्यों वह असत सेवन । समान बालक देता जो पतन ।। (३३७)

भावार्थः विवेकी, सत असत का ज्ञानी, गहन श्रुति प्रमाण में प्राज्ञ, पूर्णतः परमार्थ तत्व का ज्ञाता, जो प्राणी मोक्ष की इच्छा रखता है, वह बालक के समान पतन की ओर जाने के लिए असत (लौकिक विषयों) का सेवन क्यों करेगा?

देहादिसंसक्तिमतो न मुक्तिः मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः ।
सुप्तस्य नो जागरणं न जाग्रतः स्वप्नस्तयोर्भिन्नगुणाश्रयत्वात् ॥ ३३८ ॥

है यदि आसक्ति विनाशी तन । नहीं संभव पाए निर्मोचन ।।
हुआ मुक्त आसक्ति जो जन । नहीं होगा गर्व उसे तन ।।
जैसे न हो अनुभव जागरन । हुई अवस्था प्राणी जब शयन ।।
समान न हो अनुभव स्वप्न । हुई जाग्रत अवस्था जब जन ।।
समझो यह भली भांति विद्वन । है आश्रय द्वि दशाएं भिन्न ।। (३३८)

भावार्थ: यदि विनाशी तन में आसक्ति है तो मोक्ष पाना संभव नहीं। जो प्राणी आसक्ति से मुक्त हो जाता है, उसे अपने शरीर पर अभिमान नहीं होगा। जैसे जागरण (अवस्था) में शयन अवस्था का अनुभव नहीं होता। उसी प्रकार जब प्राणी जाग्रत होता है तो उसे स्वप्न का अनुभव नहीं होता। हे विद्वान, इसे भली भांति समझो कि इन दोनों दशाओं के आश्रय (अनुभव) भिन्न है।

५७. आत्मनिष्ठा का विधान

अन्तर्बहिः स्वं स्थिरजङ्गमेषु ज्ञात्वात्मनाधारतया विलोक्य ।
त्यक्ताखिलोपाधिरखण्डरूपः पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः ॥ ३३९॥

जो देखता सब अन्तः बाह्य । पदार्थ जंगम और निश्चय ।।
अन्तः स्वयं हेतु ज्ञान वर्पन् । मानता आश्रय इसे ही जन ।।
कर त्याग समस्त कृत अकल्पन । रहता स्थित पूर्ण अखण्डन ।।
समझो उसे मुक्त हे विद्वन । वही अधिकारी निर्मोचन ।। (३३९)

भावार्थ: जो सभी अन्तः बाह्य जंगम और स्थावर पदार्थों को ज्ञान रूप से स्वयं के अंदर देखता है और इसे ही आश्रय मानता है, समस्त यशस्वी कृत्यों (लौकिक यश देने वाले कृत) का त्याग करता है और पूर्णतः अखण्डता में स्थित रहता है (विचलित नहीं होता), हे विद्वान्, उसे ही मोक्ष का अधिकारी मुक्त समझो।

सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतुः सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित् ।
दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ सर्वात्मभावोऽस्य सदात्मनिष्ठया ॥ ३४० ॥

सर्वात्म भाव समस्त जीवन । देखे सदा जो उत्कृष्ट भूजन ।।
हो सर्वथा मुक्त भव-बंधन । हो सतत लीन ब्रह्म समर्पन ।।
पा सके यह स्थिति वह विद्वन । न करे जो जग दृश्य ग्रहन ।। (३४०)

भावार्थ: समस्त जीवों में सर्वात्म भाव जो उत्कृष्ट पुरुष देखता है, वह सर्वथा भव-बंधन से मुक्त होता है। हे विद्वान्, इस स्थिति को पाने के लिए निरंतर ब्रह्म में समर्पण और इस संसार के दृश्य को ग्रहण न करना है (अतः इस जगत को मिथ्या मानना है।

दृश्यस्याग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो
बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रियां कुर्वतः ।
संन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयैर्नित्यात्मनिष्ठापरैः
तत्त्वज्ञैः करणीयमात्मनि सदानन्देच्छुभिर्यत्नतः ॥ ३४१ ॥

जो अभग कर स्थित बुद्धि तन । रखे आसक्ति बाह्य वस्तु मन ।।
हेतु विषय करता रहे प्रयत्न । कैसे हो वह अदृश्य भुवन ।।
अतः हेतु इच्छुक निर्मोचन । नितांत त्यागना स्वाद भुवन ।।
और धर्म कर्म विषय भुवन । रहें तत्पर हेतु ब्रह्म समर्पन ।।
करें बाध दृश्य प्रपंच भुवन । हो रहे प्रतीत जो उनके मन ।। (३४१)

भावार्थ: जो अभग (प्राणी) बुद्धि को शरीर में स्थित कर बाह्य वस्तुओं की मन में आसक्ति रखता है, विषय (लौकिक) के लिए (सांसारिक भोगों के लिए) प्रयत्न करता रहता है, उसके लिए संसार अदृश्य कैसे हो सकता है (अर्थात वह संसार को कैसे त्याग सकता है)? अतः मोक्ष के इच्छुक के लिए सांसारिक भोग, समस्त धर्म, कर्म, लौकिक विषयों का निरन्तर त्याग करना है और ब्रह्म में समर्पण हेतु तत्पर रहना है। इस संसार के प्रपंच दृश्य जो उसके मन में प्रतीत होते हैं, उन्हें निषेध करना है (अर्थात सांसारिक बंधनों से दूर रहना है)।

सर्वात्मसिद्धये भिक्षोः कृतश्रवणकर्मणः ।
समाधिं विदधात्येषा शान्तो दान्त इति श्रुतिः ॥ ३४२ ॥

हेतु सर्वात्म भाव सिद्धि । करो तत्पर समाधि स्व-बुद्धि ।।
करो सदा श्रवण हे विद्वन । श्रुति युति वेदांत ग्रंथन ।। (३४२)

भावार्थ: सर्वात्म भाव की सिद्धि के लिए अपनी बुद्धि को समाधि के लिखे तत्पर करो। हे विद्वान्, श्रुति, युति, वेदांत ग्रन्थ का सदैव श्रवण करो।

आरूढशक्तेरहमो विनाशः कर्तुन्न शक्य सहसापि पण्डितैः ।
ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चलाः तानन्तरानन्तभवा हि वासनाः ॥ ३४३ ॥

रहती शक्ति दर्प अंतः मन । नहीं कर सकें नष्ट एक वारन ।।
क्योंकि अपि जो पुरुष महन । हैं स्थित समाधि अचल पावन ।।
देखी गईं वासना उनके मन । हेतु अनल्प जन्म लौकिक बंधन ।। (३४३)

भावार्थ: अहंकार की शक्ति अन्तःकरण में रहती है। इसका विनाश यकायक नहीं किया जा सकता। क्योंकि जो महापुरुष अविचल पावन समाधि में स्थित हैं, उनके मन में भी अनंत जन्मों के भव-बंधन हेतु वासनाएं देखी गई हैं।

अहंबुद्ध्यैव मोहिन्या योजयित्वावृतेर्बलात् ।
विक्षेपशक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः ॥ ३४४ ॥

अहम् बुद्धि करती मुग्ध जन । कराकर संयोग दैह्य से तन ।।
हेतु स्व-आवरण आशक्तन । कर देती विक्षिप्त गुण भूजन ।। (३४४)

भावार्थ: अहम् बुद्धि जो प्राणी को मोहित करती है, वह पुरुष (आत्मा) का शरीर से संयोग कराकर अपनी बलशाली शक्ति के आवरण से प्राणियों के गुण विक्षिप्त कर देती है।

विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातुं
निःशेषमावरणशक्ति निवृत्त्यभावे ।
दृग्दृश्ययोः स्फुटपयोजलवद्विभागे
नश्येत्तदावरणमात्मनि च स्वभावात्
निःसंशयेन भवति प्रतिबन्धशून्यो
विक्षेपणं नहिं तदा यदि चेन्मृषार्थे ॥ ३४५ ॥
सम्यग्विवेकः स्फुटबोधजन्यो
विभज्य दृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम् ।
छिनत्ति मायाकृतमोहबन्धं
यस्माद्विमुक्तस्तु पुनर्न संसृतिः ॥ ३४६ ॥

है कठिन कर सकें संसर्जन । यह चंचल बल बिन विचालन ।।
हेतु यह बल शक्ति आवरन । समझें यह भली भांति भूजन ।।
होता जब ज्ञान द्रष्टा दृश्य । समान दुग्ध और जल वैषम्य ।।
तब होती नष्ट शक्ति आवरन । छाई हुई जो स्व-आत्मन ।। (३४५)
यदि कर सके पृथक भूजन । द्रष्टा और दृश्य निरूपन ।।
भेद सत असत जो है भुवन । हेतु स्पष्ट बोध तब विद्वन ।।
निःसंदेह हो रहित बाध जन । नहीं होता तब विक्षेपित मन ।।
काट सके तब वह मोह बंधन । हुए हेतु जो माया उत्पन्न ।।
हो जाता मुक्त तब वह महन । नहीं पड़ता चक्र जन्म मरन ।। (३४६)

भावार्थः इस विक्षेप शक्ति को बिना पूर्णतः आवरण शक्ति के निवारण के जीतना कठिन है, इसे प्राणियों को भली भांति समझना चाहिए। जब द्रष्टा और दृश्य ज्ञान (चेतन आत्मा और संसार का पृथक होने का ज्ञान) हो जाता है जैसे दूध और पानी के भेद का ज्ञान, तब आवरण शक्ति जो अपनी आत्मा में छाई हुई है, नष्ट हो जाती है। यदि प्राणी द्रष्टा और दृश्य स्वरुप को पृथक कर सके, संसार में सत और असत का भेद कर सके, तब हे विद्वान्, स्पष्ट बोध के कारण निःसंदेह वह प्राणी बाध रहित (क्लेश रहित) हो जाता है और उसका मन विक्षिप्त नहीं होता। तब वह माया से उत्पन्न मोह बंधन को काट सकता है। वह महात्मा मुक्त हो जाता है। जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ता।

परावरैकत्वविवेकवन्हिः दहत्यविद्यागहनं ह्यशेषम् ।
किं स्यात्पुनः संसरणस्य बीजं अद्वैतभावं समुपेयुषोऽस्य ॥ ३४७ ॥

हो जाता जब यह ज्ञान सत्य । हैं एक तत्व ब्रह्म और दैह्य ।।
हो जाती अविद्या उन्मूलन । जैसे जलाए अग्नि समस्त वन ।।
पाता तब अद्वैत भाव जन । नहीं रहता तब राग भुवन ।। (३४७)

भावार्थ: जब यह सत्य ज्ञान हो जाता है कि ब्रह्म और आत्मा एक तत्व हैं, तब अविद्या नष्ट हो जाती है जैसे अग्नि समस्त वन को जला देती है। तब प्राणी अद्वैत भाव (एक ईश्वरीय भाव) पाता है और उसका संसार में प्रेम नहीं रहता।

आवरणस्य निवृत्तिर्भवति हि सम्यक्पदार्थदर्शनतः ।
मिथ्याज्ञानविनाशस्तद्विक्षेप जनितदुःखनिवृत्तिः ॥ ३४८ ॥

हो जाता जब साक्षात्कार । संग आत्मवत भली प्रकार ।।
होता मिथ्या भ्रम निवृत । होता नष्ट जिससे ज्ञान असत ।।
करता यह दूर विक्षेप मन । होते दूर तब दुःख हेतु बंधन ।। (३४८)

भावार्थ: जब आत्मवत के साथ भली भांति साक्षात्कार हो जाता है (अर्थात ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है) तब मिथ्या भ्रम नष्ट होते हैं जिससे असत का विनाश होता है। यह मन का विक्षेप दूर करता है। तब (सांसारिक) बंधनों के कारण दुःख दूर होते हैं।

५८. अधिष्ठान निरूपण

एतत्त्रितयं दृष्टं सम्यग्रज्जुस्वरूपविज्ञानात् ।
तस्माद्वस्तुसतत्त्वं ज्ञातव्यं बन्धमुक्तये विदुषा ॥ ३४९॥

भ्रमवश होती धारणा नयन। लगती रज्जु समान विषानन।।
हेतु इस शठ मिथ्या प्रतीति। लगता भय हो दुःख प्राप्ति।।
पर हो जब प्रकाशमय निलय। होता ज्ञान रस्सी जो सत्य।।
सदृश हों दूर विस्मापन। हुए हेतु अज्ञान भ्रमित जन।।
जब होता ब्रह्म ज्ञान बुद्धिवन। होते दूर भव दुःख उत्पन्न।।
अतः है नितांत हेतु मोचन। करो त्याग तुम सब भव-बंधन।। (३४९)

भावार्थ: भ्रमवश नेत्रों को धारणा हो जाती है कि सामने (पड़ी) रस्सी सर्प है। इस कारण मिथ्या छल की प्रतीति से भय लगता है और दुःख की प्राप्ति होती है। पर जब स्थान प्रकाशमय हो जाता है तो रस्सी का सत्य ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार हे बुद्धिवान, भ्रमित प्राणी को अज्ञानवश हुए भ्रम दूर हो जाते हैं जब मन में ब्रह्म ज्ञान हो जाता है। तब उत्पन्न हुए सांसारिक दुःख दूर हो जाते हैं। अतः मोक्ष के लिए यह आवश्यक है कि लौकिक बंधनों का त्याग करो।

अयोऽग्नियोगादिव सत्समन्वयान् मात्रादिरूपेण विजृम्भते धीः।
तत्कार्यमेतद्द्वितयं यतो मृषा दृष्टं भ्रमस्वप्नमनोरथेषु ॥ ३५०॥

करता धारण विविध निरूपन। आता जब लौह संयोग ज्वलन।।
समान होती बुद्धि दीप्ति। आती जब संयोग प्राणपति।।
हेतु असत बुद्धि विस्मापन। होती प्रतीति द्वैत भावन।। (३५०)

भावार्थ: जब लोहा अग्नि के संपर्क में आता है तो विविध रूप धारण करता है (जैसे कुदाली, फावड़ा आदि)। उसी प्रकार आत्मा के संयोग से बुद्धि प्रकाशित होती है (अतः ज्ञान प्राप्त करती है)। असत बुद्धि और भ्रम के कारण द्वैत भाव की प्रतीति होती है।

ततो विकाराः प्रकृतेरहंमुखा देहावसाना विषयाश्च सर्वे।
क्षणेऽन्यथाभावितया ह्यमीषाम् असत्त्वमात्मा तु कदापि नान्यथा ॥ ३५१ ॥

हैं असत्य सब सर्ग विकार। चाहे राग तन या अहंकार।।
हेतु हों क्षण क्षण परिवर्तन। कहें मिथ्या संत और ग्रंथन।।
पर अपरिवर्तनशील आत्मा। रहे सदा एकरस हे महात्मा।। (३५१)

भावार्थः प्रकृति के सब विकार असत्य हैं चाहे वह तन में आसक्ति हो अथवा दर्प। यह क्षण क्षण में परिवर्तित होते है। इन्हें संत और ग्रन्थ मिथ्या कहते हैं। परन्तु आत्मा परिवर्तनशील नहीं है। हे महात्मा, यह सदैव एकरस रहती है।

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्ष्यणः ।
अहंपदप्रत्ययलक्षितार्थः प्रत्यक्सदानन्दघनः परात्मा ॥ ३५२ ॥

जो लक्षित प्रतीति मन । 'हूँ मैं ब्रह्म' है यह आनंदघन ।।
अखंड अंतर्मन नित्य चेतन । अद्वितीय आत्मा अति पावन ।।
साक्षी बुद्धि भिन्न सत असत । निर्विकार प्रमत भगवत ।। (३५२)

भावार्थः जो मन में प्रतीति 'मैं ब्रह्म हूँ' से लक्षित है, वह आनंददायी, अखंड, अंतर्मन, नित्य, चेतन, अद्वितीय, अति पवित्र आत्मा है जो बुद्धि की साक्षी, सत, असत से भिन्न, निर्विकार, प्राज्ञ, ईश्वरीय है।

इत्थं विपश्चित्सदसद्विभज्य निश्चित्य तत्त्वं निजबोधदृष्ट्या ।
ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डबोधं तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति ॥ ३५३ ॥

कर भेद सत असत प्रमतजन । कर बोध तत्व सत ज्ञान नयन ।।
करें प्राप्त ज्ञान परम ब्रह्म । हो मुक्त तत्व असत पाएं शम ।। (३५३)

भावार्थः बुद्धिमान पुरुष सत और असत में भेद कर ज्ञान नेत्रों से सत तत्व का ज्ञान करते हैं। परम ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करते हैं। असत तत्व से मुक्त होकर शान्ति पाते हैं।

५९. समाधि निरूपण

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्निःशेष विलयस्तदा ।
समाधिनाविकल्पेन यदाद्वैतात्मदर्शनम् ॥ ३५४ ॥

होता विनाश अज्ञान वर्पन् । तब हृदय ग्रंथि मुमुक्षजन ।।
जब हेतु निर्विकल्प साधना । होता बोध अद्वैत भावना ।। (३५४)

भावार्थः मुमुक्षजन (मोक्ष का इच्छुक) के हृदय ग्रंथि में अज्ञान स्वरुप का विनाश तब होता है जब निरंतर साधना से अद्वैत भाव जाग्रत हो जाता है।

त्वमहमिदमितीयं कल्पना बुद्धिदोषात्
प्रभवति परमात्मन्यद्वये निर्विशेषे ।
प्रविलसति समाधावस्य सर्वो विकल्पो
विलयनमुपगच्छेद्वस्तु तत्त्वावधृत्या ॥ ३५५ ॥

हेतु दोष बुद्धि हे बुद्धिवन । होती ' तू मैं' समान कल्पन ।।
यद्यपि है आत्मा अति पुन्य । अद्वितीय निर्विकल्प दिव्य ।।
होता यह विघ्न दोष उत्पन्न । हेतु भूजन असत विचार मन ।।
करो यथावत सत तत्व ग्रहण । हो दूर तुरंत यह अवगणन ।। (३५५)

भावार्थः हे बुद्धिवान, बुद्धि दोष के कारण 'मैं, तू' समान कल्पनाएं होती हैं यद्यपि आत्मा अत्यंत पुण्यवान, अद्वितीय, बिना भेद करने वाली, दिव्य है। यह विघ्न दोष प्राणी के मन में मिथ्या विचार उत्पन्न होने से होता है। यथावत सत तत्व (ब्रह्म) को ग्रहण करो, यह दुर्गुण तुरंत दूर हो जाएगा।

शान्तो दान्तः परमुपरतः क्षान्तियुक्तः समाधिं
कुर्वन्नित्यं कलयति यतिः स्वस्य सर्वात्मभावम् ।
तेनाविद्यातिमिरजनितान्साधु दग्ध्वा विकल्पान्
ब्रह्माकृत्या निवसति सुखं निष्क्रियो निर्विकल्पः ॥ ३५६ ॥

समझो भली भांति भक्तजन । करते सतत अभ्यास योगीजन ।।
हेतु शम मन निग्रह इन्द्रिय । क्षमा शीलता उपरति विषय ।।
होता तब अनुभव सर्वात्म । हो तब दूर अज्ञान रूप तम ।।
हो जाते विध्वंस तब विकार । हो जन निष्क्रिय निर्विकार ।।
रहता तब वृत्ति ब्रह्माकार । आनंदपूर्ण रहित अहंकार ।। (३५६)

भावार्थ: हे भक्तजन, भली प्रकार समझो कि योगी निरंतर अभ्यास चित्त शान्ति, इन्द्रियों के नियंत्रण, क्षमा शीलता एवं (लौकिक) विषयों से निवृत्ति के लिए करते हैं। तब सर्वात्म (ब्रह्म) का अनुभव होता है जो अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करता है। तब सब दुर्गुण विध्वंस हो जाते हैं और प्राणी निष्क्रिय, निर्विकार हो ब्रह्माकार वृत्ति में अहंकार रहित आनंदपूर्ण रहता है।

समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि ।
त एव मुक्ता भवपाशबन्धैः नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः ॥ ३५७ ॥

कर नियंत्रित बाह्य इन्द्रियाँ । जैसे श्रोत्र कर्मेन्द्रियाँ ।।
करें मन दर्प लीन आत्मन । पा सकें तब मुक्ति भव बंधन ।।
कर केवल परोक्ष ब्रह्म चिंतन । न पा सकें भूजन निर्मोचन ।। (३५७)

भावार्थ: बाह्य इन्द्रियाँ जैसे कर्ण आदि कर्मेन्द्रियों को नियंत्रित कर मन और अहंकार को आत्मा में लीन करें, तब लौकिक बंधनों से मुक्ति पा सकते हैं। परन्तु केवल अदृश्य ब्रह्म का चिंतन करने से प्राणी मोक्ष नहीं पा सकते ।

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः ।
तस्मादुपाधेर्विलयाय विद्वान् वसेत्सदाकल्पसमाधिनिष्ठया ॥ ३५८ ॥

हो सीमित बुद्धि से उत्पन्न । प्रतीति भेद आत्मा भूजन ।।
सदृश कुल पद धनी निर्धन । अतः हेतु बुद्धि करो सत चिंतन ।।
कर लय सब उपाधि अनर्थक । हो स्थित सतत समाधि साधक ।। (३५८)।

भावार्थ: सीमित बुद्धि (उपाधियों से ग्रस्त होने पर) से प्राणियों को आत्मा में भेद की प्रतीति होती है जैसे कुल, पद, धनी, निर्धनी (आदि)। अतः बुद्धि से सत चिंतन (ब्रह्म का चिंतन) करो। सब निरर्थक उपाधियों को विलय कर (अर्थात त्याग कर) हे साधक, निरंतर समाधि में स्थित हो।

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।
कीटको भ्रमरं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥ ३५९ ॥

हो जाओ स्थित सतत विद्वन। सत स्वरूप ब्रह्म तत्व निमग्न।।
होगे तुम स्वयं स्वरुप ईश्वर। सद्दश होता कीट मधुकर।।
हो लिप्त जब युक्त भय भावन। हूँ मैं भ्रमर अनेकवारम।।(३५९)

भावार्थ: हे विद्वान्, सत स्वरुप ब्रह्म तत्व में निरंतर निमग्न (एकाग्र चित्त) हो स्थित हो जाओ, तब तुम स्वयं ईश्वर रूप हो जाओगे। जैसे कीट भय पूर्वक अनेक बार कल्पना में कि वह भ्रमर है, भ्रमर हो जाता है।

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमृच्छति।
तथैव योगी परमात्मतत्त्वं ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया॥ ३६०॥

जैसे छोड़ आसक्ति सब कृत्य। कर ध्यान भ्रमर स्वरुप हिय।।
बन जाता कीट स्वयं भृङ्गन। सद्दश करे योगी जब चिन्तन।।
हो एकनिष्ठ परमात्म तत्व। पा जाए तब पद ब्रह्म दिव्य।।(३६०)

भावार्थ: जैसे सब कार्यों में आसक्ति छोड़कर, भ्रमर स्वरुप को हृदय में ध्यान कर, कीट स्वयं भ्रमर बन जाता है, उसी प्रकार योगी जब एकनिष्ठ परमात्म तत्व का चिंतन करता है तब ब्रह्म पद को पा जाता है।

अतीव सूक्ष्मं परमात्मतत्त्वं न स्थूलदृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति।
समाधिनात्यन्तसुसूक्ष्मवृत्या ज्ञातव्यमार्यैरतिशुद्धबुद्धिभिः॥ ३६१॥

है परमात्म तत्व अति सूक्ष्म। नहीं मिले स्थूल दृष्टि ब्रह्म।।
अतः भूजन कर बुद्धि पावन। जानो ब्रह्म हेतु अणु चेतन।।(३६१)

भावार्थ: परमात्म तत्व अत्यंत सूक्ष्म है। स्थूल दृष्टि से ब्रह्म नहीं मिलता। अतः हे प्राणी, बुद्धि को पवित्र कर अणु (सूक्ष्म) वृत्ति से ब्रह्म को जानो।

यथा सुवर्णं पुटपाकशोधितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति।
तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं ध्यानेन सन्त्यज्य समेति तत्त्वम्॥ ३६२॥

होता शुद्ध स्वर्ण हेतु पावक । कर त्याग मल हो अति गुणक ।।
सदृश कर त्याग हे बुद्धिवन । सम मल सत रज तम त्रिगुन ।।
करो अंतर्मन अत्यंत पावन । करो प्राप्त तब तत्व भगवन ।। (३६२)

भावार्थ: स्वर्ण अग्नि के द्वारा शुद्ध होता है। वह मल त्याग गुणक हो जाता है (अर्थात मिलावटें दूर हो जातीं हैं और शुद्ध हो जाता है)। उसी प्रकार हे बुद्धिवान, सत, रज और तमस त्रिगुणों को मल के समान त्याग अंतर्मन को अत्यंत पावन करो। तब परमात्म तत्व की प्राप्ति होगी।

निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थं पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा ।
तदा समाधिः सविकल्पवर्जितः स्वतोऽद्वयानन्दरसानुभावकः ॥ ३६३ ॥

कर अभ्यास सतत रात अहन् । हो प्रगल्भ कर लीन ब्रह्म मन ।।
हो अनुभूति तब ब्रह्म पावन । होगी सिद्धि निःसंदेह साधन ।। (३६३)

भावार्थ: मन को ब्रह्म में लीन कर निरंतर रात दिन अभ्यास कर परिपक्व हो जाओ। तब पवित्र ब्रह्म की अनुभूति होगी और निःसंदेह साधना सिद्ध होगी।

समाधिनानेन समस्तवासना ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाशः ।
अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूपविस्फूर्तिरयत्नतः स्यात् ॥ ३६४ ॥

हेतु समाधि निर्विकल्पम । हों नष्ट ग्रंथि भोग सर्वम ।।
हो जाते तब नष्ट रत भावन । होता नाश तब पूर्ण कर्मन् ।।
होता अनुभव तब बिन प्रयत्न । अंदर बाहर सतत सत वर्पन् ।। (३६४)

भावार्थ: निर्विकल्प समाधि के कारण समस्त भोग ग्रंथियां नष्ट हो जातीं हैं। तब वासना के भाव नष्ट हो जाते हैं और कर्म पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं (अर्थात प्राणी निष्क्रिय भाव में आ जाता है)। तब बिना प्रयास के अंदर बाहर निरंतर सत (ब्रह्म) दर्शन का अनुभव होता है।

श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।
निदिंध्यासं लक्ष्यगुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥ ३६५ ॥

होता सहस्त्र गुना लाभकर ।अधि केवल सुनना शिक्षाक्षर ।।
करें जब वेद वेदांत ग्रन्थ मनन ।पर देता लक्ष्य गुना फल गुन ।।
कर स्थिर मन करें नित्य चिंतन ।पर देता अनंत गुना लाभन ।।
जब हो समाधिस्थ सतत विद्वन ।कर स्थिर संयमित अपना मन ।।(३६५)

भावार्थ: वेद वेदांत शिक्षा देने वाले ग्रंथों को केवल सुनने की अपेक्षा मनन करने से सहस्त्र गुना लाभ मिलता है (अर्थात उन पर मनन कर उनका अनुसरण करना)। पर लक्ष्य गुना लाभ मिलता है जब मन को स्थिर कर इनका बार बार चिंतन किया जाए। परन्तु अनंत लाभ हेतु हे विद्वान्, मन को स्थिर और संयमित कर निरंतर (निर्विकल्प) समाधिस्थ हो।

निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ।
नान्यथा चलतया मनोगतेः प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत् ॥ ३६६ ॥

हेतु समाधि जान सको ब्रह्म ।नहीं अन्य विकल्प इच्छु ब्रह्म ।।
क्योंकि हेतु कोई अन्य दशा ।भटके चपल मन हो हीन दिशा ।।(३६६)

भावार्थ: समाधि के द्वारा हे ब्रह्म (ज्ञान) के इच्छुक, ब्रह्म को जान सकते हो। क्योंकि अन्य किसी दशा में चंचल मन दिशाहीन हो कर भटकता रहता है।

अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सन् निरन्तरं शान्तमनाः प्रतीचि ।
विध्वंसय ध्वान्तमनाद्यविद्यया कृतं सदेकत्वविलोकनेन ॥ ३६७ ॥

अतः कर इन्द्रियाँ नियंत्रन ।हो शांत कर सतत स्थिर मन ।।
हो लीन तुम आत्मा पावन ।देखो स्वयं ऐक्य संग भगवन ।।
करो ध्वंस अज्ञान अन्धकार ।उत्पन्न हेतु अविद्या विकार ।।(३६७)

भावार्थः अतः इन्द्रियों को नियंत्रण में कर शांत निरंतर स्थिर मन से पवित्र आत्मा में लीन होकर स्वयं को भगवान् के साथ एकीभाव में देखो। अज्ञान अन्धकार जो अविद्या के दोषों के कारण उत्पन्न हुआ है, उसे ध्वंस करो।

योगस्य प्रथम द्वारं वाङ्निरोधोऽपरिग्रहः ।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥ ३६८ ॥

अरुचि द्रव्य संयमित वचन । अनिच्छा लौकिक विहारन ।।
त्याग वासना रहना विजन । हैं यह द्वार प्रथम योगीजन ।। (३६८)

भावार्थः द्रव्य में अरुचि (धनादि में अरुचि, उनके संग्रह में अरुचि), संयमित वाणी, लौकिक भोगों में अनिच्छा, वासना त्याग, एकांत में रहना, यह योगियों के प्रथम द्वार हैं (अर्थात पूर्वापेक्षा हैं)।

एकान्तस्थितिरिन्द्रियोपरमणे हेनुर्दमश्चेतसः
संरोधे करणं शमेन विलयं यायादहंवासना ।
तेनानन्दरसानुभूतिरचला ब्राह्मी सदा योगिनः
तस्माच्चित्तनिरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नो मुनेः ॥ ३६९ ॥

हेतु कर सकें इन्द्रिय दमन । है नितांत एकांत योगीजन ।।
हो संभव तब इन्द्रिय दमन । कर सकें योगी संयमित मन ।।
होतीं तब नष्ट वासना भव । होता तब योगी को अनुभव ।।
ब्रह्मानंद अविचल पावन । अतः करो निरोध चंचल मन ।। (३६९)

भावार्थः इन्द्रियाँ दमन कर सकें इसके लिए योगी को एकांत आवश्यक है। तब इन्द्रिय दमन संभव है और मन को योगी संयमित कर सकते हैं। तब लौकिक वासनाएं नष्ट होती हैं और योगी को अविचल पवित्र ब्रह्मानंद का अनुभव होता है। अतः चंचल मन को संयमित करो।

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व ॥ ३७० ॥

करो लय वाणी को मन में । मन को करो तुम लय बुद्धि में ।।
हो बुद्धि लय कूटस्थ आत्मा । हो इस भांति लय परमात्मा ।।
पाओ ज्ञान निर्विकल्प ब्रह्म । करो अनुभव हिय परम शम ।। (३७०)

भावार्थ: वाणी को मन में विलीन करो। मन को बुद्धि में विलीन करो। बुद्धि को अपरिवर्तनीय आत्मा में विलीन करो। इस भांति परमात्मा में विलीन हो निर्विकल्प ब्रह्म का ज्ञान पाओ और हृदय में परम शान्ति का अनुभव करो।

देहप्राणेन्द्रियमनो बुद्ध्यादिभिरुपाधिभिः ।
यैर्यैर्वृत्तेःसमायोगस्तत्तद्भावोऽस्य योगिनः ॥ ३७१ ॥

तन प्राण इन्द्रिय बुद्धि मन । हो जिन हेतु संयोग मन रमन ।।
होती प्राप्ति वही भाव जन । समझो यह सत्य योग कमन ।। (३७१)

भावार्थ: तन, प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि और मन, जिन के संयोग में मन रम जाता है, प्राणी को उसी भाव की प्राप्ति होती है, इस सत्य को योग के इच्छुक समझो।

तन्निवृत्त्या मुनेः सम्यक्सर्वोपरमणं सुखम् ।
संदृश्यते सदानन्दरसानुभवविप्लवः ॥ ३७२ ॥

जब होता निवृत चपल मन । इन विकार उत्कृष्ट मुनिजन ।।
हो अनुभव तब पूर्ण विरक्ति । मिले चित्त परमानंद शान्ति ।। (३७२)

भावार्थ: हे उत्कृष्ट मुनिवर, जब इन विकारों से चपल मन निवृत हो जाता है, तब पूर्ण विरक्ति (वैराग्य) का अनुभव होता है। मन को परमानंद शान्ति मिलाती है।

६०. वैराग्य निरूपण

अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते ।
त्यजत्यन्तर्बहिःसङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्षया ॥ ३७३ ॥

है उचित हेतु विरक्तजन । करे त्याग अन्तः बाह्य दुर्गुन ।।
हेतु मोक्ष नितांत मुनिजन । करे त्याग विकार सम्पूर्णन ।। (३७३)

भावार्थ: विरक्त प्राणी के लिए यह उचित है कि वह अंतर एवं बाह्य दुर्गुणों (अन्तः दुर्गुण जैसे अहंकार आदि, बाह्य दुर्गुण जैसे लौकिक भोग) का त्याग करे। हे मुनिजन, मोक्ष के लिए इन विकारों का पूर्णतः त्याग करना आवश्यक है।

बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरहमादिभिः ।
विरक्त एव शक्नोति त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः ॥ ३७४ ॥

यदि इन्द्रिय संग बाह्य बंधन । दर्प आदि विकार अंतर्मन ।।
है विपरीत पा सकें मोचन । अतः करो त्याग विरक्तजन ।। (३७४)

भावार्थ: यदि इन्द्रियों के साथ बाह्य संग है (तन लौकिक सुख में लीन है) और दर्प आदि विकार अंतःकरण में हैं, तो यह मोक्ष के विपरीत हैं। अतः वैरागी इनका त्याग करो।

वैराग्यबोधौ पुरुषस्य पक्षिवत् पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम् ।
विमुक्तिसौधाग्रलताधिरोहणं ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति ॥ ३७५ ॥

हैं ब्रह्मज्ञान और विरक्ति । हेतु मुमुक्ष समझो द्वि शक्ति ।।
न पा सके योगी निर्मोचन । हो न जब तक संग यह द्विगुन ।।
समान द्वि पंख विहग भूजन । न उड़ सके विहीन यदि एकन ।। (३७५)

भावार्थ: ब्रह्मज्ञान और वैराग्य, मुमुक्ष की दो शक्तियां हैं। जब तक यह दोनों गुण नहीं हों, योगी को मोक्ष नहीं मिल सकता। हे प्राणी, जैसे कि पक्षी के दो पंख हैं, यदि एक न हो तो वह उड़ नहीं सकता।

अत्यन्तवैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढप्रबोधः ।
प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्तिः मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः ॥ ३७६ ॥

हो सके समाधिस्थ योगीजन । वही जो वैरागी धर्म निपुन ।।
समाधिस्थ करे प्राप्त बोधन । छूटे बोधवान का भव-बंधन ।।
छूटे जब यह लौकिक-बंधन । होता अनुभव आनंद पावन ।। (३७६)

भावार्थ: जो वैरागी धर्म में निपुण है, वह योगी समाधिस्थ हो सकता है। समाधिस्थ को ही बोध (ब्रह्मज्ञान) मिलता है। बोध मिलने पर सांसारिक बंधन छूट जाते है। जब सांसारिक बंधन छूट जाते हैं तब परम आनंद का अनुभव होता है।

वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मनः
तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्यसाम्राज्यधुक् ।
एतद्द्वारमजस्रमुक्ति युवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्परं
सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञां कुरु श्रेयसे ॥ ३७७ ॥

नहीं कुछ और सुखदायक । वैराग्य से अधिक हेतु साधक ।।
गुण जितेन्द्रिय आत्म-विद्वन । दें सम सुख स्वर्ग योगीजन ।।
है यह द्वार दे जो वैमुक्तम् । अतः करो स्थित बुद्धि ब्रह्म ।।
हो निरीह और लीन आत्मन । होगा तब कल्याण मुमुक्षजन ।। (३७७)

भावार्थ: साधक के लिए वैराग्य से अधिक सुखदायी कुछ और नहीं है। जितेन्द्रिय और आत्मज्ञान गुण योगी को स्वर्ग के समान सुख देते है। यह मोक्ष के द्वार हैं, अतः ब्रह्म में बुद्धि स्थित करो। निष्काम हो और ब्रह्म में लीन हो। हे मुमुक्ष, तब कल्याण होगा।

आशां छिन्द्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः कृतिस्
त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमतिं मुञ्चातिदूरात्क्रियाः ।
देहादावसति त्यजात्मधिषणां प्रज्ञां कुरुष्वात्मनि
त्वं द्रष्टास्यमनोऽसि निर्द्वयपरं ब्रह्मासि यद्वस्तुतः ॥ ३७८ ॥

करो त्याग तुम विषम विषय। हैं जो सम विष समझो दिव्य।।
हैं यह मार्ग खेद दें मरन। अतः छोड़ कुल जाति अवलेपन।।
कर दो विदा लौकिक कर्म। न लगाओ मन असत विधर्म।।
करो केंद्रित बुद्धि आत्मा। क्योंकि तुम हो परमात्मा।।
रहित मल तथा भाव द्वैत। द्रष्टा सम परब्रह्म भगवत।।(३७८)

भावार्थ: तुम विषम विषयों (इन्द्रिय सम्बंधित विषय) का त्याग करो जो हे दिव्य, विष के समान हैं। यह दुःख के मार्ग हैं जो मरण देते हैं। अतः कुल, जाति, अहंकार छोड़ कर लौकिक कर्मों से विदा लो। मन को मिथ्या विधर्म में न लगाओ। बुद्धि को आत्मा में केंद्रित करो क्योंकि तुम मल तथा द्वैत भाव से रहित, परब्रह्म भगवान् के समान द्रष्टा परमात्मा हो।

६१. ध्यान-विधि

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम्।
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मायातया चाखण्डवृत्त्यानिशं
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर्भृशम् ॥ ३७९ ॥

है पाना ब्रह्म प्रयोजन। अतः करो तुम स्थिर दृढ़ मन।।
छोड़ो सुख बाह्य इन्द्रिय। न लगाओ मन सुख भोग विषय।।
करो केंद्रित जीवन लक्ष्य। न दो ध्यान कोई व्यर्थ विषय।।
हो लीन ब्रह्म कर निश्चल तन। समझो ब्रह्म व् दैह्य एकन।।
करो अनुभव अखंड वृत्ति। मिले तब सुख ब्रह्म व् शान्ति।।(३७९)

भावार्थ: लक्ष्य ब्रह्म पाना है अतः मन को स्थिर करो (अर्थात समाधिस्थ हो)। बाह्य इन्द्रियों के सुख छोड़ो। मन को सुख भोग विषयों में मत लगाओ। जीवन के लक्ष्य (मोक्ष) पर केंद्रित करो। कोई व्यर्थ विषय पर ध्यान न दो। शरीर को निश्चल कर ब्रह्म में लीन हो जाओ। ब्रह्म और आत्मा को एक समझो। पूर्णतः की अनुभूति करो (अर्थात तुम स्वयं ही पूर्ण ब्रह्म हो, ऐसी अनुभूति करो)। तब ब्रह्म और शान्ति का सुख मिलेगा।

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम् ।
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम् ॥ ३८० ॥

छोड़ो मोहमय अनात्म चिंतन । है जो कारण दुःख इस भुवन ।।
करो आनंदमय दैह्य चिंतन । जो हेतु साक्षात निर्मोचन ।। (३८०)

भावार्थः मोहमय अनात्म चिंतन को छोड़ो जो इस संसार में दुःख का कारण है। आनंदमय आत्मा का चिंतन करो जो साक्षात मोक्ष का कारण है।

एष स्वयंज्योतिरशेषसाक्षी विज्ञानकोशो विलसत्यजस्रम् ।
लक्ष्यं विधायैनमसद्विलक्ष्यणम् अखण्डवृत्त्यात्मतयानुभावय ॥ ३८१ ॥

सबका द्रष्टा स्वयं उज्जवलत । जो विज्ञानकोष में स्थित ।।
पृथक समस्त पदार्थ अनित्य । हो यही परम आत्मा लक्ष्य ।।
करो आत्मभाव से चिंतन । युक्त भाव अखंड वृत्त गहन ।। (३८१)

भावार्थः सबका साक्षी, स्वयं प्रकाशित, जो विज्ञानकोष में विराजित, समस्त अनित्य पदार्थों से भिन्न, यही परम आत्मा लक्ष्य हो। आत्मभाव एवं गहन पूर्णतः भाव के साथ इसका चिंतन करो।

एतमच्छीन्नया वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया ।
उल्लेखयन्विजानीयात्स्वस्वरूपतया स्फुटम् ॥ ३८२ ॥

रहित अन्य कोई धारणा मन । अखंड भाव से करो एक चिंतन ।।
देखे स्वयं में ब्रह्म निरूपन । यही विधि पाओ ब्रह्म दर्शन ।। (३८२)

भावार्थः अन्य कोई धारणा मन में न रखते हुए अखंड भाव से एक चिंतन करो (केवल ब्रह्म का चिंतन करो)। स्वयं में ब्रह्म स्वरुप देखो। यही उपाय ब्रह्म दर्शन पाने का है (ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने का है)।

अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु संत्यजन् ।
उदासीनतया तेषु तिष्ठेत्स्फुटघटादिवत् ॥ ३८३ ॥

करे सदृश दृढ़ आत्म भाव । त्याग दर्प आदि दुर्भाव ।।
हो उदासीन प्रति लौकिक । करे प्रभु समर्पण साधक ।। (३८३)

भावार्थः इस प्रकार आत्म भाव को दृढ़ कर, अहंकार आदि दुर्भावों को त्याग कर, संसार के प्रति उदासीन हो, साधक प्रभु (परमात्मा) को समर्पण करे।

६२. आत्म-दृष्टि

विशुद्धमन्तःकरणं स्वरूपे निवेश्य साक्षिण्यवबोधमात्रे ।
शनैः शनैर्निश्चलतामुपानयन् पूर्णं स्वमेवानुविलोकयेत्ततः ॥ ३८४ ॥

लगाए साधक चित्त पावन । द्रष्टा ज्ञान स्वरुप आत्मन ।।
करता हुआ प्राप्त निश्चलता । देखे स्वयं युक्त परिपूर्णता ।। (३८४)

भावार्थः द्रष्टा, ज्ञान स्वरुप आत्मा में साधक अपने शुद्ध चित्त को लगाए। इस प्रकार स्थिरता पाते हुए स्वयं को परिपूर्ण भाव में देखे (अर्थात स्वयं को परिपूर्ण ब्रह्म भाव में देखे)।

देहेन्द्रियप्राणमनोऽहमादिभिः स्वाज्ञानक्लृप्तैरखिलैरुपाधिभिः ।
विमुक्तमात्मानमखण्डरूपं पूर्णं महाकाशमिवावलोकयेत् ॥ ३८५ ॥

हो रहित ध्यान कल्पित तन । इन्द्रियाँ प्राण दर्प मन ।।
समस्त दुर्भाव अन्तः बाहर । देखे है स्व-आत्मा अनन्तर ।।
सम छाया सब ओर महा गगन । सर्वत्र हो परिपूर्ण भुवन ।। (३८५)

भावार्थः कल्पित शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, अहंकार, मन, समस्त अन्तः और बाह्य दुर्भावों से रहित हो आत्मा को अखंड देखे जिस प्रकार महाकाश सर्वत्र संसार में परिपूर्ण हो कर छाया हुआ है (अर्थात जैसे एक महाकाश संसार में सर्वत्र विद्यमान है)।

घटकलशकुसूलसूचिमुख्यैः गगनमुपाधिशतैर्विमुक्तमेकम् ।
भवति न विविधं तथैव शुद्धं परमहमादिविमुक्तमेकमेव ॥ ३८६ ॥

है नभ एक यद्यपि प्रभवन । घट जल कुशूल आदि साधन ।।
पर कहें सब है वह एक द्रव्य । नहीं धारक भिन्न नाम दिव्य ।।
सदृश समझो आत्मा एकन । रहित दर्प आदि सब दुर्गुन ।। (३८६)

भावार्थः आकाश एक है लेकिन बादल, जल, अन्न आदि वस्तुओं का श्रोत है। परन्तु सब कहते हैं कि वह एक पदार्थ है। यह दिव्य भिन्न नामों का धारक नहीं है। उसी प्रकार अहंकार आदि दुर्गुणों से रहित आत्मा को एक समझो।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता मृषामात्रा उपाधयः ।
ततः पूर्णं स्वमात्मानं पश्येदेकात्मना स्थितम् ॥ ३८७ ॥

ब्रह्मा से तृण प्रयन्त सर्वक । हैं असत्य उपाधियाँ साधक ।।
कर त्याग यह सब योगीजन । हो स्थित परिपूर्ण आत्मन ।। (३८७)

भावार्थः हे साधक, ब्रह्मा से तृण तक समस्त उपाधियाँ मिथ्या है। इन सब को त्याग कर हे योगी, परिपूर्ण आत्मा में स्थित हो।

यत्र भ्रान्त्या कल्पितं तद्विवेके तत्तन्मात्रं नैव तस्माद्विभिन्नम् ।
भ्रान्तेर्नाशे भाति दृष्टाहितत्त्वं रज्जुस्तद्वद्विश्वमात्मस्वरूपम् ॥ ३८८ ॥

हो कल्पना जिस वस्तु भ्रमवश । हो प्रतीत सतरूप ज्ञानवश ।।
लगे रस्सी सम सर्प भ्रमवश । पर हो भान सत्य जब ज्योतिस् ।।
सदृश हो जब नष्ट अबुद्धि । देखे जग ब्रह्ममय शुद्ध बुद्धि ।। (३८८)

भावार्थः भ्रमवश जिस वस्तु की कल्पना होती है, वह ज्ञान का बोध होने पर सत्य रूप प्रतीत होती है (अर्थात भ्रमवश कल्पित वस्तु को उचित ज्ञान होने पर सत्य रूप में देखा जाता है)। जैसे भ्रमवश रस्सी सर्प लगती है, पर प्रकाश होने पर सत्य का भान हो जाता है (अतः यह रस्सी है, यह बोध हो जाता है)। उसी प्रकार अबुद्धि (अज्ञान) के नष्ट होने पर शुद्ध बुद्धि से संसार ब्रह्ममय दिखता है।

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥ ३८९ ॥

हो तुम स्वयं ही चतुरानन । विष्णु शिव इंद्र समस्त भुवन ।।
है नहीं कुछ तुम से भिन्न । रखो विचार सदा यही मन ।। (३८९)

भावार्थः तुम स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इंद्र और समस्त संसार हो। तुम से भिन्न कुछ भी नहीं है, ऐसा विचार अपने मन में सदैव रखो।

अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं च स्वयं पुरस्तात्स्वयमेव पश्चात् ।
स्वयं ह्यावाच्यां स्वयमप्युदीच्यां तथोपरिष्टात्स्वयमप्यधस्तात् ॥ ३९० ॥

हो स्वयं तुम ही अन्तः बाहर । दांयें बांयें अग्र व् अपर ।।
ऊपर नीचे सब ओर साधक । हो यह अनुभव सदा हृदयक ।। (३९०)

भावार्थः हे साधक, तुम स्वयं ही अंदर हो, बाहर, हो, दायें हो, बायें हो, आगे हो, पीछे हो, ऊपर हो, नीचे हो, हृदय में ऐसा अनुभव सदा हो।

तरङ्गफेनभ्रमबुद्बुदादि सर्वं स्वरूपेण जलं यथा तथा ।
चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत् सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ॥ ३९१ ॥

सदृश तरंग फेन जलावृति । बुदबुद आदि जल आकृति ।।
समझो उसी प्रकार भुवन । पर्यन्त अहंकार आदि से तन ।।
है आत्मा अखंड शुद्ध चेतन । करो सदैव इसका चिंतन ।। (३९१)

भावार्थः जिस प्रकार तरंग, फेन, भंवर, बुलबुला आदि जल की ही आकृति हैं, उसी प्रकार अहंकार आदि से लेकर शरीर तक इस संसार को अखंड सिद्ध चैतन्य आत्मा समझो (अर्थात एक ही आकृति समझो)। इसका सदैव चिंतन करो।

सदेवेदं सर्वं जगदवगतं वाङ्मनसयोः
सतोऽन्यन्नास्त्येव प्रकृतिपरसीम्नि स्थितवतः ।
पृथक्किं मृत्स्नायाः कलशघटकुम्भाद्यवगतं
वदत्येष भ्रान्तस्त्वमहमिति मायामदिरया ॥ ३९२ ॥

होता जो प्रतीत यह भुवन। हेतु वाणी और मन भूजन।।
है सत स्वरुप स्थित ब्रह्म। हेतु पुरुष योगी परब्रह्म।।
है नहीं यह कुछ और भिन्न। जैसे नहीं भिन्न कर्द भुवन।।
घट कलश कुम्भ आदि बर्तन। पर दुर्भाग्यवश यह भूजन।।
सम सुरा हो मुग्ध विस्मापन। उन्मत्त बोले करण भेद वचन।। (३९२)

भावार्थः हे प्राणी, वाणी और मन से जो यह संसार प्रतीत होता है, वह ब्रह्म में स्थित सत स्वरुप है। जो योगी और महात्मा पुरुष हैं, उनके लिए यह कुछ और पृथक नहीं है (अर्थात संसार ब्रह्म ही है), जैसे भूमि की मिटटी घट, कलश, कुम्भ आदि बर्तनों से भिन्न नहीं है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह प्राणी मदिरा के समान माया से मोहित उन्मत्त हो भेद करने वाले शब्द बोलता है (अर्थात भेद करता है)।

क्रियासमभिहारेण यत्र नान्यदिति श्रुतिः ।
ब्रवीति द्वैतराहित्यं मिथ्याध्यासनिवृत्तये ॥ ३९३ ॥

करो अंत भाव द्वैत स्व-मन। 'करें नहीं कुछ और दर्शन'।।
है अर्थ श्रुति ग्रन्थ कथन। करो सदा अद्वैत परक मनन।।
हेतु निवृत्ति अध्यास द्वैत। करना पड़े अभाव मन द्वैत।। (३९३)

भावार्थः अपने मन से द्वैत भाव का अंत करो। 'कुछ और दिखाई नहीं देता' इस श्रुति कथन का अर्थ है कि सदा अद्वैत से संबन्धित चिंतन करो। द्वैत अध्यास की निवृत्ति के लिए मन में द्वैत (भाव) का अभाव करना पड़ता है।

आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्पं निःसीमनिःस्पन्दननिर्विकारम् ।
अन्तर्बहिःशून्यमनन्यमद्वयं स्वयं परं ब्रह्म किमस्ति बोध्यम् ॥ ३९४ ॥

है जो परब्रह्म समान गगन । निर्विकल्प निःसीम पावन ।।
निश्चल निर्विकार विलक्षन । शून्य सब ओर अंतर बाह्यन ।।
अद्वितीय सर्वज्ञ सम भगवन । है यही विषय ज्ञान भूजन ।। (३९४)

भावार्थ: हे प्राणी, जो परब्रह्म, आकाश समान, निर्विकल्प, सीमा रहित, पावन, निश्चल, निर्विकार, विलक्षण, सब ओर अंदर बाहर शून्य, अद्वितीय, सर्वज्ञ, भगवान् समान है, यही विषय ज्ञान का है (अर्थात जानने योग्य है)।

वक्तव्यं किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं
ब्रह्मैतज्जगदाततं नु सकलं ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिः ।
ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्धमतयः संत्यक्तबाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसन्ति सन्ततचिदानन्दात्मनैतद्ध्रुवम् ॥३९५ ॥

न कहें कुछ अधिक इस विषय । है सत्य जीव स्वयं ब्रह्म दिव्य ।।
विस्तृत ब्रह्म जग निरुपण । कहे श्रुति है ब्रह्म विलक्षण ।।
हो जाता जिन्हें बोध दिव्य । 'हूँ मैं ही ब्रह्म यह सत्य' ।।
कर त्याग समस्त बाह्य विषय । हो जाते लीन वह ब्रह्म दिव्य ।। (३९५)

भावार्थ: इस विषय में कुछ अधिक न कहें। जीव स्वयं दिव्य ब्रह्म है, यह सत्य है। ब्रह्म संसार स्वरुप मैं फैला है। श्रुति कहती है कि ब्रह्म अद्वितीय है। जिन्हें यह पवित्र बोध हो जाता है कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ, यह सत्य है', वह सब बाह्य विषयों को (सांसारिक भोग विलास विषयों को) त्याग कर, दिव्य ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

जहि मलमायाकोशेऽहंधियोत्थापिताशां
प्रसभमनिलकल्पे लिङ्गदेहेऽपि पश्चात् ।
निगमगदितकीर्तिं नित्यमानन्दमूर्तिं
स्वयमिति परिचीय ब्रह्मरूपेण तिष्ठ ॥ ३९६ ॥

करो त्याग तुम अहं बुद्धि । है जो आसक्त मलमय अशुद्धि ।।
पश्चात करो त्याग लिंग तन । दृढ़ता से जो है रूप पवन ।।
तब करो सतत कीर्ति गायन । करें वेद जिसका शुभ वर्णन ।।
आनन्द रुप ब्रह्म निरूपण । हो स्थिर सदैव ब्रह्म वर्पन् ।। (३९६)

भावार्थ: तुम अहं बुद्धि का त्याग करो जो मलमय अशुद्ध में आसक्त है। तत्पश्चात वायु रूप लिंग तन का दृढ़ता से त्याग करो। तब सदैव ब्रह्म रूप में स्थिर हो आनन्द रूप ब्रह्म स्वरुप की कीर्ति का निरंतर गायन करो जिसका शुभ वर्णन वेद करते हैं (प्रभु की कीर्ति का गायन करो)।

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः
परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः ।
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलम्
तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥ ३९७ ॥

कहे श्रुति जब तक आसक्त जन । सम मृतक विनाशी लिंग तन ।।
रहता वह अत्यंत मलिनिमन् । रहता ग्रसित रोग जन्म मरन ।।
भोगता रहता दुःख भुवन । पर जब करे साक्षात्कार मन ।।
दैह्य कल्याणी अचल पावन । पाता मुक्ति तब सब खेदन ।। (३९७)

भावार्थ: श्रुति कहती है कि जब तक प्राणी की आसक्ति मृतक समान विनाशी शरीर में है, तब तक वह अत्यंत अपवित्र है। रोग, जन्म, मरण (आदि उपाधियों से) से ग्रसित रहता है। इस संसार में दुःख भोगता रहता है। पर जब उसके मन का कल्याणी, अचल और पवित्र आत्मा से साक्षात्कार हो जाता है, तब वह सब दुःखों से मुक्ति पा जाता है।

६३. प्रपंचका बाध

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः ।
स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ ३९८ ॥

कर निरास समस्त आरोपित । स्व-आत्मा वस्तुएं कल्पित ।।
बन जाता पूर्ण ब्रह्म भूजन । अद्वितीय अक्रिय और पावन ।। (३९८)

भावार्थ: अपनी आत्मा से समस्त आरोपित कल्पित वस्तुओं को हटाकर प्राणी अद्वितीय, अक्रिय और पवित्र पूर्ण ब्रह्म बन जाता है (कल्पित वस्तुएँ जैसे सांसारिक भोगों को देने वाले मिथ्या विनाशी पदार्थ)।

समाहितायां सति चित्तवृत्तौ परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।
न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः प्रजल्पमात्रः परिशिष्यते यतः ॥ ३९९ ॥

हो जाता जब जन स्थिर ब्रह्म । निर्विकार अक्षय परमात्म ।।
हो जाते नष्ट मिथ्या विकल्प । समान वचन व्यर्थ प्रजल्प ।। (३९९)

भावार्थ: जब प्राणी निर्विकार, अविनाशी परमात्म में स्थिर हो जाता है, तब उसके मिथ्या विकल्प नष्ट हो जाते हैं (सांसारिक सुखों को भोगने के विकल्प नष्ट हो जाते हैं) जैसे असम्बन्ध प्रलाप (व्यर्थ बकवास वचन) ।

असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि ।
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०० ॥

जब होता लीन ब्रह्म भूजन । असत वस्तु हों सम विस्मापन ।।
चूँकि नहीं करता भेद मन । होता लीन जब ब्रह्म पावन ।।
निराकार निर्विशेष आत्मा । हो जाता तब वह परमात्मा ।। (४००)

भावार्थ: जब प्राणी का मन ब्रह्म में लीन होता है तो असत वस्तुएं मात्र कल्पना हो जाती हैं। चूँकि निर्विकार, शुद्ध, निराकार, निर्विशेष (अभेदी) ब्रह्म में लीन मन कोई भेद नहीं करता। वह तब परमात्मा हो जाता है।

द्रष्टुदर्शनदृश्यादिभाव शून्यैकवस्तुनि ।
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०१ ॥

है अभेदी समझो वह भूजन । भाव शून्य जो दृश्य-दर्शन ।।
द्रष्टा निर्विकार निर्गुण । अक्षय सर्वत्र रहित त्रिगुण ।। (४०१)

भावार्थ: यह समझो कि जो प्राणी दृश्य-दर्शन से शून्य भाव, साक्षी, निर्विकार, निर्गुण, अविनाशी, सर्वत्र, त्रिगुण से रहित है, वह अभेदी है।

कल्पार्णव इवात्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि ।
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०२ ॥

समान समुद्र काल प्रलय । है जो परिपूर्ण शुद्ध दिव्य ।।
निर्विकार रहित त्रिगुण । करे कैसे भेद यह निर्गुण ।। (४०२)

भावार्थ: जो प्रलय काल के समुद्र के समान परिपूर्ण, शुद्ध, दिव्य, निर्विकार, त्रिगुण रहित है, ऐसा निर्गुण भेद कैसे कर सकता है?

तेजसीव तमो यत्र प्रलीनं भ्रान्तिकारणम् ।
अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०३ ॥

हो नष्ट तम जब अनुज्वालन । हो नष्ट भ्रम जब सत बोधन ।।
समान जब हो हृदय उत्पन्न । भाव परम तत्व अति पावन ।।
हो जन निर्विशेष विलक्षन । कर सके कैसे भेद वह महन ।। (४०३)

भावार्थ: प्रकाश होने पर अंधकार नष्ट होता है। सत्य बोध होने पर भ्रम नष्ट होता है। इसी प्रकार जब हृदय में अत्यंत पवित्र परम तत्व का भाव उत्पन्न होता है तब प्राणी अद्वितीय निर्विशेष हो जाता है। वह श्रेष्ठ भेद कैसे कर सकता है?

एकात्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथं वसेत् ।
सुषुप्तौ सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः ॥ ४०४ ॥

नहीं करता भेद योगीजन । जो एकात्मक श्रेष्ठ पावन ।।
जैसे नहीं दिखे विभिन्नता । मग्न सुख स्वरुप सुषुप्तिता ।। (४०४)

भावार्थ: योगी जो एकात्मक (एकांत में रहने वाला), श्रेष्ठ और पवित्र है, वह भेद नहीं करता। जैसे सुख स्वरुप सुषुप्ति अवस्था में मग्न विभिन्नता नहीं देखता (वह उस अवस्था में बस आनंदित होता है)।

नह्यस्ति विश्वं परतत्त्वबोधात् सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।
कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो गुणे न ह्यम्बुबिन्दुर्मृगतृष्णिकायाम् ॥ ४०५ ॥

हो जाता विलुप्त यह भुवन । हेतु लीन जन सत निरूपण ।।
ज्ञानी निर्विकल्प परब्रह्म । नहीं सम्भव हो उसे भ्रम ।।
कर सके भेद पाश और फणिन् । न हो भ्रम जल तृष्णा हरिन ।। (४०५)

भावार्थ: जब प्राणी सत स्वरुप में लीन हो जाता है तो संसार विलीन हो जाता है (लौकिक भाव नहीं रहता)। निर्विकल्प परब्रह्म ज्ञानी को भ्रम होना संभव नहीं। वह रस्सी और सर्प में भेद कर सकता है। उसे मृग तृष्णा में जल का भ्रम नहीं होता।

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ।
इति ब्रूते श्रुतिः साक्षात्सुषुप्तावनुभूयते ॥ ४०६ ॥

कहती श्रुति यह स्पष्ट वचन । द्वैत भाव समझो विस्मापन ।।
है सत्य केवल अद्वैत भावन । दिखता जो अपि काल शयन ।। (४०६)

भावार्थ: श्रुति स्पष्ट वचन कहती है कि द्वैत भाव को माया समझो। केवल अद्वैत भाव ही सत्य है, जो सुषुप्ति अवस्था में भी दिखाई देता है।

अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम् ।
पण्डितै रज्जुसर्पादौ विकल्पो भ्रान्तिजीवनः ॥ ४०७ ॥

देखते स्पष्ट भेद बुद्धिमन । मध्य रज्जु सर्प आदि विषयन ।।
अतः हो यदि भ्रम इस कथन । समझो अज्ञानवश वह भूजन ।। (४०७)

भावार्थ: बुद्धिमान रस्सी और सर्प जैसे विषयों में स्पष्ट भेद देखते हैं। अतः यदि इस कथन में कोई भ्रम है (असत्य प्रतीत होता है) तो हे प्राणी, यह अज्ञानवश है।

६४. आत्म चिंतन का विधान

चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन ।
अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि ॥ ४०८ ॥

हैं विकल्प विषय मूलक चित्त । न हों उत्पन्न जब मन संयमित ।।
अतः करो चित्त स्थित ब्रह्म । कर इसको स्थिर शुद्ध आत्म ।। (४०८)

भावार्थ: विकल्प विषय (लौकिक विषय) का श्रोत चित्त (मन) है। नियंत्रित मन में यह उत्पन्न नहीं होते। अतः अपने चित्त को आत्मा में स्थिर कर ब्रह्म में स्थित करो।

किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं
निरुपममतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम् ।
निरवधिगगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४०९ ॥

करते अनुभव स्व-अन्तःकरन । जब हों स्थित समाधि योगिन ।।
परमानंद स्वरुप बोध नित्य । उपमा रहित कालातीत दिव्य ।।
नित्य मुक्त निःसीम सम गगन । निश्चेस्ट रहित कला अभिन्न ।।
निर्विकल्प सम्पूर्ण ब्रह्म । है जो जीवन लक्ष्य महात्म ।। (४०९)

भावार्थ: जब योगी समाधि में स्थित होते हैं तब अपने अन्तःकरण में परमानंद, बोध स्वरुप, नित्य, उपमा रहित, कालातीत, दिव्य, नित्य मुक्त, गगन समान असीमित, निश्चेस्ट, कला रहित, भेद रहित, निर्विकल्प, सम्पूर्ण ब्रह्म का अनुभव करते हें, जो महात्मा का जीवन लक्ष्य है।

प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावं
समरसमसमानं मानसं बन्धदूरम् ।
निगमवचनसिद्धं नित्यमस्मत्प्रसिद्धं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४१० ॥

करते अनुभव स्व-अन्तःकरन । जब हों स्थित समाधि योगिन ।।
जो रहित कारण और कर्म । अतीत भावना जन सत्य परम ।।
उपमा रहित परे उपपत्ति । सिद्ध वेद वाक्य नित्य उपरति ।।
ब्रह्म स्वरूप स्थित परमात्म । सर्वत्र अक्षय शुद्ध परब्रह्म ।। (४१०)

भावार्थ: जब योगी समाधि में स्थित होते हैं तब वह कारण और कर्म से रहित, मानवीय भावना से अतीत, सत्य परम, उपमा रहित, परे प्रमाण, सिद्ध वेद वाक्य, नित्य, परमानंद, ब्रह्म स्वरुप, परमात्म में स्थित, सर्वत्र, अक्षय, शुद्ध, परब्रह्म का अपने अंतःकरण में अनुभव करते हैं।

अजरममरमस्ता भाववस्तुस्वरूपं
स्तिमितसलिलराशिप्रख्यमाख्याविहीनम् ।
शमितगुणविकारं शाश्वतं शान्तमेकं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४११ ॥

करते अनुभव स्व-अन्तःकरन । जब हों स्थित समाधि योगिन ।।
अजर अमर शून्य आभास तत्व । वस्तु रुप निश्चल सम जलत्व ।।
रहित नाम रूप गुण विकार । नित्य शांत श्रेष्ठ निराकार ।। (४११)

भावार्थ: जब योगी समाधि में स्थित होते हैं तब वह अजर, अमर, आभास तत्व से शून्य, वस्तु रुप, जल तत्व के समान निश्चल, नाम रूप गुण और विकार से रहित, नित्य, शांत, अद्वितीय, निराकार का अपने अन्तःकरण में अनुभव करते हैं।

समाहितान्तःकरणः स्वरूपे विलोकयात्मानमखण्डवैभवम् ।
विच्छिन्द्धि बन्धं भवगन्धगन्धितं यत्नेन पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व ॥ ४१२ ॥

कर स्थिर मन अखंड यश संपन्न । करो साधक परब्रह्म दर्शन ।।
काटो दुःखदायी भव-बंधन । करो यत्न हो सफल जीवन ।। (४१२)

भावार्थः यश संपन्न, अखंड में मन को स्थिर कर (अर्थात आत्मा में मन को स्थिर कर) हे साधक, परब्रह्म का दर्शन करो। लौकिक बंधनों को काटो। यत्न करो जिससे जीवन सफल हो (अर्थात मनुष्य के जीवन लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हो)।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
भावयात्मानमात्मस्थं न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४१३ ॥

करते रहो साधक तुम चिंतन । अविकार अद्वितीय भगवन ।।
नहीं पड़ोगे चक्र जन्म-मरन । मिलेगा निःसंदेह निर्मोचन ।। (४१३)

भावार्थः हे साधक तुम अविकार, अद्वितीय भगवान् का चिंतन करते रहो। तब जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ोगे। निःसंदेह मोक्ष पाओगे।

६५. दृश्य की उपेक्षा

छायेव पुंसः परिदृश्यमान् माभासरूपेण फलानुभूत्या ।
शरीरमाराच्छववन्निरस्तं पुनर्न संधत्त इदं महात्मा ॥ ४१४ ॥

है सम छाया भूजन यह तन । कर विचार फल इसके कर्मन ।।
करो बाध भांति शव बुद्धिवन । नहीं करते ग्रहण इसे महन ।। (४१४)

भावार्थः यह शरीर प्राणी की छाया के समान है। इसके कर्म-फल का विचार कर हे बुद्धिवान, इसे शव की भांति त्याग दो। महात्मा इसे ग्रहण नहीं करते। (शरीर के कर्म भौतिक ही होते हैं, अतः इन भौतिक कर्मों के फल का विचार कर शरीर के कर्मों पर ध्यान न दो)

सततविमलबोधानन्दरूपं समेत्य
त्यज जडमलरूपोपाधिमेतं सुदूरे ।
अथ पुनरपि नैष स्मर्यतां वान्तवस्तु
स्मरणविषयभूतं पल्पते कुत्सनाय ॥ ४१५ ॥

करो प्राप्त चिदानंद पावन ।नित्य सत आत्मा निरूपन ।।
करो त्याग वस्तु मल तत्क्षन ।करो नहीं इनका कभी स्मरन ।।
करो वमित रयि का यदि चिंतन ।आए वमित होता रोगी तन ।।(४१५)

भावार्थ: चिदानंद, शुद्ध, नित्य, सत आत्मा स्वरुप को प्राप्त करो। सभी मलिन वस्तुओं का तुरंत त्याग करो। इनका कभी स्मरण नहीं करो। उल्टी की गई वस्तु का चिंतन करने से उल्टी आती है जो तन को रोगी करती है ।

समूलमेतत्परिदाह्य वन्हौ सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।
ततः स्वयं नित्यविशुद्धबोधा नन्दात्मना तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ४१६ ॥

रहते स्थित सदैव बुद्धिवन ।विशुद्ध बोधानन्द निरूपन ।।
कर भस्म ब्रह्माग्नि सत वर्पन् ।जो हेतु मूल जग विस्मापन ।।
हैं जिससे सूक्ष्म स्थूल भुवन ।कर विचार फल इनके कर्मन ।।(४१६)

भावार्थ: महात्मा सदैव विशुद्ध, बोधानन्द (ब्रह्म ज्ञान का आनंद) स्वरुप में विश्व और माया के मूल कारण जिससे स्थूल और सूक्ष्म जगत है, इसके कर्मों के फल पर विचार कर इसे (कर्म फलों को) सत स्वरुप ब्रह्माग्नि में भस्म कर स्थित रहते हैं।

प्रारब्धसूत्रग्रथितं शरीरं प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिव स्रक् ।
न तत्पुनः पश्यति तत्त्ववेत्ता नन्दात्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्तिः ॥ ४१७ ॥

सम पड़ी रहे माला गौधन ।अथवा गिरी कहीं पथ निर्जन ।।
नहीं होता उन्हें अवबोधन ।सदृश रहे या न रहे यह तन ।।
समझ इसे प्रारब्ध जो भूजन ।रहे लीन सदा ब्रह्म निरूपन ।।
कर समर्पण सम्पूर्ण स्व-मन ।नहीं देखे अन्य ओर है महन ।।(४१७)

भावार्थ: जैसे गौमाँ के गले में माला पड़ी रहे अथवा किसी निर्जन मार्ग पर गिर जाए, उन्हें इसका संज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार यह शरीर रहे अथवा नहीं, प्राणी इसको प्रारब्ध समझ अपने मन को सम्पूर्ण समर्पण कर ब्रह्म स्वरुप में सदैव लीन रहे, अन्य ओर नहीं देखे, वह महात्मा है।

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः ।
किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति तत्त्ववित् ॥ ४१८ ॥

'हूँ मैं ही अखंड आत्मा' । हो ज्ञान जब यह महात्मा ।।
रहती उनकी इच्छा जीवन । नहीं हेतु मात्र तन पोषन ।।(४१८)

भावार्थ: 'मैं ही अखंड आत्मा हूँ', जब इसका ज्ञान महात्मा को हो जाता है, तब उनकी जीने की इच्छा केवल शरीर के पोषण हेतु नहीं रहती (ब्रह्म-ज्ञान हेतु होती है)।

६६. आत्मज्ञान का फल

संसिद्धस्य फलं त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिनः ।
बहिरन्तः सदानन्दरसास्वादनमात्मनि ॥ ४१९ ॥

कर प्राप्त उचित बोध ब्रह्म । होता मुक्त योगी मरण-जन्म ।।
करे अन्तः बाह्य आस्वादन । नित्यानंद रस सदैव स्व-मन ।। (४१९)

भावार्थ: ब्रह्म का उचित ज्ञान पाकर योगी जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। मन के अंदर बाहर सदैव नित्य आनंद का रस चखता रहता है।

वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम् ।
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥ ४२० ॥

है फल ज्ञान वैराग्य साधक । देता ज्ञान उपरति विषयक ।।
हो जब उपरति विषय लौकिक । करे आनंद हिय अलौकिक ।।(४२०)

भावार्थ: हे साधक, वैराग्य का फल (ब्रह्म) ज्ञान है। ज्ञान विषय भोगों से उदासीनता देता है। जब सांसारिक विषयों से उदासीनता हो जाती है, तब हृदय में अलौकिक (अद्भुत) आनंद होता है।

यद्युत्तरोत्तराभावः पूर्वपूर्वन्तु निष्फलम् ।
निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः ॥ ४२१ ॥

बिना आत्म शांति उपरति । बोध बिना लौकिक विरक्ति ।।
वैराग्य बिना पाए बोध । समझो है निष्फल यह अनुबोध ।।
हो जाए जब विषय निवृत्ति । पाता साधक परम तृप्ति ।। (४२१)

भावार्थ: आत्मशांति के बिना उपरति (उदासीनता), लौकिक विरक्ति के बिना (आत्म) ज्ञान और ज्ञान के बिना वैराग्य, इस अनुभूति को निष्फल समझो (अर्थात साधक के लिए यह तीनों गुण आवश्यक हैं)। जब विषयों से निवृति हो जाती है (लौकिक विषयों से वैराग्य हो जाता है), तब साधक परम तृप्ति पाता है।

दृष्टदुःखेष्वनुद्वेगो विद्यायाः प्रस्तुतं फलम् ।
यत्कृतं भ्रान्तिवेलायां नाना कर्म जुगुप्सितम्
पश्चान्नरो विवेकेन तत्कथं कर्तुमर्हति ॥ ४२२ ॥

पाता दुःख हेतु नियति जन । पर करे नहीं विचलित स्व-मन ।।
है यह आद्य फल ज्ञान ब्रह्म । किए यदि जन भ्रमवश कुकर्म ।।
उपरांत बोध समझ प्रभाव । होता उत्पन्न तब विवेक भाव ।। (४२२)

भावार्थ: प्रारब्ध के कारण प्राणी दुःख पाता है, लेकिन उसका मन (दुःख में) विचलित नहीं होना , यह ब्रह्म ज्ञान का प्रथम फल है। भ्रम के कारण यदि प्राणी ने कुकर्म किए हैं, (ब्रह्म) बोध के पश्चात उसका प्रभाव समझ आने पर विवेक भाव उत्पन्न होता है।

विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः प्रवृत्तिरज्ञानफलं तदीक्षितम् ।
तज्ज्ञाज्ञयोर्यन्मृगतृष्णिकादौ नोचेद्विदां दृष्टफलं किमस्मात् ॥ ४२३॥

फल बोध समझो भव निवृत्ति ।अज्ञान फल दे भव प्रवृत्ति ।।
समझ सके जो मरीचिका ।है वह ज्ञानी जग अबोधका ।।
अन्यथा है वह अज्ञानीजन ।जानें योगी फल अवबोधन ।।(४२३)

भावार्थ: ज्ञान का फल संसार से निवृत्ति (वैराग्य) समझो। अज्ञान का फल लौकिक बंधन देता है। जो इस मृग तृष्णा को समझता है वह जग प्रदर्शक ज्ञानी है। अन्यथा अज्ञानी पुरुष है। योगी ज्ञान का फल जानते हैं।

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषतः ।
अनिच्छोर्विषयः किं नु प्रवृत्तेः कारणं स्वतः ॥ ४२४ ॥

हो नष्ट यदि हृदय भूजन ।ग्रंथि जो अज्ञान निरूपन् ।।
हो रहित इच्छा वह महात्मन ।नहीं होता मुग्ध भव-बंधन ।।(४२४)

भावार्थ: यदि प्राणी के हृदय में अज्ञान रूपी ग्रंथि नष्ट हो जाए, तब वह महात्मा इच्छा रहित हो जाता है। उसे लौकिक बंधन आकर्षित नहीं करते।

वासनानुदयो भोग्ये वैरागस्य तदावधिः ।
अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः
लीनवृत्तैरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ॥ ४२५ ॥

न होना उदय विषय भावना ।है चरम सीमा परित्यागना ।।
न होना उदय अहंकार मन ।है चरम सीमा अवबोधन ।।
न हो उदय पुनः लौकिकता ।है चरम सीमा उपरामता ।।(४२५)

भावार्थ: विषय भावना उदय न हों, यह परित्यागना (वैराग्य) की चरम सीमा है। मन में अहंकार का उदय न हो, यह ज्ञान की चरम सीमा है। सांसारिकता का उदय न हो, यह विषयों में उदासीनता (उपरामता) की सीमा है।

६७. जीवन मुक्त के लक्ष्यण

ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्तबाह्यार्थधीर्
अन्यावेदितभोग्यभोगकलनो निद्रालुवद्बालवत् ।
स्वप्नालोकितलोकवज्जगदिदं पश्यन् क्वचिल्लब्धधीर्
आस्ते कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्यः स मान्यो भुवि ॥ ४२६ ॥

हेतु स्थित ब्रह्ममय निरन्तर । न रहे बुद्धि बाह्य विषयंतर ।।
करे सेवन भोग्य सम बालक । करें जब निवेदन जन अन्यक ।।
देखे जग सम प्रपंच स्वप्न । यद्यपि रहे मध्य भव-भूजन ।।
भोगता वह सुभग सद्गुण । है धन्य धन्य वह पूजित जन ।। (४२६)

भावार्थ: जो निरन्तर ब्रह्म में स्थित होने के कारण बुद्धि बाहरी अन्य विषयों (लौकिक विषयों) में नहीं लगाता, बालक के समान दूसरे प्राणियों के निवेदन पर भोग्य (पदार्थों) का सेवन करता है, यद्यपि सांसारिक प्राणियों के मध्य रहता है, परन्तु विश्व को स्वप्न में प्रपंच की भांति देखता है, वह सौभाग्यशाली पुण्य भोगता है। वह माननीय प्राणी धन्य है, धन्य है।

स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते ।
ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः ॥ ४२७ ॥

जो योगी कर लीन ब्रह्म मन । कर त्याग कर्म व् उद्विग्नपन ।।
रहे ब्रह्म आनंद रूप मग्न । है वह स्थितप्रज्ञ साधकजन ।। (४२७)

भावार्थ: जो योगी मन को ब्रह्म में लीन कर, कर्म और उद्विग्नपन (विकार) का त्याग कर देता है, आनंद रूप ब्रह्म में मग्न रहता है, वह स्थितप्रज्ञ साधक है।

ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेकभावावगाहिनी ।
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते
सुस्थितासौ भवेद्यस्य स्थितप्रज्ञः स उच्यते ॥ ४२८ ॥

वृत्ति रहित विकल्प चेतन । एकभाव ब्रह्म दैह्य पावन ।।
कहें प्रज्ञा इसे बुद्धिवन । हो जब स्थिर यह वृत्ति चेतन ।।
होता उस जन मुक्त जीवन । कहते यह सब ग्रन्थ पावन ।। (४२८)

भावार्थः विकल्प रहित चेतन वृत्ति, ब्रह्म और आत्मा में एकीभाव, इसे बुद्धिवान प्रज्ञा (सत्य और असत्य का ज्ञान) कहते हैं। जब यह चेतन वृत्ति स्थिर हो जाती है तब उस प्राणी का जीवन मुक्त हो जाता है, ऐसा पवित्र ग्रन्थ कहते हैं।

यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तरः ।
प्रपञ्चो विस्मृतप्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४२९ ॥

है प्रज्ञा स्थिर जिस भूजन । करे अनुभव सतत उल्लसन ।।
नहीं प्रपंच जिसके जीवन । है वह जीवन मुक्त भूजन ।।(४२९)

भावार्थः जिस प्राणी की प्रज्ञा स्थिर है, निरंतर आनंद का अनुभव करता है, जिसके जीवन में प्रपंच नहीं है, वह जीवन मुक्त प्राणी है।

लीनधीरपि जागर्ति जाग्रद्धर्मविवर्जितः ।
बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३० ॥

है संभव लीन वृत्ति भुवन । पर जाग्रत मन ब्रह्म वर्पन् ।।
कहते इसे रहित धर्म जागरन । होती यह दशा योगीजन ।।
है वह रहित वासना महन । समझो उसे तुम मुक्त जीवन ।।(४३०)

भावार्थः लौकिक व्रतियों में लीन हो सकता है पर मन में ब्रह्म स्वरुप जाग्रत है (अर्थात ब्रह्म ज्ञान है), इसे धर्म रहित जागरण कहते हैं। यह अवस्था योगी की होती है। वह वासना रहित महात्मा है। उसे तुम मुक्त जीवन समझो।

शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः ।
यस्य चित्तं विनिश्चिन्तं स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३१ ॥

है जिसकी शांत भव वासना । निपुण पर कलाहीन भावना ।।
स्थित   निर्विकार   निरूपन । चित्तयुक्त पर है निश्चिन्तन ।।
पा सकेगा वह लक्ष्य भूजन । समझो   उसे   मुक्त   जीवन ।। (४३१)

भावार्थ: जिसकी लौकिक वासना शांत है, निपुण (कलावान) है पर कलाहीन भावना है (अर्थात उसका आकर्षण सांसारिक कला में नहीं है), निर्विकार स्वरुप में स्थित है, चित्त युक्त है पर निश्चिंत है, वह मनुष्य का लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त कर सकेगा। उसे जीवन मुक्त समझो।

वर्तमानेऽपि   देहेऽस्मिञ्छायावदनुवर्तिनि ।
अहन्ताममताभावो जीवन्मुक्तस्य लक्ष्यणम् ॥ ४३२ ॥

होते   जिसके   नष्ट   दुष्कर्म । हेतु प्रारब्ध संग सम कर्दम ।।
हो अभाव अहम् मम संवेदन । होता उसका मुक्त जीवन ।। (४३२)

भावार्थ: प्रारब्ध के कारण छाया के समान लगे जिसके दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं, 'मैं और तेरा' भाव का अभाव हो जाता है, उसका जीवन मुक्त हो जाता है।

अतीताननुसन्धानं   भविष्यदविचारणम् ।
अउदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्ष्यणम् ॥ ४३३ ॥

नहीं करे भूत कर्म स्मरन । नहीं करे भविष्य का चिंतन ।।
रहे रहित दुःख सुख इदन्तन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३३)

भावार्थ: पूर्व जन्मों का स्मरण न करे, भविष्य का चिंतन न करे, वर्तमान में दुःख सुख से रहित हो (अनुभव न करे), यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन्स्वभावेन विलक्ष्यणे ।
सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्ष्यणम् ॥ ४३४ ॥

हो समदर्शी सर्वत्र भुवन । है जो गुण दोषमय संपन्न ।।
जो पृथक आत्म निरूपन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३४)

भावार्थः जो दोषमय गुणों से संपन्न, आत्म स्वरुप से पृथक संसार है, उसमें सर्वत्र समदर्शी रहे। यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

इष्टानिष्टार्थसम्प्राप्तौ समदर्शितयात्मनि ।
उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्ष्यणम् ॥ ४३५ ॥

रहे सम हों प्राप्त कोई कृत । शुभ अशुभ तटस्थ फल अन्यत् ।।
हों न उत्पन्न विकार कोई मन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३५)

भावार्थः शुभ, अशुभ, तटस्थ कोई भी फल प्राप्त हो, प्रत्येक परिणाम में सम रहे। मन में कोई विकार उत्पन्न न हों। यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यतेः ।
अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्ष्यणम् ॥ ४३६ ॥

रहे ब्रह्म आनंद मग्न मन । हो सब बाह्य अन्तः निरघ तन ।।
रहे स्थिर सदा ज्ञान आत्मन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३६)

भावार्थः मन ब्रह्म आनंद में मग्न रहे। सभी भीतर बाहर के विकारों से शरीर मुक्त हो। आत्म-ज्ञान में सदा स्थिर रहे। यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाववर्जितः ।
अउदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्तलक्ष्यणः ॥ ४३६ ॥

हो रहित कर्म इन्द्रिय तन । रहित दर्प मोह सम दुर्गुन ।।
उदासीन प्रति कर्म भुवन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३७)

भावार्थ: इन्द्रियों और शरीर के कर्मों से रहित, अहंकार, मोह समान दुर्गुणों से रहित, लौकिक कर्मों के प्रति उदासीन, यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभावः श्रुतेर्बलात् ।
भवबन्धविनिर्मुक्तः स जीवन्मुक्तलक्ष्यणः ॥ ४३८ ॥

है ज्ञानी जो ब्रह्म तत्व जन । हेतु मान श्रुति सम ग्रंथन ।।
है रहित सब लौकिक-बंधन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३८)

भावार्थ: श्रुति समान ग्रंथों के प्रमाण से प्राणी का ब्रह्म तत्व का ज्ञानी होना, लौकिक बंधनों से मुक्त होना, यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

देहेन्द्रियेष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके ।
यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३९ ॥

न हो अहम् भाव इन्द्रिय तन । न इदं भाव अन्य जग विषयन ।।
यह पावन सत सगुण भूजन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४३९)

भावार्थ: इन्द्रिय और शरीर में अहम भाव का न होना, लौकिक विषयों में यह भाव न होना (लौकिक विषयों में उदासीन होना), यह प्राणी के पवित्र, सत्य, सगुण मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः ।
प्रज्ञया यो विजानिति स जीवन्मुक्तलक्ष्यणः ॥ ४४० ॥

हेतु बुद्धि तत्व अवबोधन । होना अभेदी ब्रह्म आत्मन ।।
अपि अभेदी ब्रह्म व् भुवन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४४०)

भावार्थ: तत्व ज्ञानी बुद्धि से ब्रह्म और आत्मा में अभेदी होना, ब्रह्म और संसार में भी अभेदी होना, यह मुक्त जीवन के लक्षण हैं।

साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन् पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः ।
समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्तलक्ष्यणः ॥ ४४१ ॥

करें सम्मान यदि साधुजन । करें अपमान यदि दुष्टजन ।।
है समभाव सदैव जब मन । हैं यह लक्षण मुक्त जीवन ।। (४४१)

भावार्थ: यदि साधुजन सम्मान करे, दुर्जन अपमान करें, मन को सदैव समभाव में रखना जीवन मुक्ति के लक्षण हैं।

यत्र प्रविष्टा विषयाः परेरिता नदीप्रवाहा इव वारिराशौ ।
लिनन्ति सन्मात्रतया न विक्रियां उत्पादयन्त्येष यतिर्विमुक्तः ॥ ४४२ ॥

मिल जाती जब नदी रत्नाकर । होता प्रवाह नद सम सागर ।।
सदृश न हो क्षोभ मन साधक । देख विषय भोग जन लौकिक ।।
रहे स्थित सदैव आत्म चिंतन । है वह यति श्रेष्ठ मुक्त जीवन ।। (४४२)

भावार्थ: जब नदी समुद्र में मिल जाती है तब नदी का प्रवाह समुद्र जैसा हो जाता है (अर्थात शांत हो जाता है)। उसी प्रकार सांसारिक पुरुषों के विषय भोग देख कर जब साधक के मन में क्षोभ नहीं होता, वह सदैव आत्म चिंतन में स्थित रहता है, वह (साधक) जीवन मुक्त श्रेष्ठ योगी है।

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः ।
अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः ॥ ४४३ ॥

होता ज्ञान ब्रह्म जब भूजन । नहीं रहती आस्था तब भुवन ।।
यदि रहती आस्था लौकिक । नहीं हुआ बोध उसे दैविक ।। (४४३)

भावार्थ: जब प्राणी को ब्रह्म ज्ञान हो जाता है, तब संसार में आस्था नहीं रहती। यदि सांसारिक आस्था है, तो उसे दैविक (ब्रह्म) बोध नहीं हुआ है।

प्राचीनवासनावेगादसौ संसरतीति चेत् ।
न सदेकत्वविज्ञानान्मन्दी भवति वासना ॥ ४४४ ॥

है संभव प्रवृत्ति वासना । हेतु पूर्व जन्म कर्म कामना ।।
पर हो जाता जब बोध ब्रह्म । पड़ जाते मंद काम कर्म ।। (४४४)

भावार्थ: पूर्व जन्म के कर्म कामना के कारण वासना प्रवृत्ति रहना संभव है। परन्तु जब ब्रह्म ज्ञान हो जाता है तब वासना कर्म मंदे पड़ जाते हैं।

अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्तिः कुण्ठति मातरि ।
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः ॥ ४४५ ॥

हो अति कामी यदि भूजन । पर देख माँ हो प्रतिबन्धिन् ।।
सदृश हो बोध आत्म वर्पन् । होती नष्ट प्रवृत्ति जग जन ।। (४४५)

भावार्थ: यदि प्राणी अत्यंत कामी हो, परन्तु माँ को देख कुंठित हो जाता है, उसी प्रकार आत्म बोध होने पर प्राणी की संसार में प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

६८. प्रारब्ध विचार

निदिध्यासनशीलस्य बाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते ।
ब्रवीति श्रुतिरेतस्य प्रारब्धं फलदर्शनात् ॥ ४४६ ॥

है संभव हो प्रतीति भुवन । निदिध्यानशील साधकजन ।।
यह हेतु फल भोग पूर्वतर । है प्रारब्ध श्रुति अनुसर ।। (४४६)

भावार्थ: नित्य ध्यान शील साधक को संसार की प्रतीति सम्भव है। यह पूर्व (जन्म) के फलों के भोग के कारण है। श्रुति के अनुसार यह प्रारब्ध है।

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते ।
फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित् ॥ ४४७ ॥

होता सुख दुःख जन अनुभव । हेतु प्रारब्ध किए कर्म भव ।।
होता भोग फल हेतु कर्म । है बिन फल जीवन रहित कर्म ।। (४४७)

भावार्थ: सुख दुःख का अनुभव प्राणी को संसार में किए कर्म से प्रारब्ध के कारण है। कर्म के कारण ही फल का भोग होता है (अर्थात कर्मों के कारण ही सुख दुःख फल मिलते हैं)। बिना कर्म के जीवन फल रहित होता है।

अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम् ।
सञ्चितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत् ॥ ४४८॥

होते कर्म स्वप्न दशा अपगम । सम हो भान 'हूँ मैं ब्रह्म' ।।
होते नष्ट तब संचित कर्म । किए हों भूजन जो कोटि जन्म ।। (४४८)

भावार्थ: जैसे स्वप्नावस्था के कर्म जागने पर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार जब यह बोध हो जाता है कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ', प्राणियों के करोड़ों जन्म के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यत्कृतं स्वप्नवेलायां पुण्यं वा पापमुल्बणम् ।
सुप्तोत्थितस्य किं तत्स्यात्स्वर्गाय नरकाय वा ॥ ४४९ ॥

किए पुण्य अथवा पाप महन । काल स्वप्नावस्था जो भूजन ।।
होती नहीं प्राप्ति व्योमन् । अथवा नर्क उस लौकिक जन ।। (४४९)

भावार्थ: प्राणी ने स्वप्न अवस्था के समय महान पुण्य अथवा पाप किए हों, उनसे उस सांसारिक प्राणी को स्वर्ग अथवा नर्क की प्राप्ति नहीं होती।

स्वमसङ्गमुदासीनं परिज्ञाय नभो यथा।
न श्लिष्यति च यत्किंचित्कदाचिद्भाविकर्मभिः ॥ ४५० ॥

समझे यति स्वयं असंग सम गगन। उदासीन प्रति भव कर्मन ।।
नहीं होता लिप्त वह बंधन। करे भविष्य जो भी वह कर्मन ।। (४५०)

भावार्थ: योगी आकाश समान स्वयं को असंग समझे, सांसारिक कर्मों के प्रति उदासीन रहे, वह भविष्य में किसी भी कृत्यों के बंधन में लिप्त नहीं होता।

न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते।
तथात्मोपाधियोगेन तद्धर्मैर्नैव लिप्यते ॥ ४५१ ॥

जैसे नहीं सम्बन्ध संग गगन। भरी कुम्भ में मदिरा गन्धिन् ।।
सदृश नहीं हो लिप्त आत्मन। सम्बन्ध कोई विकार भुवन ।। (४५१)

भावार्थ: जैसे घड़े में भरी हुई सुरा की गंध का आकाश के साथ कोई सम्बद्ध नहीं होता, उसी प्रकार सांसारिक विकारों के सम्बन्ध से आत्मा लिप्त नहीं होती (अर्थात आत्मा पवित्र रहती है)।

ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्मज्ञानान्न नश्यति।
अदत्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत् ॥ ४५२ ॥
व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात्तु गोमतौ।
न तिष्ठति छिनत्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम् ॥ ४५३॥

जैसा छोड़ा बाण ओर लक्ष्य। करे बेध अवश्य वह स्व-लक्ष्य ।।
सदृश कर्म पूर्व ज्ञानोदय। होते नष्ट पश्चात बोधोदय ।। (४५२)
हो भ्रम व्याघ्र पर गौ माता। चला बाण पा अनुज्ञाता ।।
न करे भेद व्याघ्र और गाय। करे अघन्य मरण गौ असहाय ।। (४५३)

भावार्थ: जैसे लक्ष्य की ओर छोड़ा बाण अपने उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करता है, उसी प्रकार ज्ञानोदय से पूर्व किए गए कर्म ज्ञानोदय के पश्चात नष्ट हो जाते हैं (उन कर्मों

का कोई सत, असत फल नहीं मिलता)। गौ माता पर व्याघ्र का भ्रम होने पर निर्देशित छोड़ा हुआ बाण व्याघ्र और गाय का भेद न करते हुए असहाय गौ, जिसका वध करना निषेध है, उसे मार देता है।

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः
सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्षंचितागामिनाम् ।
ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मायातया ये सर्वदा संस्थिताः
तेषां तत्त्रितयं नहि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम् ॥ ४५४ ॥

होता अवश्य प्रारब्ध शक्वन् । पर होता नष्ट बाद यह भोगन् ।।
सद्दश होता जब बोध ब्रह्म । होते भस्म पूर्व संचित कर्म ।।
रहो सदैव भाव साधकजन । हैं एक ब्रह्म और आत्मन ।।
होंगे तब त्रिकर्म निरर्थक । बने ब्रह्म निर्गुण तब साधक ।। (४५४)

भावार्थ: प्रारब्ध अवश्य बलवान होता है, पर यह प्राणियों के भोगने के पश्चात नष्ट होता है। सद्दश जब ब्रह्म-ज्ञान होता है, तब पूर्व संचित कर्म भस्म हो जाते हैं। साधक का भाव सदैव एकत्व ब्रह्म और आत्मा में रहना चाहिए। तब तीनों कर्म (प्रारब्ध कर्म, संचित कर्म और आगामी कर्म) निष्फल हो जाते हैं। तब साधक निर्गुण ब्रह्म बन जाता है।

उपाधितादात्म्यविहीनकेवल ब्रह्मात्मनैवात्मनि तिष्ठतो मुनेः ।
प्रारब्धसद्भावकथा न युक्ता स्वप्नार्थसंबन्धकथेव जाग्रतः ॥ ४५५ ॥

रहते मुनि जो भाव ब्रह्म । छोड़ सम्बन्ध सब लौकिक कर्म ।।
प्रारब्ध कर्म हेतु इन महन । है समान विषय देखे स्वप्न ।। (४५५)

भावार्थ: जो मुनि सब सांसारिक कर्मों को छोड़कर ब्रह्म भाव में रहते हैं, उन महापुरुषों के लिए प्रारब्ध कर्म उसी प्रकार हैं जैसे स्वप्न में देखे विषय।

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे देहोपयोगिन्यपि च प्रपञ्चे ।
करोत्यहन्तां ममतानिदन्तां किन्तु स्वयं तिष्ठति जागरेण ॥ ४५६॥

जग जाता जब भूजन शयन । हो जाती तब विस्मृति स्वप्न ।।
होता नष्ट भ्रम विस्मापन । सम अहंता ममता इदंतपन ।। (४५६)

भावार्थ: जब प्राणी निद्रा से जाग जाता है, तब स्वप्न भूल जाता है। (स्वप्न के) भ्रम और मायापन जैसे अहंकार, मोह, 'मैं और तेरा पन' नष्ट हो जाते हैं।

न तस्य मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा न संग्रहस्तज्जगतोऽपि दृष्टः ।
तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृषार्थे न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम् ॥ ४५७॥

नहीं होती इच्छा उस विद्वन । हो व्यस्त भव मिथ्या विषयन ।।
नहीं करता भव वस्तु संचिति । यदि इसके विपरीत स्थिति ।।
है मन ओर लौकिक प्रवृति । यह दशा शयन नहीं जाग्रति ।। (४५७)

भावार्थ: उस बुद्धिवान की इच्छा सांसारिक मिथ्या विषयों में व्यस्त होने की नहीं होती। वह सांसारिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करता। यदि इसके विपरीत स्थिति है, मन सांसारिक प्रवृत्तियों में लगा है, तब यह निद्रा अवस्था है, जाग्रत नहीं।

तद्वत्परे ब्रह्मणि वर्तमानः सदात्मना तिष्ठति नान्यदीक्षते ।
स्मृतिर्यथा स्वप्नविलोकितार्थे तथा विदः प्राशनमोचनादौ ॥ ४५८ ॥

ब्रह्म भाव में रहे जो विद्वन । नहीं होता व्यग्र उसका मन ।।
उसके समस्त कृत्य हेतु जीवन । जैसे भोजन होते स्वभावन ।।
जैसे करें स्मरण विषय स्वप्न । सदृश करे वह स्वयमेव कर्मन ।। (४५८)

भावार्थ: ब्रह्म भाव में जो विद्वान रहता है, उसका मन विचलित नहीं होता (अर्थात वह निरंतर ब्रह्म भाव में ही रहता है)। उसके जीवन हेतु समस्त कार्य जैसे भोजन (आदि) प्राकृतिक रूप से होते हैं। जैसे स्वप्न के विषयों को स्मरण करते हैं, उसी प्रकार (स्वाभाविक स्मरण से) उसके कर्म अपने आप होते हैं (अर्थात उसे जीवन हेतु कृत्य करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता)।

कर्मणा निर्मितो देहः प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम् ।
नानादेरात्मनो युक्तं नैवात्मा कर्मनिर्मितः ॥ ४५९ ॥

हेतु कर्म हो जन्म स्वरुप तन । है प्रारब्ध विषयक केवल तन ।।
नहीं अनादि आत्मा नियति । यतः नहीं दैह्य हेतु कृति ।। (४५९)

भावार्थ: कर्म के कारण शरीर का जन्म होता है। प्रारब्ध का सम्बन्ध केवल शरीर से है। अनादि आत्मा नियति (प्रारब्ध) नहीं है क्योंकि कर्म के कारण आत्मा नहीं है।

अजो नित्यः शाश्वत इति ब्रूते श्रुतिरमोघवाक् ।
तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः प्रारब्धकल्पना ॥ ४६० ॥

है दैह्य अजन्मा आदि नित्य । कथन यह श्रुति ग्रन्थ दिव्य ।।
नहीं रहते शेष कोई कर्म । रहता जो साधक मग्न ब्रह्म ।। (४६०)

भावार्थ: आत्मा अजन्मा, आदि और नित्य है, यह दिव्य ग्रन्थ श्रुति का कथन है। जो साधक ब्रह्म में मग्न है (ब्रह्म साधना में मग्न है), उसके कोई कर्म शेष नहीं रहते (अर्थात वह निष्कर्म हो जाता है)।

प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः ।
देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतामतः ॥ ४६१ ॥

जब तक है आस्था तन भूजन । तब तक वह निर्भर प्राक्तन ।।
नहीं शुभ यह हेतु निर्मोचन । अतः छोड़ो नियति अवलम्बन ।। (४६१)

भावार्थ: जब तक प्राणी की आस्था शरीर में है तब तक वह प्रारब्ध पर निर्भर है। यह मोक्ष प्राप्ति के लिए उचित नहीं है। अतः नियति पर आस्था छोड़ो।

शरीरस्यापि प्रारब्धकल्पना भ्रान्तिरेव हि ।
अध्यस्तस्य कुतः सत्त्वमसत्यस्य कुतो जनिः
अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः ॥ ४६२ ॥

समझो यह सत्य तुम बुद्धिवन । है भ्रम मानना प्रारब्ध तन ।।
क्योंकि है कल्पित भ्रम तन । हो नहीं सत्ता अध्यस्त मयन ।।
जब नहीं सत्ता किसी विषय । होगा कैसे अस्तित्व उस द्रव्य ।।
नहीं जन्म तो कैसी क्षति । सत्ता शून्य की नहीं नियति ।।(४६२)

भावार्थ: हे बुद्धिवान, यह तुम सत्य समझो कि तन को प्रारब्ध मानना भ्रम है क्योंकि तन कल्पित भ्रम है। अध्यस्त (कल्पित) विषयों की सत्ता नहीं होती। जब किसी विषय की सत्ता नहीं है, तब उस पदार्थ का अस्तित्व कैसे होगा? जब जन्म ही नहीं हुआ तो विनाश कैसे होगा? सत्ता शून्य का प्रारब्ध नहीं होता।

ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि ।
तिष्ठत्ययं कथं देह इति शङ्कावतो जडान्
समाधातुं बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः ॥ ४६३ ॥
न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय विपश्चिताम् ।
यतः श्रुतिरभिप्रायः परमार्थैकगोचराः ॥ ४६४ ॥

करें यह शंका कुछ मूढ़जन । हो यदि नाश तम हेतु वेदन ।।
क्यों ज्ञानी पाए स्थूल तन । कहे श्रुति हेतु जन आचरन ।।
होता उनमें उत्पन्न प्राक्तन । बनता हेतु जो जन जन्म मरन ।।(४६३)
है यथार्थ श्रुति का कथन । है नहीं सत्य देहादि विद्वन ।।
है सत्य केवल ज्ञान आत्मन । करो हेतु संज्ञान समर्पन ।।(४६४)

भावार्थ: कुछ मूर्ख प्राणी यह शंका करते हैं कि यदि ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है तो ज्ञानियों को स्थूल शरीर क्यों मिलता है? श्रुति कहती है कि प्राणियों के आचरण के कारण उनमें प्रारब्ध उत्पन्न होता है, जो प्राणी के जन्म-मरण (जन्म मरण स्थूल शरीर के द्वारा ही होता है) का कारण बनता है। श्रुति का वास्तविक कथन है कि हे विद्वान्, देहादि सत्य नहीं हैं (यह कल्पित भ्रम हैं)। एकमात्र सत्य ब्रह्म ज्ञान है। इस ज्ञान को प्राप्त करने हेतु समर्पण करो।

६९. नानात्व-निषेध

परिपूर्णमनाद्यन्तम प्रमेयमविक्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४६५ ॥

सुनो भली भांति श्रुति कथन । है ब्रह्म परिपूर्ण पावन ।।
सर्वत्र अनादि अनंत दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४६५)

भावार्थ: श्रुति का कथन भली भांति सुनो। ब्रह्म परिपूर्ण, पावन, सर्वत्र, अनादि, अनंत, दिव्य है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्दघनमक्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४६६ ॥

जो सत्य और चित्तानन्द गहन । है वही ब्रह्म सत्य पावन ।।
अक्रिय अद्वितीय और दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४६६)

भावार्थ: जो गहन सत्य और चित्तानन्द है, वही सत्य, पावन, अक्रिय, अद्वितीय एवं दिव्य ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४६७ ॥

जो अंतरात्मा एकरस अनंत । सर्वव्यापक अद्वितीय महंत ।।
परिपूर्ण गुणी ब्रह्म दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४६७)

भावार्थ: जो अंतरात्मा, एकरस, अनंत , सर्वव्यापक, अद्वितीय, महान, परिपूर्ण दिव्य गुणों से युक्त है, वह ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

अहेयमनु   पादेयमनादेयमनाश्रयम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४६८ ॥

न त्याज्य न ग्राह्य है विलक्षन । न योग्य स्थित किसी अर्थन ।।
है आधारहीन ब्रह्म दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४६८)

भावार्थ: न त्याज्य है, न ग्राह्य है, विलक्षण है, न किसी वस्तु में स्थित योग्य है (अर्थात किसी वस्तु में स्थित नहीं रहता, स्वतंत्र है), आधारहीन है (अर्थात जिसका कोई आधार नहीं है), वह दिव्य ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४६९ ॥

जो कलाहीन और निर्गुन । सूक्ष्म निर्विकल्प और पावन ।।
अद्वितीय है वह ब्रह्म दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४६९)

भावार्थ: जो कला से रहित, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकल्प, पावन, अद्वितीय है, वह दिव्य ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

अनिरूप्य स्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४७० ॥

है जिसका रूप अवर्णित । है नहीं विषय वाणी चित्त ।।
अद्वितीय है वह ब्रह्म दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४७०)

भावार्थ: जिसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, जो वाणी और चित्त का विषय नहीं है (अर्थात वाणी और मन से नहीं समझा जा सकता), वह अद्वितीय दिव्य ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

सत्समृद्धं स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनीदृशम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ४७१ ॥

है जो सत्य वैभवी पावन । स्वतः सिद्ध निरुपम बुद्धिवन ।।
अद्वितीय है वह ब्रह्म दिव्य । नहीं पदार्थ किंचित अन्य ।। (४७१)

भावार्थ: जो सत्य, वैभव पूर्ण, पवित्र, स्वतः सिद्ध, उपमा रहित, बुद्धिमान है, वह अद्वितीय दिव्य ब्रह्म है। अन्य पदार्थ किंचित नहीं हैं (अर्थात इनके विपरीत गुण वाला कोई तत्व नहीं है)।

७०. आत्मानुभव का उपदेश

निरस्तरागा विनिरस्तभोगाः शान्ताः सुदान्ता यतयो महान्तः ।
विज्ञाय तत्त्वं परमेतदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृतिमात्मयोगात् ॥ ४७२ ॥

जो रागहीन भव वस्तु भूजन । हो गई इच्छा अंत भोग मन ।।
हैं इन्द्रियाँ स्व-नियंत्रित । हैं स्वामी जो शांत चित्त ।।
जान सकें वह तत्व परमात्म । करें प्राप्त शम वह महात्म ।। (४७२)

भावार्थ: जो सांसारिक वस्तुओं में रागहीन हैं (अर्थात लौकिक वस्तुओं से कोई लगाव नहीं है), (सांसारिक वस्तुओं के) मन की भोग की इच्छा का अंत हो गया है, इन्द्रियाँ स्व-नियंत्रित हैं, शांत चित्त के स्वामी हैं, वह परमात्म तत्व (ब्रह्म तत्व) को जान सकते हैं। ऐसे महात्मा शान्ति प्राप्त करते हैं।

भवानपीदं परतत्त्वमात्मनः स्वरूपमानन्दघनं विचार्य ।
विधूय मोहं स्वमनःप्रकल्पितं मुक्तः कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः ॥ ४७३ ॥

अतः हे वत्स करो तुम मनन । दैह्य परम तत्व आनंदघन ।।
कर त्याग कल्पित मोह स्व-मन । हो मुक्त रूप अज्ञान शयन ।। (४७३)

भावार्थ: अतः हे वत्स, तुम परम तत्व आनंददायी आत्मा का चिंतन करो। अपने मन में कल्पित मोह का त्याग करो। अज्ञान रूपी निद्रा से मुक्त हो।

समाधिना साधुविनिश्चलात्मना पश्यात्मतत्त्वं स्फुटबोधचक्षुषा ।
निःसंशयं सम्यगवेक्षितश्चेच् छ्रुतः पदार्थो न पुनर्विकल्प्यते ॥ ४७४ ॥

हेतु समाधि करो स्थिर मन । देखो ब्रह्म तत्व बोधित नयन ।।
करो इस भांति सत्य दर्शन । रहेगा न कोई संशय तब मन ।। (४७४)

भावार्थ: समाधि के द्वारा अपने मन को स्थिर करो। ज्ञानी नेत्रों से ब्रह्म तत्व को देखो। इस भांति सत्य के दर्शन करो, तब मन में कोई संशय नहीं रहेगा (अर्थात ब्रह्म तत्व के बारे में कोई संशय नहीं रहेगा)।

स्वस्याविद्या बन्धसंबन्धमोक्षात्
सत्यज्ञानानन्द रूपात्मलब्धौ ।
शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं
चान्तःसिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणम् ॥ ४७५ ॥

छूटें जब रूप अज्ञान बंधन । हो प्राप्ति सच्चिदानंदघन ।।
यही युक्ति ग्रन्थ गुरु-वचन । होते सिद्ध जो हेतु अंतःकरन ।। (४७५)

भावार्थ: जब अज्ञान रूपी बंधन छूटते हैं, तब सच्चिदानंदघन की प्राप्ति होती है। यही युक्ति, ग्रन्थ और गुरु-वचन हैं जो अन्तःकरण से सिद्ध होते हैं ।

बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिन्तारोग्यक्षुदादयः ।
स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं परेषामानुमानिकम् ॥ ४७६ ॥

जानें जन स्वयं तृप्ति बंधन । चिंता वार्त भूख निर्मोचन ।।
पर करें यदि अन्य यह विवरण । समझो वह ज्ञान वितर्कन ।। (४७६)

भावार्थ: प्राणी स्वयं तृप्ति, बंधन, चिंता, स्वास्थ्य, भूख, मोक्ष को जानते हैं। यदि दूसरे इनका विवरण दें, तो समझो कि वह अनुमान है।

तटस्थिता बोधयन्ति गुरवः श्रुतयो यथा ।
प्रज्ञयैव तरेद्विद्वानीश्वरानुगृहीतया ॥ ४७७ ॥

गुरु और श्रुति दें वेदन । मात्र सार रूप ज्ञान आत्मन ।।
कर प्रयोग बुद्धि बुद्धिवन । सहित आशीर्वाद भगवन ।।
तर जाओ यह भव-सागर । हो मुक्त पाओ धाम अक्षर ।। (४७७)

भावार्थ: गुरु और श्रुति ब्रह्म-ज्ञान का केवल सार रूप में बोध देते हैं (पूर्ण ज्ञान तो स्वयं सिद्धि से ही मिलता है)। हे बुद्धिवान, प्रभु के आशीर्वाद से बुद्धि का प्रयोग कर इस भव-सागर से तर जाओ। मुक्त होकर प्रभु का धाम पाओ।

स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् ।
संसिद्धः संमुखं तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मनात्मनि ॥ ४७८ ॥

स्व-अनुभव होता जब वेदन । अखंड आत्मा हे साधकजन ।।
रहता भाव निर्विकल्प भूजन । हो सिद्ध तब संग मन प्रसन्न ।। (४७८)

भावार्थ: हे साधकजन, अपने अनुभव से जब अखंड आत्मा का ज्ञान हो जाता है, तब प्राणी सिद्ध हो प्रसन्न चित्त के साथ निर्विकल्प भाव में रहता है।

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च ।
अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम् ॥ ४७९ ॥

कहता वेदांत सार महात्म । हैं जीव जगत केवल आत्म ।।
हो जाओ स्थित उस महत्तम । है जो स्वरुप अखंड अनुपम ।।
करो नहीं संशय तुम भूजन । हैं इनके साक्षी सब ग्रंथन ।। (४७९)

भावार्थ: हे महात्मा, वेदांत का सार कहता है कि जीव और जगत केवल ब्रह्म हैं। जो अखंड रूप अनुपम ब्रह्म है, उस महान में स्थित हो जाओ। हे प्राणी, इसमें तुम संशय नहीं करो। इनके प्रमाण सब ग्रन्थ हैं।

७१. बोधोपलब्धि

इति गुरुवचनाच्छ्रुतिप्रमाणात् परमवगम्य सतत्त्वमात्मयुक्त्या ।
प्रशमितकरणः समाहितात्मा क्वचिदचलाकृतिरात्मनिष्ठतोऽभूत् ॥ ४८० ॥

इस प्रकार कर बोध आत्मन । हेतु गुरु श्रुति सिद्ध वचन ।।
कर प्रयोग स्व-युक्ति बुद्धि । करो साधक तुम अपनी शुद्धि ।।
होंगी तब इन्द्रियाँ शांत । होगे स्थित तुम ब्रह्म प्रशांत ।। (४८०)

भावार्थ: हे साधक, इस प्रकार गुरु और श्रुति प्रमाणित कथन से आत्मा का बोध कर अपनी युक्ति और बुद्धि से तुम अपनी शुद्धि करो। तब इन्द्रियाँ शांत होंगी (अर्थात नियंत्रित होंगी)। तुम पूर्ण रूप से ब्रह्म में स्थित होगे।

किंचित्कालं समाधाय परे ब्रह्मणि मानसम् ।
उत्थाय परमानन्दादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८१ ॥

कर समाहित चित्त महात्मा । परम आनंदमयी परमात्मा ।।
किंचित काल कर नियंत्रन । बोलो तुम तब यह मधुर वचन ।। (४८१)

भावार्थ: हे महात्मा, अपने चित्त को कुछ देर तक नियंत्रित कर, परम आनंदमयी परमात्मा में समाहित कर, तब तुम यह मधुर वचन बोलो।

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिः ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या ।
इदं न जानेऽप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा सुखमस्त्यपारम् ॥ ४८२ ॥

पा कर ज्ञान ब्रह्म हे महन ।हुई नष्ट बुद्धि ओर भुवन ।।
हो नष्ट प्रवृत्ति भव-विषयन । रहा नहीं इदं अनिदं वेदन ।।
आनंद मिला अपार तदन्तर ।है अंतहीन और जो निरंतर ।।
कैसे मिला यह परम वेदन ।होता विस्मय अत्यंत महन ।।(४८२)

भावार्थ: हे महात्मा, ब्रह्म-ज्ञान पा कर बुद्धि लौकिकता में नष्ट हो गई है (अर्थात छूट गए हैं)। लौकिक विषयों में प्रवृत्ति नष्ट कर अब इदं (प्रत्यक्ष) और अनिदं (अप्रत्यक्ष) का बोध नहीं रहा। अपार आनंद मिला है जो निरंतर अंतहीन है। यह परम ज्ञान कैसे मिला, हे महात्मा, आश्चर्य होता है।

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तुं न वा शक्यते
स्वानन्दामृतपूरपूरितपर ब्रह्माम्बुधेर्वैभवम् ।
अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावं भजन्मे मनो
यस्यांशांशलवे विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम् ॥ ४८३ ॥

करता अनुभव मैं सुभगकर ।जैसे गल रहा था पड़ा सागर ।।
सम वर्षा काल जलमूर्तिका ।पर मैं अब पड़ा इन्दुजनका ।।
ले रहा आनंद मकरंद का ।नहीं कर सकूं वर्णन इसका ।।
इस आत्मानंद सोम वर्पन् ।नहीं संभव हेतु मन चिंतन ।।(४८३)

भावार्थ: मैं सौभाग्यशाली अनुभव करता हूँ कि जैसे सागर में वर्षा काल ओले के समान गल रहा था, परन्तु अब समुद्र में पड़ा अमृतानंद ले रहा हूँ जिसका वर्णन नहीं कर सकता। इस अमृत रूपी आत्म आनंद का मन से चिंतन नहीं किया जा सकता (अर्थात इस महान आनंद को न वाणी से वर्णित किया जा सकता है और न मन से चिंतन किया जा सकता है)।

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं जगत् ।
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम् ॥ ४८४ ॥

हो रहा विस्मित मैं हे महन । कहाँ गया वह भव-प्रदर्शन ।।
कहाँ हुआ विलीन वह दृश्य । हुआ वह संसार अब अदृश्य ।। (४८४)

भावार्थ: हे महात्मा, मैं आश्चर्यचकित हूँ कि वह लौकिक प्रदर्शन कहाँ चला गया? वह दृश्य कहाँ छुप गया? वह संसार अब अदृश्य हो गया।

किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विलक्ष्यणम् ।
अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे ॥ ४८५ ॥
न किंचिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम् ।
स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्ष्यणः ॥ ४८६ ॥

पूर्ण सम अखंड सुधामृत । ले रहा हूँ मैं आनंद महत ।।
है क्या यहां वस्तु त्याज्य । अथवा है कौन वस्तु ग्राह्य ।।
है कौन वस्तु जो सामान्य । अथवा है कौन जो असमान्य ।। (४८५)
न देख सकूं में यह स्व-नयन । न सुन सकूं मैं स्व-श्रवन ।।
न समा रहा यह सुबुद्धि मम । हूँ मुदित बस स्थित ब्रह्म ।।
विपरीत अवस्था प्राक्तन । कर रहा अनुभव हूँ विलक्षन ।। (४८६)

भावार्थ: पूर्ण अखंड अमृत के समान मैं महान आनंद ले रहा हूँ। यहां क्या त्यागने योग्य वस्तु है अथवा क्या ग्रहण करने योग्य वस्तु है, कौन साधारण वस्तु है अथवा कौन असाधारण है, यह मैं अपने नेत्रों से न देख पा रहा हूँ, न अपने कर्णों से सुन पा रहा हूँ। यह मेरी सुबुद्धि में नहीं समा पा रहा (अर्थात मैं नहीं समझ पा रहा)। ब्रह्म में स्थित बस आनंद ले रहा हूँ। पूर्ववत अवस्था के विपरीत अद्वितीय अनुभव कर रहा हूँ।

नमो नमस्ते गुरवे महात्मने विमुक्तसङ्गाय सदुत्तमाय ।
नित्याद्वयानन्दरसस्वरूपिणे भूम्ने सदापारदयाम्बुधाम्ने ॥ ४८७ ॥
यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिका पातधूतभवतापजश्रमः ।
प्राप्तवानहमखण्डवैभवा नन्दमात्मपदमक्षयं क्षणात् ॥ ४८८ ॥

महत गुरु जो रहित भव-बंधन । संत शिरोमणि नित्य विलक्षन ।।
आनंद स्वरुप अपार सुजन । करूँ आपको कोटि नमन ।। (४८७)
हेतु आपकी कृपा निदर्शन । समान सोम शीतल ज्योत्स्न ।।
अपगत श्रम सम ताप भुवन । पाया अखंड ऐश्वर्य तत्क्षन ।।
पा आनंदमय अक्षत पदात्म । हुआ मैं लीन ज्ञान आत्म ।। (४८८)

भावार्थः महात्मा गुरु जो लौकिक बंधनों से मुक्त, संत शिरोमणि, पवित्र, अद्वितीय, आनंद के भण्डार, अपार दयावान है, मैं आपको कोटि प्रणाम करता हूँ। आपकी कृपा दृष्टि के द्वारा जो चन्द्रमा की शीतल किरणों के समान है, सांसारिक ताप समान श्रम दूर हुआ और तत्क्षण अखंड ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई। सम्पूर्ण आनंदमय ब्रह्म पद पाकर में आत्म ज्ञान में लीन हुआ।

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं विमुक्तोऽहं भवग्रहात् ।
नित्यानन्दस्वरूपोऽहं पूर्णोऽहं त्वदनुग्रहात् ॥ ४८९ ॥

हेतु कृपा गुरु हुआ धन्य । रहित भव-बंधन कृतकृत्य ।।
सर्वत्र परिपूर्ण विद्वन । लीन नित्यानंद निरूपन ।। (४८९)

भावार्थः गुरु कृपा के कारण भव-बंधन से रहित, धन्य, कृत कृत्य, सर्वत्र परिपूर्ण, विद्वान, नित्यानंद में लीन हुआ ।

असङ्गोऽहमनङ्गोऽहम लिङ्गोऽहमभङ्गुरः ।
प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहममलोऽहं चिरन्तनः ॥ ४९० ॥

हुआ अनुभव मुझे हूँ पावन । असंग अशरीर अक्षय अलिंगन ।।
अत्यंत शांत अनंत पुरातन । इच्छा रहित ज्ञानी चेतन ।। (४९०)

भावार्थः (गुरु कृपा से) मुझे अनुभव हुआ कि मैं शुद्ध, अलिप्त, देह से परे, शाश्वत, अचिह्नित, अति शांत, अनंत, पुरातन, इच्छा रहित आत्म-ज्ञानी हूँ।

अकर्ताहमभोक्ताहम विकारोऽहमक्रियः ।
शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥ ४९१ ॥

हूँ अकर्ता अभोक्ता अव्यय । अक्रिय शुद्ध सत ज्ञानी दिव्य ।।
हूँ एक समान परमात्मा । नित्य कल्याण स्वरुप आत्मा ।। (४९१)

भावार्थः कर्मों से निर्लिप्त, इच्छा रहित, अपरिवर्तनशील, निष्क्रिय, शुद्ध, सत्य ज्ञानी, दिव्य, एक, परमात्मा समान, नित्य, कल्याण स्वरुप आत्मा हूँ।

द्रष्टुः श्रोतुर्वक्तुः कर्तुर्भोक्तुर्विभिन्न एवाहम् ।
नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासङ्गपूर्णबोधात्मा ॥ ४९२ ॥

हूँ भिन्न न करूँ मैं भव कर्म । यथा द्रष्टा श्रोता नितकर्म ।।
वक्ता भोक्ता करें जो भूजन । प्रत्युत मैं तो ब्रह्म वेदन ।।
नित्य निरंतर निष्क्रिय महन । निःसीम असंग सर्व ज्ञानवन ।। ४९२)

भावार्थः (गुरु कृपा से अनुभव हुआ कि) मैं भिन्न हूँ। भव कर्म जैसे देखना, सुनना, नित कार्य करना, बोलना, भोग करना जो प्राणी करते हैं, मैं नहीं करता। प्रत्युत मैं तो ब्रह्म ज्ञानी, नित्य, निरंतर, निष्क्रिय, महात्मा, अपार, निर्लिप्त, एवं सम्पूर्ण ज्ञानी हूँ।

नाहमिदं नाहमदोऽप्युभयोरवभासकं परं शुद्धम् ।
बाह्याभ्यन्तरशून्यं पूर्णं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ४९३ ॥

न हूँ मैं स्थूल स्वरुप तन । और न ही सूक्ष्म निरूपन ।।
अपितु हूँ मैं स्वयं खद्योतन । इन दोनों सूक्ष्म स्थूल तन ।।
हूँ मैं शून्य बाह्य अंतःकरण । परब्रह्म पूर्ण शुद्ध विलक्षन ।। (४९३)

भावार्थः न मैं स्थूल शरीर हूँ और न ही सूक्ष्म रूप। अपितु मैं इन दोनों सूक्ष्म और स्थूल शरीर का स्वयं प्रकाशक हूँ। अंदर बाहर से शून्य, मैं पूर्ण, शुद्ध और अद्वितीय परब्रह्म हूँ।

निरुपममनादितत्त्वं त्वमहमिदमद इति कल्पनादूरम् ।
नित्यानन्दैकरसं सत्यं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ४९४ ॥

रहता मैं दूर अनादि तत्व । अनुपमेय 'तू और मैं' तत्व ।।
अपितु हूँ नित्यानंद वर्पन् । ब्रह्म अद्वितीय सत्य पावन ।। (४९४)

भावार्थ: मैं उपमा रहित 'तू और मैं' अनादि तत्वों से दूर रहता हूँ। अपितु नित्यानंद स्वरुप, अद्वितीय, सत्य, पवित्र ब्रह्म हूँ।

नारायणोऽहं नरकान्तकोऽहं पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः ।
अखण्डबोधोऽहमशेषसाक्षी निरीश्वरोऽहं निरहं च निर्ममः ॥ ४९५ ॥

हूँ मैं ही नरकासुर वधक । क्षीर समुद्रशायी भव जनक ।।
हूँ मैं वधक त्रिपुर दैत्य । ईश्वर परम पुरुष दैव्य ।।
साक्षी अखंड बोध वर्पन् । अबंधित स्वतंत्र स्व-संवेदन ।। (४९५)

भावार्थ: मैं ही नरकासुर का वध करने वाला क्षीर समुद्र में शयन करने वाला नारायण हूँ। त्रिपुर दैत्य का वध करने वाला मैं ईश्वर, दैवीय परम पुरुष हूँ। मैं साक्षी अखंड बोध स्वरुप, बंधन (ममता) रहित, स्वतंत्र और अहंता हूँ।

सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो ज्ञानात्मनान्तर्बहिराश्रयः सन् ।
भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वं यद्यत्पृथग्दृष्टमिदन्तया पुरा ॥ ४९६ ॥

देता आश्रय जन हेतु वेदन । हूँ स्थित अन्तः बाह्य भूजन ।।
देखे गए जो पदार्थ भिन्न । हेतु भव वृत्ति इस भुवन ।।
हूँ मैं उनका भोक्ता भोग्य । परब्रह्म पुरुष परम योग्य ।। (४९६)

भावार्थ: ज्ञान के द्वारा प्राणियों को आश्रय देता हूँ (अर्थात ज्ञान के द्वारा प्राणियों का उद्धार करता हूँ)। प्राणियों के अंदर बाहर स्थित हूँ। इस संसार में लौकिक वृत्ति के कारण जो भिन्न पदार्थ देखे गए हैं, मैं उनका भोक्ता और भोग्य परब्रह्म परम योग्य पुरुष हूँ।

मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात् ॥ ४९७ ॥

नाना तरंगे विश्व निरूपन । माया रूपी हेतु वेग पवन ।।
उठती होती रहतीं निमग्न । अखंड आनंद सागर मम मन ।। (४९७)

भावार्थ: मेरे अखंड सागर मन में विश्व स्वरुप नाना तरंगे माया रूपी वायु के वेग से उठती और विलीन होती रहतीं हैं।

स्थुलादिभावा मयि कल्पिता भ्रमाद् आरोपितानुस्फुरणेन लोकैः ।
काले यथा कल्पकवत्सराय-णर्त्वादयो निष्कलनिर्विकल्पे ॥ ४९८ ॥

निष्कल व् निर्विकल्प वादन । जैसे नहीं कोई विभाजन ।।
कल्प वर्ष ऋतु और अयन । हूँ मैं समान अभेदी महन ।।
कर कल्पना हेतु विस्मापन । हुआ था आरोपित मम मन ।।
भाव सूक्ष्म और स्थूल तन । पर मैं तो हूँ परमात्मन ।। (४९८)

भावार्थ: जैसे निष्कल (अखंड) और निर्विकल्प (अद्वय) काल में कोई विभाजन कल्प, वर्ष, ऋतु और अयन (उत्तरायण एवं दखिनायन) में नहीं होता, उसी प्रकार मैं अभेदी महात्मा हूँ (मैं भी विभाजन अथवा भेद नहीं करता)। माया के कारण कल्पना से मेरा मन सूक्ष्म भाव और स्थूल शरीर में आरोपित हुआ था, परन्तु मैं तो परम आत्मा हूँ।

आरोपितं नाश्रयदूषकं भवेत् कदापि मूढैरतिदोषदूषितैः ।
नार्द्रिकरोत्यूषरभूमिभागं मरीचिकावारि महाप्रवाहः ॥ ४९९ ॥

हेतु दोष बुद्धि अबोधजन । यद्यपि किए आरोपित मम मन ।।
पर नहीं हूँ मैं अपावन । नहीं कर सकें यह मुझे मलिन ।।
जैसे नहीं संभव समुन्दन । हेतु मृग तृष्णा जल स्यन्दन ।। (४९९)

भावार्थः दोष बुद्धि के कारण यद्यपि अज्ञानी प्राणियों ने मेरे मन को आरोपित किया है, पर मैं अपवित्र नहीं हूँ। यह मुझे दूषित नहीं कर सकते, जिस प्रकार मृग तृष्णा के कारण जल प्रवाह गीला नहीं कर सकता।

आकाशवल्लेपविदूरगोऽहं आदित्यवद्भास्यविलक्ष्यणोऽहम् ।
अहार्यवन्नित्यविनिश्चलोऽहं अम्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम् ॥ ५०० ॥

हूँ मैं निर्लेप समान गगन । प्रकाशित समान दिवाकरन ।।
निश्चल समान गिरि शृङ्खलन । अपार समान समुद्र गहन ।। (५००)

भावार्थः मैं आकाश के समान स्वच्छ हूँ। सूर्य के समान प्रकाशमान हूँ। पर्वत श्रृंखला के समान दृढ़ हूँ। गहरे समुद्र के समान अपार हूँ।

न मे देहेन संबन्धो मेघेनेव विहायसः ।
अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः ॥ ५०१ ॥

जैसे नहीं कोई समागम । मध्य परिसर गगन और घन ।।
सदृश नहीं सम्बन्ध मध्य । किंचित तन व् स्वयं मैं दिव्य ।।
अतैव सभी धर्म सलंग्न तन । सम जाग्रत सुषुप्ति स्वप्न ।।
है नहीं सम्बन्ध मम आत्मन । हूँ मैं स्थित एक संग भगवन ।। (५०१)

भावार्थः जैसे आकाश और मेघ परिसर के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है, उसी प्रकार किंचित 'दिव्य मैं स्वयं' (आत्मा) और शरीर के मध्य सम्बन्ध नहीं है। अतैव सभी कर्म जो शरीर से सम्बन्धित है जैसे जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, इनका संबंध मुझ ब्रह्म से नहीं है। मैं भगवान् से एक हो स्थित हूँ।

उपाधिरायाति स एव गच्छति स एव कर्माणि करोति भुङ्क्ते ।
स एव जीर्यन्म्रियते सदाहं कुलाद्रिवन्निश्चल एव संस्थितः ॥ ५०२ ॥

हेतु माया करे कर्म भूजन । फलवत भोगे दुःख सुख तन ।।
पश्चात जराश्रम पाए मरन । पर मैं हूँ सम गिरि निष्ठन ।। (५०२)

भावार्थः माया के कारण प्राणी कर्म करता है और शरीर उसके परिणाम स्वरुप सुख दुःख भोगता है। वृद्धावस्था के बाद मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु मैं पर्वत के समान दृढ़ हूँ।

न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्तिः सदैकरूपस्य निरंशकस्य ।
एकात्मको यो निविडो निरन्तरो व्योमेव पूर्णः स कथं नु चेष्टते ॥ ५०३ ॥

नहीं मेरी विषय प्रवृत्ति । नहीं किसी विषय निवृत्ति ।।
हों वह एकरस या निरवयव । चाहे पूर्ण अंग या अवयव ।।
हूँ मैं सम्पूर्ण सम गगन । जो निरंतर एकरूप सघन ।।
नहीं करूँ मैं प्रयास अन्य । पाऊँ बस ज्ञान ब्रह्म अजन्य ।। (५०३)

भावार्थः मेरी किसी विषय में न प्रवृत्ति है न निवृत्ति चाहे वह एकरस हों या निरवयव (अखंड),युक्त पूर्ण अंग अथवा भाग। मैं निरंतर एकरूप सघन आकाश समान सम्पूर्ण हूँ। मैं बस आदि ब्रह्म का ज्ञान पाऊँ, इसके अतिरिक्त कोई और प्रयास नहीं करता।

पुण्यानि पापानि निरिन्द्रियस्य निश्चेतसो निर्विकृतेर्निराकृतेः ।
कुतो ममाखण्डसुखानुभूतेः ब्रूते ह्यनन्वागतमित्यपि श्रुतिः ॥ ५०४ ॥

हूँ मैं अखंड आनंद वर्पन् । रहित पुण्य और पाप लक्षन ।।
रहित इन्द्रिय मन आकार । नहीं समाहित कोई विकार ।।
हूँ मैं रहित कर्म किंचित । कहे श्रुति उचित या अनुचित ।। (५०४)

भावार्थः मैं अखंड आनंद स्वरुप पाप और पुण्य लक्षण, मन, आकार और इन्द्रिय से रहित हूँ। मुझमें कोई अवगुण नहीं है। मैं श्रुति में कहे उचित या अनुचित किसी भी कर्म से रहित हूँ।

छायया स्पृष्टमुष्णं वा शीतं वा सुष्ठु दुःष्ठु वा ।
न स्पृशत्येव यत्किंचित्पुरुषं तद्विलक्ष्यणम् ॥ ५०५ ॥
न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः संस्पृशन्ति विलक्ष्यणम् ।
अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ ५०६ ॥

जैसे नहीं होता जन संवेदन । करें स्पर्श जब छाया भूजन ।।
वस्तु गर्म सर्द निंद्य सम्यक । अथवा कोई भी इनसे पृथक ।। (५०५)
या जैसे गृह जलता दीपक । करता प्रकाशित कोष्ठक ।।
पर नहीं बदलता जन धर्म । समान नहीं कर सके वशङ्गम ।।
चित्त जो विकारहीन पावन । सत्ता भौतिक तत्व हेतु तन ।। (५०६)

भावार्थ: जैसे प्राणी की छाया को सर्द, गर्म, उचित, अनुचित वस्तु अथवा कोई भी इनसे पृथक वस्तु स्पर्श करे तो कोई प्राणी को अनुभूति नहीं होती या घर में जलता दीपक कमरों को प्रकाशित करता है पर प्राणी का धर्म नहीं बदलता। उसी प्रकार आत्मा जो विकारहीन और पवित्र है उसको शरीर के द्वारा उत्पन्न भौतिक तत्व प्रभावित नहीं करते।

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वन्हेर्यथा दाहनियामकत्वम् ।
रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्गः तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥ ५०७ ॥

हैं रवि साक्षी कर्म भूजन । पिघलता लौह अग्नि दाहन ।।
समझें सर्प भ्रमवश रशन । सदृश मुझ में भाव दृश्वन् ।।
विषय कूटस्थ आत्मा चेतन । है यह सहज न हेतु कर्मन ।। (५०७)

भावार्थ: प्राणियों के कर्मों के साक्षी सूर्य हैं। लोहा अग्नि के दहकने से पिघलता है। भ्रमवश रस्सी को सर्प समझ लेते हैं। उसी प्रकार मुझ में अपरिवर्तनीय चेतन आत्मा के विषय का द्रष्टा भाव है। यह स्वाभाविक है, कर्म के कारण नहीं।

कर्तापि वा कारयितापि नाहं भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम् ।
द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं सोऽहं स्वयंज्योतिरनीदृगात्मा ॥ ५०८ ॥

हूँ मैं नहीं कर्ता न कारक । हूँ नहीं भोक्ता न क्लेषक ।।
न द्रष्टा और नहीं सूचक । हूँ मैं तो दैह्य स्व-द्योतक ।। (५०८)

भावार्थ: न मैं कर्ता हूँ, न कारक (कर्म करवाने वाला । न भोक्ता हूँ, न क्लेषक (क्लेश देने वाला)। न देखने वाला और न दिखाने वाला। मैं तो स्व-प्रकाशक आत्मा हूँ।

चलत्युपाधौ प्रतिबिम्बलौल्यम् अउपाधिकं मूढधियो नयन्ति ।
स्वबिम्बभूतं रविवद्विनिष्क्रियं कर्तास्मि भोक्तास्मि हतोऽस्मि हेति ॥ ५०९ ॥

देते दोष मायावश मूढ़जन । हुई उत्पन्न हेतु छाया तन ।।
कहें सूर्य उत्तरदायिन् । सद्दश भ्रमवश यह मुग्धिमन् ।।
कहते फिरते हैं वही कर्ता । और सभी कर्म फल भोक्ता ।। (५०९)

भावार्थः मायावश मूर्ख प्राणी शरीर से उत्पन्न हुई छाया के दोष का उत्तरदायी सूर्य को बताते हैं। इसी प्रकार मूर्ख प्राणी यह कहते फिरते हैं कि वही कर्ता हैं और सभी कर्म फल के भोक्ता हैं।

जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः ।
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥ ५१० ॥

घट जल नहीं सम्बंधित गगन । सद्दश नहीं धर्म सङ्गत तन ।।
चाहे करे निवास मध्य जल । अथवा करे निवास मध्य थल ।। (५१०)

भावार्थः घड़े के जल का सम्बन्ध आकाश से नहीं होता। उसी प्रकार शरीर का सम्बन्ध धर्म से नहीं होता, चाहे वह जल मध्य निवास करे अथवा थल मध्य।

कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तता जडत्वबद्धत्वविमुक्ततादयः ।
बुद्धेर्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुतः स्वस्मिन् परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये ॥ ५११ ॥

कर्ता भोक्ता दौर्जन्यपन । मुक्ति मत्तता जड़ता बंधन ।।
हैं यह सब कल्पना मन । नहीं सम्बन्ध दैह्य विलक्षन ।।
है जो निसर्गादि अगोचर । स्थित जो ब्रह्म आत्मा स्वकर ।। (५११)

भावार्थः कर्ता, भोक्ता, दुष्टतापन, मत्तता, जड़ता, मुक्ति, बंधन यह सब मन की कल्पना हैं। इनका संबंध अद्वितीय आत्मा से नहीं है जो प्रकृति से परे स्वात्मा ब्रह्म में स्थित है।

सन्तु विकाराः प्रकृतेर्दशधा शतधा सहस्रधा वापि ।
किं मेऽसङ्गचितस्तैर्न घनः क्वचिदम्बरं स्पृशति ॥ ५१२ ॥

हों कोटि विकार स्वरूपक । असम्बद्ध यह चित् असंग चेतक ।।
नहीं छू सके आत्मा अवगुन । जैसे छू नहीं सके मेघ गगन ।। (५१२)

भावार्थ: प्रकृति में कोटि विकार हों, पर विरक्त विवेकी आत्मा से यह सम्बंधित नहीं हैं (अर्थात सांसारिक विकार आत्मा को नहीं छूते)। आत्मा को अवगुण नहीं छू सकते जैसे मेघ आकाश को नहीं छू सकते।

अव्यक्तादिस्थूलपर्यन्तमेतत् विश्व यत्राभासमात्रं प्रतीतम् ।
व्योमप्रख्यं सूक्ष्ममाद्यन्तहीनं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१३ ॥

प्रकृति से पञ्चतत्व भुवन । है जो आभास मात्र भूजन ।।
अनाद्यन्त सूक्ष्म समान गगन । मैं वह अद्वैत ब्रह्म पावन ।। (५१३)

भावार्थ: विश्व में प्रकृति से पञ्चतत्व तक जो प्राणी का आभास मात्र है (अर्थात यह संसार जिसमें आभास मात्र प्रतीत होता है), आदि अंत से रहित, आकाश समान सूक्ष्म, वह मैं अद्वैत पवित्र ब्रह्म हूँ।

सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम् ।
नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१४ ॥

जो आधार सबका सर्वज्ञ । द्योतक वस्तु सब युक्त प्रज्ञ ।।
सर्वरूप असंग दृढ़ पावन । निर्विकल्प अद्वैत आत्मन ।।
हूँ मैं वही परब्रह्म दैह्य । अद्वितीय पावन और दैव्य ।। (५१४)

भावार्थ: जो सबका आधार, सर्व व्यापी, सब वस्तुओं का प्रकाशक, ज्ञान युक्त, सर्वरूप, असंग, निश्चल, पवित्र, निर्विकल्प, अद्वैत आत्मा है, मैं वही अद्वितीय, पावन, दैवीय परब्रह्म चेतन हूँ।

यत्प्रत्यस्ताशेषमायाविशेषं प्रत्यग्रूपं प्रत्ययागम्यमानम् ।
सत्यज्ञानानन्तमानन्दरूपं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१५ ॥

जो रहित सब भेद विस्मापन । अविषयी अंतरात्मा वर्पन् ।।
अनंत सच्चिदानंद निरूपन । हूँ मैं वही परब्रह्म चेतन ।। (५१५)

भावार्थ: जो सब माया के भेदों से रहित, अविषयी (लौकिक विषयों में अरुचि वाला), अंतरात्मा स्वरुप, अनंत, सच्चिदानंद रूप है, मैं वही परब्रह्म चेतन हूँ।

निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निष्कलोऽस्मि निराकृतिः ।
निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः ॥ ५१६ ॥

है जो रहित कृत्य विकार । रहित कला नित्य निराकार ।।
निर्विकल्प स्वतंत्र पावन । हूँ मैं वही परब्रह्म चेतन ।। (५१६)

भावार्थ: जो कृत्य रहित, विकार रहित, कला रहित, नित्य, निराकार, निर्विकल्प, स्वतंत्र, शुद्ध है, मैं वही परब्रह्म चेतन हूँ।

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः ।
केवलाक्षण्डबोधोऽहमानन्दोऽहं निरन्तरः ॥ ५१७ ॥

जो सर्वरूप सबका चेतन । सबसे परे विलक्षण पावन ।।
अखंड ज्ञान आनन्द निरूपन । हूँ मैं वही परब्रह्म चेतन ।। (५१७)

भावार्थ: जो सर्वरूप, सबका आत्मा, सबसे परे, अद्वितीय, पवित्र, अखंड ज्ञान और आनंद रूप है, मैं वही परब्रह्म चेतन हूँ।

स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिरेषा भवत्कृपाश्रीमहिमप्रसादात् ।
प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु ॥ ५१८ ॥

हुई यह मुझे महन अनुभूति । गुरु हेतु आपकी प्रीति ।।
यह स्वतंत्रता व् आधिपत्य । करूँ नमन कोटि कोटि दिव्य ।। (५१८)

भावार्थः गुरुदेव, आपकी कृपा से यह मुझे स्वतंत्रता और सर्वोच्चता की महान अनुभूति हुई है। हे दिव्य, आपको कोटि कोटि नमन करता हूँ।

महास्वप्ने मायाकृतजनिजरामृत्युगहने
भ्रमन्तं क्लिश्यन्तं बहुलतरतापैरनुदिनम् ।
अहंकारव्याघ्रव्यथित मिममत्यन्तकृपया
प्रबोध्य प्रस्वापात्परमवितवान्मामसि गुरो ॥ ५१९ ॥

भटक रहा था मैं विस्मापन । हेतु वृद्धावस्था जन्म मरन ।।
प्रति दिन रात भयंकर स्वप्न । होता संतप्त स्व-दुर्यतन ।।
जगाया आपने गुरु महन । सोया हुआ व्यथित कृपन ।।
सम व्याघ्र स्वरुप अवलेपन । की रक्षा आपने हे भगवन ।। (५१९)

भावार्थः मैं मायावश वृद्धावस्था, जन्म-मरण के कारण प्रति दिन रात विफल प्रयत्नों से संतप्त भयंकर स्वप्न में भटक रहा था। हे महात्मा गुरु, इस सोये हुए व्यथित कृपण को आपने व्याघ्र रूपी अहंकार से जगाया। हे भगवान्, आपने रक्षा की।

नमस्तस्मै सदैकस्मै कस्मैचिन्महसे नमः ।
यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते ॥ ५२० ॥

करूँ मैं कोटि कोटि नमन । हे गुरु हेतु आपके उज्ज्वलन ।।
हैं जो सत स्वरुप भाव एकन । समाये इस सम्पूर्ण भुवन ।। (५२०)

भावार्थः हे गुरु, आपके तेज के लिए मैं कोटि कोटि नमन करता हूँ। आप सत्य स्वरुप में एकीभाव से इस सम्पूर्ण विश्व में समाये हैं।

७२. उपदेश का उपसंहार

इति नतमवलोक्य शिष्यवर्यं मधिगतात्मसुखं प्रबुद्धतत्त्वम् ।
प्रमुदितहृदयं स देशिकेन्द्रः पुनरिदमाह वचः परं महात्मा ॥ ५२१ ॥

करते देख उत्तम शिष्य नमन । पाया जो आनंद आत्मन ।।
युक्त तत्व बोध रहित बंधन । सहर्ष बोले वचन गुरु महन ।। (५२१)

भावार्थ: उत्तम शिष्य को नमन करते देख जो बंधन रहित है, आत्म-आनंद और आत्म-बोध से युक्त है, महात्मा गुरु प्रसन्न हो कर वचन बोले।

ब्रह्मप्रत्ययसन्ततिर्जगदतो ब्रह्मैव तत्सर्वतः
पश्याध्यात्मदृशा प्रशान्तमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि ।
रूपादन्यदवेक्षितं किमभितश्चक्षुष्मतां दृश्यते
तद्वद्ब्रह्मविदः सतः किमपरं बुद्धेर्विहारास्पदम् ॥ ५२२ ॥

हे वत्स श्रेष्ठ कर शान्ति मन । हेतु आध्यात्मिक स्व-नयन ।।
देख ब्रह्ममय समस्त भुवन । है एक सत्य बस ब्रह्म पावन ।।
देख स्पष्ट चहुँ ओर परिगमन । नहीं कुछ परि ब्रह्म महन ।।
है सत्य केवल ब्रह्म निरूपन । हेतु ब्रह्मज्ञानी बुद्धिवन ।। (५२२)

भावार्थ: हे उत्तम वत्स, मन को शांत कर अपने आध्यात्मिक नेत्रों से समस्त संसार को ब्रह्ममय देख। पवित्र ब्रह्म ही बस एक सत्य है। चारों ओर परिसर में स्पष्ट महान ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं देख। ब्रह्मज्ञानी बुद्धिवान के लिए केवल ब्रह्म रूप ही सत्य है।

कस्तां परानन्दरसानुभूति मृत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान् ।
चन्द्रे महाल्हादिनि दीप्यमाने चित्रेन्दुमालोकयितुं क इच्छेत् ॥ ५२३ ॥

नहीं करो अन्य विषय रमन। हैं वह सब मिथ्या बुद्धिवन।।
करो पान परमानंद पावन। सम जब अग्रस्थ चंद्र द्योतन।।
क्यों देखें चित्रित वर्पन्। अतः करो केवल ब्रह्म चिन्तन।।(५२३)

भावार्थ: किसी अन्य विषयों (ब्रह्म के अतिरिक्त) में रमण नहीं करो। हे प्रमत, वह सब मिथ्या हैं। पवित्र परम आनंद का पान करो। जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकाशित चंद्र समक्ष समक्ष हों तो चित्रित रूप क्यों देखें? अतः केवल ब्रह्म का चिंतन करो।

असत्पदार्थानुभवेन किंचिन् न ह्यस्ति तृप्तिर्न च दुःखहानिः।
तदद्वयानन्दरसानुभूत्या तृप्तः सुखं तिष्ठ सदात्मनिष्ठया॥ ५२४॥

यदि करो असत्य वस्तु चिंतन। न हो तृप्ति न हों दूर खेदन।।
अतः पा अद्वय सुखमय पावन। हो तृप्त रहो स्थित सतात्मन।।(५२४)

भावार्थ: यदि असत वस्तु (ब्रह्म के अतिरिक्त सभी वस्तुएं असत्य हैं) का चिंतन करोगे तो न तृप्त होगे और न दुःख दूर होंगे। अतः आनंदमय पवित्र अद्वैत को पाकर तृप्त हो और सत्य ब्रह्म में स्थित रहो।

स्वमेव सर्वथा पश्यन्मन्यमानः स्वमद्वयम्।
स्वानन्दमनुभुञ्जानः कालं नय महामते॥ ५२५॥

देखो सब ओर स्वयं बुद्धिवन। हो तुम निःसंदेह विलक्षन।।
करते अनुभव आनंद दैह्य। करो व्यतीत समय तुम दिव्य।।(५२५)

भावार्थ: हे बुद्धिवान, सब ओर स्वयं को देखो (अर्थात स्वयं में ब्रह्म देखो)। तुम निःसंदेह अद्वितीय हो। हे दिव्य, आत्मानंद का अनुभव करते हुए समय व्यतीत करो।

अखण्डबोधात्मनि निर्विकल्पे विकल्पनं व्योम्नि पुरप्रकल्पनम्।
तदद्वयानन्दमयात्मना सदा शान्तिं परामेत्य भजस्व मौनम्॥ ५२६॥

है ब्रह्म अखंड बोध अभिन्न । नहीं कोई विकल्प बुद्धिवन ।।
जैसे नहीं नगर मध्य गगन । हो जाओ आत्म स्वरुप मग्न ।।
है जो आनंदमय विलक्षन । हेतु पा शान्ति हो निर्वचन ।। (५२६)

भावार्थ: ब्रह्म अखंड बोध निर्विकल्प है। हे बुद्धिवान, इसका कोई विकल्प नहीं है, जैसे आकाश के अंदर कोई नगर नहीं है। आत्म स्वरुप में मग्न हो जाओ जो आनंदमय, विलक्षण है। इस प्रकार (ब्रह्म में मग्न हो) शान्ति पा मौन हो जाओ।

तूष्णीमवस्था परमोपशान्तिः बुद्धेरसत्कल्पविकल्पहेतोः ।
ब्रह्मात्मन ब्रह्मविदो महात्मनो यत्राद्वयानन्दसुखं निरन्तरम् ॥ ५२७ ॥

रहते मौन हेतु विकल्प असत्य । ब्रह्मवेत्ता महात्मा दिव्य ।।
पाते परम शान्ति वह महन । करते पान रस अद्वय मोदन ।। ५२७)

भावार्थ: असत्य विकल्पों के प्रति (ब्रह्म के अतिरिक्त) ब्रह्मज्ञानी दिव्य महात्मा मौन रहते हैं (अतः ब्रह्म के अतिरिक्त वह किसी विकल्प का चिंतन नहीं करते)। वह महात्मा अद्वैत आनंद रस का पान करते हुए परम शांति प्राप्त करते हैं।

नास्ति निर्वासनान्मौनात्परं सुखकृदुत्तमम् ।
विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानन्दरसपायिनः ॥ ५२८ ॥

पाया जो आत्म बोध भूजन । कर लिया पान रस यह मोदन ।।
हो रहित वासना निर्वचन । पाता वह श्रेष्ठ सुखद जीवन ।। (५२८)

भावार्थ: जिसने आत्म बोध पा लिया, इस आनंद के रस का पान कर लिया, वह वासना रहित मौन हो श्रेष्ठ सुखदायक जीवन पाता है।

गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशञ्छयानो वान्यथापि वा ।
यथेच्छया वेसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ ५२९ ॥

है उचित कर्म हेतु बुद्धिवन । चलते फिरते जाग्रत शयन ।।
बैठते उठते या अन्य स्थिति । करे निरंतर ब्रह्म अनुभूति ।। (५२९)

भावार्थ: बुद्धिवान के लिए उचित कर्म है कि वह चलते, फिरते, जागते, सोते, बैठते, उठते या अन्य स्थिति में निरंतर ब्रह्म की अनुभूति करे।

न देशकालासनदिग्यमादि   लक्ष्याद्यपेक्षाप्रतिबद्धवृत्तेः ।
संसिद्धतत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति स्ववेदने का नियमाद्यवस्था ॥ ५३० ॥

हुआ नित्य आत्मरूप मग्न । हुआ सिद्ध आत्म तत्व जो जन ।।
नहीं महत्व हेतु उस महन । देश काल दिशा यम आसन ।।
नियम लक्ष्य आदि परायन । नहीं नितांत यह   हेतु बोधन ।। (५३०)

भावार्थ: जो प्राणी निरंतर आत्म स्वरुप में मग्न है, जिसको आत्म तत्व की सिद्धि हो गई है, उस महात्मा के लिए देश, काल, दिशा, यम, आसन, नियम, लक्ष्य आदि वस्तुओं का महत्व नहीं है। यह बोध (आत्म ज्ञान) के लिए आवश्यक नहीं हैं।

घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः कोऽन्ववेक्षते ।
विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन् सति पदार्थधीः ॥ ५३१ ॥

है यह नितांत हेतु घट बोधन । हो प्रमाण घट और रूषन ।।
नहीं अन्य   प्रमाण प्रयोजन । हैं यह पर्याप्त हे शिष्यजन ।। (५३१)

भावार्थ: 'यह घड़ा है' इस ज्ञान के लिए मिट्टी और घड़े के प्रमाण की आवश्यकता है। कोई और प्रमाण नहीं चाहिए। हे शिष्य, यह प्रमाण पर्याप्त हैं।

अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते ।
न देशं नापि कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ॥ ५३२ ॥

सदृश है आत्मा नित्य पावन । होती प्रतीत स्वतः अंतःकरन ।।
नहीं वांछित काल स्थापन । अथवा अन्य कोई निदर्शन ।। (५३२)

भावार्थः उसी प्रकार आत्मा नित्य और शुद्ध है, यह प्रतीति अन्तःकरण से होती है। इसके लिए कोई काल, स्थान अथवा कोई और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् ।
तद्वद्ब्रह्मविदोऽप्यस्य ब्रह्माहमिति वेदनम् ॥ ५३३ ॥

जैसे 'हूँ मैं वरदान भगवन' । होता यह ज्ञान हेतु स्व-मन ।।
सदृश 'हूँ मैं ब्रह्म' बोधन । होता स्वतः बोध ब्रह्म-विद्वन ।। (५३३)

भावार्थः जैसे 'मैं भगवान् का वरदान हूँ', यह ज्ञान स्वयं से होता है, उसी प्रकार 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान ब्रह्मज्ञानी को स्वतः होता है।

भानुनेव जगत्सर्वं भासते यस्य तेजसा ।
अनात्मकमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम् ॥ ५३४ ॥

होता जैसे दीपवत भुवन । हेतु केवल सूर्यदेव तपन ।।
सदृश करे जो अभिकाशत । असत स्वरूप वस्तु अप्रशस्त ।।
है नहीं वह कोई और महन । हूँ मैं स्वयं ज्ञानी-चेतन ।। (५३४)

भावार्थः जैसे केवल सूर्य के तेज से संसार प्रकाशित होता है, उसी प्रकार जो असत स्वरुप निरर्थक वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वह कोई और महात्मा नहीं, मैं स्वयं ब्रह्मज्ञानी हूँ ।

वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि ।
येनार्थवन्ति तं किन्नु विज्ञातारं प्रकाशयेत् ॥ ५३५ ॥

वेद शास्त्र पुराण भूजन । कर रहा सार्थक मैं चेतन ।।
हूँ मैं साक्षी सम भगवन । कर रहा प्रकाशित भुवन ।। (५३५)

भावार्थः वेद, शास्त्र, पुराण, प्राणी, इनको मैं ब्रह्म सार्थक कर रहा हूँ। मैं भगवान् के समान साक्षी हूँ । इस संसार को प्रकाशित कर रहा हूँ।

एष स्वयंज्योतिरनन्तशक्तिः आत्माप्रमेयः सकलानुभूतिः ।
यमेव विज्ञाय विमुक्तबन्धो जयत्ययं ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः ॥ ५३६ ॥

है स्वयं प्रकाशित पुरञ्जन । अनंत बल अप्रमेय सर्वस्वन ।।
जानकर ब्रह्मवेत्ता महन । होता धन्य रहित भव-बंधन ।। (५३६)

भावार्थ: आत्मा स्वयं प्रकाशित, अनंत शक्ति, अप्रमेय और सर्वस्व है। यह जानकर ब्रह्मज्ञानी महात्मा धन्य और लौकिक बंधनों से रहित होता है।

न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते न सज्जते नापि विरज्यते च ।
स्वस्मिन्सदा क्रीडति नन्दति स्वयं निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः ॥ ५३७ ॥

न हो सुखी दुःखी वह प्रमत । पा कर विषय भव समाहृत ।।
नहीं होता उनमें आसक्त । और नहीं वह उनसे विरक्त ।।
वह तो होता निरंतर तृप्त । करता क्रीड़ा स्वयं मुदित ।। (५३७)

भावार्थ: वह बुद्धिमान लौकिक विषयों की प्राप्ति पर न सुखी होता है, न दुःखी। न उनमें आसक्त होता है, और न ही वह उनसे विरक्त है। वह तो निरंतर संतुष्ट होता हुआ प्रसन्न मुद्रा से स्वयं में क्रीड़ा करता रहता है (अर्थात (स्वयं में मग्न रहता है)।

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनिः ।
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी ॥ ५३८ ॥

जैसे हो जाता बालक मग्न । पा खिलौना स्व-अनुरञ्जन ।।
भूल कर सम क्षुधा व्यथा तन । करता खेल हो जाता मग्न ।।
सदृश रहित दर्प विस्मापन । मुदित प्रमत करे ब्रह्म रमन ।। (५३८)

भावार्थ: जैसे बालक मन पसंद खिलौना पाने पर मग्न हो जाता है, भूख समान शरीर की व्यथा को भूल कर मग्न हो खेलता है, उसी प्रकार अहंकार और माया से रहित प्रसन्न विद्वान ब्रह्म में रमण करता है।

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्षमशनं पानं सरिद्वारिषु
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने ।
वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही
संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥ ५३९ ॥

होता रहित चिंता दीनता । ज्ञानी भूजन ब्रह्मवेत्ता ।।
करता वह भोजन भिक्षा अन्न । करे केवल नदी जल ग्रहन ।।
होता वह स्वतंत्र मन मग्न । अभयी करे अपि श्मशान शयन ।।
न करे चिंता वह दशा वसन । शय्या उसकी रहती भुवन ।।
रहता वेदांत पथ सदा रमण । प्राप्ति ब्रह्म उसका परायण ।। (५३९)

भावार्थः ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी प्राणी चिंता और दीनता से रहित होता है। वह भिक्षा के अन्न का भोजन और केवल नदी का जल ग्रहण करता है। वह स्वतंत्र और मन मौजी होता है। भय से रहित वह श्मशान में भी सो जाता है। वह वस्त्र की दशा (नए, पुराने, फटे, धुले, न धुले आदि) की चिंता नहीं करता। पृथ्वी ही उसका बिछौना रहता है। सदा वेदांत मार्ग पर चलता है और ब्रह्म प्राप्ति के लिए तत्पर रहता है।

विमानमालम्ब्य शरीरमेतद् भुनक्त्यशेषान्विषयानुपस्थितान् ।
परेच्छया बालवदात्मवेत्ता योऽव्यक्तलिङ्गोऽननुषक्तबाह्यः ॥ ५४० ॥

बैठ इस विमान रूपी तन । वह शुद्ध आत्मज्ञानी महन ।।
होता प्रतीत भोगे विषय । समान बालक अनघ अनिंद्य ।।
पर तत्वत वस्तु आसक्ति रहित । है वह शुद्ध लांछन रहित ।। (५४०)

भावार्थः इस विमान रूपी शरीर में बैठ वह शुद्ध आत्मज्ञानी महापुरुष पाप रहित अबोध बालक के समान विषय भोगता प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में वह विषयों से आसक्ति रहित शुद्ध निष्कलंक है।

दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा त्वगम्बरो वापि चिदम्बरस्थः ।
उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम् ॥ ५४१ ॥

वह युक्त वस्त्र रूप चेतन । हो रहित वस्त्र कभी उपेतन ।।
करे कभी मृग चर्म धारण । उन्मत्त सम बाल करे विचरण ।।
स्वेच्छा समस्त मंडल भुवन । सम पिशाच आदि सूक्ष्म तन ।। (५४१)

भावार्थ: चैतन्य रूप वस्त्र से युक्त वह कभी वस्त्र रहित, कभी युक्त, कभी मृग चर्म धारण करता है। वह बालक के समान उन्मत्त, पिशाच आदि सूक्ष्म शरीर की भांति समस्त भू मण्डल में स्वेच्छा से विचरण करता है।

कामान्निष्कामरूपी संश्चरत्येकचारो मुनिः ।
स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः ॥ ५४२ ॥

रह स्वयं स्थित भाव सर्वात्म । रहता संतुष्ट सदैव स्वात्म ।।
करता विचरण मुनि विजन । कर धारण रूप वह स्व-मन्मन् ।।
इच्छानुसार कर अन्न ग्रहण । करे अनुभूति ब्रह्म भ्रमण ।। (५४२)

भावार्थ: सर्वात्म भाव में स्वयं को स्थित कर वह अपनी आत्मा में संतुष्ट रहता है (अर्थात प्रत्येक दशा में संतुष्ट रहता है)। अपनी इच्छा से रूप धारण कर वह मुनि अकेला विचरण करता है। अपनी इच्छानुसार अन्न ग्रहण कर वह ब्रह्म अनुभूति में भ्रमण करता है (अर्थात उसके हृदय में ब्रह्म समाहित रहते हैं)।

क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराजविभवः
क्वचिद्भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ।
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदितः
चरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः ॥ ५४३ ॥

ब्रह्मवेत्ता के कई वर्पन् । वह कहीं मूढ़ कहीं विद्वन ।।
कहीं सम्राट कहीं निर्धन । कहीं शांत कहीं विक्षुब्धन ।।
कहीं पड़ा निश्चल सम अजगर । कहीं करे भ्रमण वैश्वानर ।।
कहीं दिखे होता सम्मानित । कहीं दिखे होता अपमानित ।।
कहीं रहकर अज्ञात स्थापन । हो अदृश्य करे वह भ्रमन ।।
पर रहता निरंतर वह मग्न । परम आनंद ब्रह्म निरूपन ।। (५४३)

भावार्थ: ब्रह्म-ज्ञानी के कई रूप हैं। वह कहीं मूर्ख, कहीं विद्वान, कहीं सम्राट, कहीं निर्धन, कहीं शांत, कहीं विक्षुब्ध, कहीं अजगर समान निश्चल पड़ा हुआ, कहीं विश्व भ्रमण करता हुआ, कहीं सम्मानित होता हुआ, कहीं अपमानित होता हुआ, कहीं अज्ञात स्थान पर रहकर अदृश्य हो भ्रमण करता हुआ, दिखता है। परन्तु वह निरन्तर परम आनंद ब्रह्म स्वरुप में मग्न रहता है।

निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ।
नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ॥ ५४४ ॥

है सदा संतुष्ट अपि निर्धन । दिखता अबल पर बली महन ।।
वह करे अथवा न करे भोजन । रहे निरन्तर तृप्त मुनिजन ।।
यद्यपि रहे वह विषम भाव । पर होता हिय समदर्शी भाव ।। (५४४)

भावार्थ: यदि निर्धन है, पर सदैव संतुष्ट है। असहाय दिखता है, परन्तु महान बलशाली है। भोजन करे अथवा नहीं, वह मुनि निरन्तर तृप्त रहता है। यद्यपि विषम भाव में रहे (ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह विषम भाव में है) परन्तु हृदय में वह समदर्शी है।

अपि कुर्वन्नकुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ।
शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ॥ ५४५ ॥

यद्यपि करता हर कर्म महन । पर यथार्थित अकर्ता जन ।।
भोगता फल नाना प्रकार । पर है अभोक्ता निर्विकार ।।
है अशरीरी यद्यपि युक्त तन । है सर्वज्ञ यद्यपि परिछिन्न ।। (५४५)

भावार्थ: यद्यपि वह महात्मा प्रत्येक कर्म करता है, पर सत्य में अकर्ता है। नाना प्रकार के फल भोगता है, पर निर्विकार अभोक्ता है। यद्यपि तन है, पर अशरीरी है। यद्यपि चिह्नित है, परन्तु सर्व व्यापी है (अर्थात प्रतीत होता है कि वह एक स्थान पर है, परन्तु वह सर्वज्ञ है)।

अशरीरं सदा सन्तमिमं ब्रह्मविदं क्वचित् ।
प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे ॥ ५४६ ॥

रहता चूँकि स्थित रहित तन । नहीं छूतीं उस ब्रह्म-वेदन ।।
वस्तु अप्रिय और मृदुमय । अथवा अमंगल और मंगलमय ।। (५४६)

भावार्थ: चूँकि ब्रह्मवेदी अशरीरी है, अतः उसे प्रिय और अप्रिय, शुभ और अशुभ वस्तुएं स्पर्श नहीं करतीं।

स्थूलादिसंबन्धवतोऽभिमानिनः सुखं च दुःखं च शुभाशुभे च ।
विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुनेः कुतः शुभं वाप्यशुभं फलं वा ॥ ५४७ ॥

होता सम्बन्ध जिस भी भूजन । स्थूल सूक्ष्म रूप आदि तन ।।
भोगता वह दुःख सुख फल जन । शुभ अशुभ आदि स्व-कृत्यन ।।
टूट गया जिस मुनि भव-बंधन । कैसे हो प्राप्ति फल कर्मन् ।। (५४७)

भावार्थ: जिस भी प्राणी का स्थूल, सूक्ष्म आदि शरीर से सम्बन्ध होता है, वह अपने शुभ, अशुभ कर्मों के फल स्वरुप सुख, दुःख भोगता है। जिस मुनि का लौकिक बंधन टूट गया, उसे कर्मों के फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः ।
ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्यां ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्ष्यणम् ॥ ५४८ ॥
तद्वद्देहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् ।
पश्यन्ति देहिवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात् ॥ ५४९ ॥

अविदित जैसे यथार्थ सत्य । यद्यपि अग्रस्त राहु आदित्य ।।
पर भ्रमवश लगे ग्रस्त भूजन । किया राहु ग्रस्त प्रतिदिवन् ।। (५४८)
सदृश हेतु ब्रह्मज्ञानी जन । यद्यपि है आभास मात्र तन ।।
पर समझें मूढ़ उसे युक्त तन । है सत्य ब्रह्मवेत्ता अकायन ।। (५४९)

भावार्थ: वास्तविक सत्य से अनभिज्ञ प्राणी को यद्यपि सूर्य को राहु ने ग्रस्त नहीं किया है, पर भ्रमवश लगता है कि सूर्य को राहु ने ग्रस्त कर लिया है, उसी प्रकार यद्यपि ब्रह्मज्ञानी पुरुष के लिए शरीर आभास मात्र है, पर मूर्ख उन्हें शरीर युक्त समझते हैं। यथार्थ में ब्रह्मवेत्ता तन-रहित हैं।

अहिर्निर्ल्वयनीं वायं मुक्त्वा देहं तु तिष्ठति ।
इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किंचित्प्राणवायुना ॥ ५५० ॥

समान काँचुली विषानन । होता चलायमान मुनि तन ।।
इधर उधर हेतु प्राण पवन । पर है सत्य रहता अक्रिय तन ।। (५५०)

भावार्थः सर्प की काँचुली के समान मुनि का शरीर प्राण वायु के कारण इधर उधर चलायमान होता ही, परन्तु यथार्थ में शरीर अक्रिय रहता है।

स्त्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् ।
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु ॥ ५५१ ॥

प्रवाह सरित जल करे चलन । काष्ठ खंड स्थान उच्च अधस्तन ।।
सदृश भोगे ब्रह्मवेत्ता तन । फल सामयिक यथेष्ट भगवन ।। (५५१)

भावार्थः नदी का जल प्रवाह लकड़ी के टुकड़े को ऊंचा नीचा चलाता है, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता का शरीर प्रभु की इच्छा के अनुसार समायनुकूल फल भोगता है।

प्रारब्धकर्मपरिकल्पित वासनाभिः
संसाररिवच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेहः ।
सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं
चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्पशून्यः ॥ ५५२ ॥

यद्यपि भोगता फल मुक्त जन । हेतु प्रारब्ध कर्म सम भूजन ।।
पर रहता सिद्ध स्थिर निर्वचन । रहित संकल्प विकल्प भुवन ।।
भाव साक्षी और निर्विकार । समान मूल चक्र कुम्हार ।। (५५२)

भावार्थः यद्यपि मुक्त प्राणी सामान्य प्राणी के समान प्रारब्ध कर्म के फल भोगता है, परन्तु सिद्ध विश्व में संकल्प विकल्प से रहित, स्थिर, मौन, निर्विकार और साक्षी भाव से रहता है, जैसे कुम्हार के चक्र का केंद्र।

नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुङ्क्त एष
नैवापयुङ्क्त उपदर्शनलक्ष्यणस्थः ।
नैव क्रियाफलमपीषदवेक्षते स स्वा
नन्दसान्द्ररसपान सुमत्तचित्तः ॥ ५५३ ॥

हो उन्मत्त रस आत्मानंदघन । रहता अविषय आत्मवेद जन ।।
हो प्रत्यक्षदर्शी वह महन । नहीं देखता ओर फल कर्मन ।। (५५३)

भावार्थ: आत्मानंदघन के रस में उन्मत्त आत्मवेत्ता प्राणी विषयों से रहित होता है। वह महात्मा प्रत्यक्ष साक्षी होता है (अर्थात विश्व में होती हुई घटनाओं का साक्षी होता है)। वह फल कर्म की ओर नहीं देखता (अर्थात कर्म फल के लिए नहीं अपितु कर्तव्य की भांति करता है)।

लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ।
शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः ॥ ५५४ ॥

त्याग लक्ष्य अलक्ष्य भाव जन । रहता स्थित आत्म निरूपन ।।
है वह ब्रह्मवेत्ता प्रगुण्य । समान स्वयं महादेव सगुण्य ।। (५५४)

भावार्थ: जो प्राणी लक्ष्य और अलक्ष्य का भाव त्याग कर आत्मस्वरूप में स्थित रहता है, वह ब्रह्मवेत्ता सभी गुणों से युक्त शिव के समान श्रेष्ठ है।

जीवेन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ।
उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ॥ ५५५ ॥

समझो उस ब्रह्मज्ञानी महन । तृप्त और सदा मुक्त बंधन ।।
कर नष्ट भाव स्वरुप स्व-तन । रहता स्थित ब्रह्म विलक्षन ।। (५५५)

भावार्थ: उस महात्मा ब्रह्मज्ञानी को संतुष्ट और बंधनों से सदैव मुक्त समझो। अपने शरीर स्वरुप के भाव को नष्ट कर वह अद्वितीय ब्रह्म में स्थित रहता है।

शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ।
तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः ॥ ५५६ ॥

नट काल खेल हो प्रकट भिन्न । धार वेश विन्यास विलक्षन ।।
पर यथार्थ में है वह भूजन । सम रहता ब्रह्म-ज्ञानी जन ।।
मग्न ब्रह्म हो युक्त नियमन । अथवा मुक्त उपाधि बंधन ।। (५५६)

भावार्थः खेल के समय नट विचित्र वेश-भूषा धारण कर भिन्न दिखाई देता है, परन्तु सत्यता में वह पुरुष है। उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता प्राणी उपाधि युक्त हो अथवा उपाधि बंधन से मुक्त, वह सदैव ब्रह्म में मग्न रहता है।

यत्र क्वापि विशीर्णं सत्पर्णमिव तरोर्वपुः पतनात् ।
ब्रह्मीभूतस्य यतेः प्रागेव हि तच्चिदग्निना दग्धम् ॥ ५५७ ॥

सम शुष्क पत्र गिरे सर्वत्र । गिरे तन ब्रह्मी कुत्र यत्र ।।
रहता वह दग्ध सदैव चेतन । निर्विकार निरंतर पावन ।। (५५७)

भावार्थः प्रत्येक स्थान पर गिरे हुए सूखे हुए पत्तों के समान ब्रह्मवेत्ता का शरीर कहीं भी गिरे, वह निर्विकार, निरंतर शुद्ध चेतन में दग्ध रहता है।

सदात्मनि ब्रह्मणि तिष्ठतो मुनेः पूर्णाद्वयानन्दमयात्मना सदा ।
न देशकालाद्युचितप्रतीक्षत्वङ्मांसविट्पिण्डविसर्जनाय ॥ ५५८ ॥

हेतु स्थित सत आनंद वर्पन् । सदैव परिपूर्ण विलक्षन ।।
मुनि जो लीन ब्रह्म पावन । नहीं आवश्यक हेतु त्यजन ।।
कोई योग्य काल स्थापन । पिंड मल मूत्र मिष चर्मन् ।। (५५८)

भावार्थः मुनि जो सतानंद स्वरुप, सदैव परिपूर्ण अद्वितीय पवित्र ब्रह्म में लीन है, उसके लिए मल मूत्र पिंड, मांस, त्वचा का त्याग करने के लिए कोई योग्य स्थान, काल की आवश्यकता नहीं है।

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः ।
अविद्यादयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः ॥ ५५९ ॥

हो जब नष्ट हृदय निर्बोधन । पाता भूजन तब निर्मोचन ।।
अतः त्याग कमंडल दंड तन । नहीं हेतु मोक्ष शिष्यजन ।। (५५९)

भावार्थः जब हृदय में अज्ञान नष्ट होता है तब प्राणी मोक्ष पाता है। हे शिष्य, कमण्डल, दंड और शरीर का त्याग मोक्ष का कारण नहीं हैं।

कुल्यायामथ नद्यां वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे ।
पर्णं पतति चेतनं तरोः किं नु शुभाशुभम् ॥ ५६० ॥

शुष्क पत्र गिरे यत्र सर्वत्र । नदी नाला मंदिर या अन्यत्र ।।
नहीं हो हानि कोई अगम । सम रहे अव्यय जन लीन ब्रह्म ।। (५६०)

भावार्थः सूखा पत्ता नदी, नाला, मंदिर या कहीं गिरे, वृक्ष को कोई हानि नहीं होती। उसी प्रकार ब्रह्म में लीन प्राणी अव्यय (बिना किसे हानि) रहता है।

पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशवद् देहेन्द्रियप्राणधियां विनाशः ।
नैवात्मनः स्वस्य सदात्मकस्यानन्दाकृतेर्वृक्षवदस्ति चैषः ॥ ५६१ ॥

समान पत्र पुष्प फल अगम । होते नष्ट इन्द्रिय प्राण तन ।।
बुद्धि आदि सम्बंधित भूजन । नहीं होता नष्ट कभी चेतन ।।
रहती वह सम वृक्ष सद्मन् । है रूप सदानंद सनातन ।। (५६१)

भावार्थः वृक्ष के पत्ते, फूल, फल के समान प्राणी से सम्बंधित इन्द्रियाँ, प्राण, शरीर. बुद्धि आदि नष्ट होते हैं। आत्मा कभी नष्ट नहीं होती। वह वृक्ष के समान द्दढ़ रहती है। वह सनातन और सदानंद स्वरुप है।

प्रज्ञानघन इत्यात्मलक्ष्यणं सत्यसूचकम् ।
अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयन्ति विनाशनम् ॥ ५६२ ॥

है दैह्य चिन्ह सत्य प्रज्ञाघन । करें यह सब विद्वन् वर्णन ।।
ब्रह्मवेत्ता पा ब्रह्म वेदन । करते नष्ट स्व-कल्पित बंधन ।। (५६२)

भावार्थ: आत्मा सत्य सूचक ज्ञान भण्डार है, ऐसा सब विद्वान कहते हैं। ब्रह्म ज्ञान पा कर ब्रह्मवेत्ता अपने कल्पित बंधनों का विनाश करते हैं।

अविनाशी वा अरेऽयमात्मेति श्रुतिरात्मनः ।
प्रब्रवीत्यविनाशित्वं विनश्यत्सु विकारिषु ॥ ५६३ ॥

है यह आत्मा अविनाशिन् । करती श्रुति यह प्रतिपादन ।।
होता विनाश विकारी तन । पर है आत्मा अमर पुरातन ।। (५६३)

भावार्थ: यह आत्मा अविनाशी है, ऐसा श्रुति अनुमोदन करती है। विकारी शरीर का विनाश होता है, परन्तु आत्मा आदि और अमर है।

पाषाणवृक्षतृणधान्य कटाम्बराद्या
दग्धा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव ।
देहेन्द्रियासुमनआदि समस्तदृश्यं
ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्मभावम् ॥ ५६४ ॥

हो जाते भस्म हेतु अग्नि वसन । पत्थर वृक्ष तृण भूसा अन्न ।।
सदृश हेतु ज्ञानाग्नि ज्वलन । इन्द्रिय प्राण तन और मन ।।
हो जाते परमात्म निरूपन । करे तब प्राप्त ब्रह्म भूजन ।। (५६४)

भावार्थ: अग्नि की ज्वाला में पत्थर, वृक्ष, तृण, भूसा, अन्न भस्म हो जाते हैं। उसी प्रकार ज्ञानाग्नि की ज्वाला में इन्द्रिय, प्राण, तन और मन परमात्म स्वरुप हो जाते हैं। तब प्राणी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

विलक्ष्यणं तता ध्वान्तं लीयते भानुतेजसि ।
तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥ ५६५ ॥

जब हो उदय प्रकाश द्युवन् । होता नाश अन्धकार तत्क्षन ।।
सदृश होते लीन आत्मन । भव भ्रम हो जब अवबोधन ।। (५६५)

भावार्थ: जब सूर्य का प्रकाश उदय होता है तो उसी क्षण अंधकार का विनाश हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञानोदय होने पर सांसारिक भ्रम ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

घटे नष्टे तथा व्योम व्योमैव भवति स्फुटम् ।
तथैवोपाधिविसये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ५६६ ॥

जब हो जाते घट दूर गगन । हो जाता निर्मल विमल गगन ।।
सम होते जब दूर विकार मन । पाता ब्रह्मत्व ब्रह्म-विद्वन ।। (५६६)

भावार्थ: जब आकाश से बादल छट जाते हैं तब आकाश निर्मल और स्पष्ट हो जाता है। उसी प्रकार जब मन के विकार दूर हो जाते हैं, तब ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म पा लेता है।

क्षीरं क्षीर यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ।
संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥ ५६७ ॥

जैसे हो जाते सम एक द्रव्य । मिल दुग्ध संग दुग्ध सरद्रव्य ।।
तेल संग तेल और जल संग जल । सदृश हो लीन दैह्य विमल ।।
हो जाते स्वात्म निरूपन । आत्मज्ञानी मुनिजन महन ।। (५६७)

भावार्थ: जैसे द्रव दूध के साथ मिलकर दूध, तेल के साथ मिलकर तेल, जल के साथ मिलकर जल, एक पदार्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार पावन आत्मा में लीन होकर महात्मा ज्ञानी मुनिजन स्वात्म-स्वरुप हो जाते हैं (अर्थात अपनी आत्मा का अनुभव कर लेते हैं, ब्रह्म को पा लेते हैं)।

एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् ।
ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यतिर्नावर्तते पुनः ॥ ५६८ ॥

होना स्थित अखंड अस्तित्व । समझो स्थिति स्वतंत्र तत्व ।।
होता मुक्त जो इस भांति जन । नहीं पड़ता वह चक्र भुवन ।। (५६८)

भावार्थ: अखंड सत्ता में स्थित होने को तत्वों (विषयों) से स्वतंत्र स्थिति समझो। इस प्रकार जो प्राणी मुक्त हो जाता है वह सांसारिक चक्रों में नहीं पड़ता।

सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्ष्मणः ।
अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद्ब्रह्मणः कुत उद्भवः ॥ ५६९ ॥

एकत्व ज्ञान ब्रह्म और चेतन । कर दग्ध अज्ञान अग्नि बोधन ।।
हो जाता वह निरूपण ब्रह्म । नहीं लेता वह फिर पुनर्जन्म ।। (५६९)

भावार्थ: ब्रह्म और आत्मा के एकत्व ज्ञान की ज्ञानाग्नि से अज्ञान को भस्म कर वह ब्रह्म स्वरुप की प्राप्ति करता है। फिर वह पुनर्जन्म नहीं लेता।

मयाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः ।
यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ ॥ ५७० ॥

हैं हेतु माया मोक्ष व् बंधन । नहीं वस्तुतः स्थित यह चेतन ।।
जैसे हो जाती यह प्रतीति । सर्प प्रति पाश हेतु भ्रान्ति ।। (५७०)

भावार्थ: माया के कारण मोक्ष और बंधन हैं। वास्तविकता में यह आत्मा में स्थित नहीं हैं। जैसे भ्रमवश रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है (अर्थात आत्मा को भ्रमवश मोक्ष और बंधन का हेतु समझ लिया जाता है)।

आवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ।
नावृतिर्ब्रह्मणः काचिदन्याबावादनावृतम् ।
यद्यस्त्यद्वैतहानिः स्याद्द्वैतं नो सहते श्रुतिः ॥ ५७१ ॥

हेतु अस्तित्व अज्ञान आवरन । पड़ता लौकिक बंधन भूजन ।।
पर हो जब नष्ट यह शक्ति । हो शुद्ध पाए भव निवृत्ति ।।
नहीं होता कोई कवच ब्रह्म । यथः नहीं कुछ अन्यत्र ब्रह्म ।।
अतः समझो उसे अनावृत । यदि मानो ब्रह्म युक्त आवृत ।।
नहीं हो सकता सिद्ध अद्वैत । और नहीं मान श्रुति द्वैत ।। (५७१)

भावार्थ: अज्ञान आवरण के अस्तित्व के कारण प्राणी सांसारिक बंधनों में पड़ता है। जब यह शक्ति नष्ट हो जाती है (अज्ञान आवरण नष्ट हो जाता है), तब शुद्ध हो संसार से निवृत्ति मिल जाती है (अर्थात मोक्ष प्राप्ति हो जाती है)। ब्रह्म का कोई कवच (आवरण) नहीं होता, क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अतः उसे अनावृत समझो। यदि ब्रह्म को आवृत युक्त मानो, तो अद्वैत (सिद्धांत) सिद्ध नहीं हो सकता और श्रुति को द्वैत मान नहीं है।

बन्धं च मोक्षं च मृषैव मूढा बुद्धेर्गुणं वस्तुनि कल्पयन्ति ।
दूगावृतिं मेघकृतां यथा रवो यतोऽद्वयासङ्गचिदेकमक्षरम् ॥ ५७२ ॥

हैं गुण बुद्धि द्वि मोक्ष बंधन । जैसे जब ढक लेता घट द्युवन् ।।
कहें छिपा सूर्य मध्य गगन । पर है यह दोष दृष्टि नयन ।।
समान करें व्यर्थ सम्भावन । मूढ़ दैह्य मध्य मोक्ष बंधन ।।
पर ब्रह्म सदा असंग विलक्षन । एकल अविनाशी रूप चेतन ।। (५७२)

भावार्थ: दोनों मोक्ष और बंधन बुद्धि के गुण हैं। जैसे जब बादल सूर्य को ढक लेते हैं तो नेत्रों की दोष दृष्टि के कारण सूर्य को आकाश में छिपा कहते हैं। उसी प्रकार मूढ़ व्यक्ति मोक्ष और बंधन की कल्पना व्यर्थ में आत्मा में करते हैं। परन्तु ब्रह्म तो सदैव असंग (निर्लिप्त), अद्वितीय, एक, अविनाशी और चैतन्य स्वरुप है।

अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि ।
बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः ॥ ५७३ ॥

अस्तित्व अथवा नास्ति विषय । है ज्ञान गुण बुद्धि हे दिव्य ।।
नहीं हेतु नित्य वस्तु आत्मा । समझो भली भांति महात्मा ।। (५७३)

भावार्थः हे दिव्य, किसी वस्तु का होना या न होना, यह ज्ञान बुद्धि का गुण है। नित्य वस्तु आत्मा के कारण नहीं, हे महात्मा, इसे भली भांति समझो।

अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि ।
निष्कले निष्क्रये शान्ते निरवद्ये निरंजने ।
अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ५७४ ॥

मानें मूढ़ हेतु विस्मापन । बंधन और मोक्ष मध्य चेतन ।।
समझो इसे कल्पना महन । क्योंकि है परम तत्व विलक्षन ।।
अखंड निष्क्रिय शम निरंजन । निर्मल पावन समान गगन ।। (५७४)

भावार्थः बंधन और मुक्ति आत्मा में हैं, यह माया के कारण मूर्ख मानते हैं। हे महात्मा, इसे कल्पना समझो। क्योंकि परम तत्व आकाश के समान अद्वितीय, अखंड, निष्क्रिय, शांत, निरंजन, निर्मल और पावन है।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ५७५ ॥

अतः यथार्थ मानो हे महन । हो न नाश न उत्पत्ति न बन्धन ।।
है न कोई मुमुक्ष न साधक । न मुक्त न बंधित हे प्रायक ।। (५७५)

भावार्थः हे महात्मा, यह सत्य मानो कि न किसी का नाश होता है, न उत्पत्ति, न बन्धन। न कोई मुमुक्ष है (मोक्ष की इच्छा रखने वाला) और न कोई साधक। हे स्नेही, न कोई मुक्त है, न बंधित।

सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धान्तरूपं
परमिदमतिगुह्यं दर्शितं ते मयाद्य ।
अपगतकलिदोषं कामनिर्मुक्तबुद्धिं
स्वसुतवदसकृत्त्वां भावयित्वा मुमुक्षुम् ॥ ५७६ ॥

तुम रहित दोष कलि शिष्यजन । मुमुक्ष शून्य काम भावन ।।
अतः समझ सम सुत कहे वचन । मम सार श्रेष्ठ ग्रन्थ पावन ।।
गुह्य अत्यंत सिद्धांत महन । बार बार समक्ष तुम प्रियजन ।। (५७६)

भावार्थ: तुम कलि के दोष से रहित, मुमुक्ष, इच्छा रहित शिष्य हो। अतः हे प्रिय, पुत्र समान समझ मैंने तुम्हारे समक्ष बार बार श्रेष्ठ पवित्र शास्त्र का सार बताया जो अत्यंत गुह्य और महान सिद्धांत है।

७३. शिष्य की विदाई

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः ।
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्तबन्धनः ॥ ५७७ ॥

सुन यह अति प्रिय गुरु वचन । किए शिष्यजन शिष्टतः नमन ।।
हो मुक्त तब लौकिक बंधन । पा गुरु आज्ञा गया स्व-सदन ।। (५७७)

भावार्थ: गुरु के अति प्रिय वचन सुनकर, शिष्य ने नम्रता पूर्वक प्रणाम किया। तब वह सांसारिक बंधनों से मुक्त हो, गुरु की आज्ञा ले अपने घर चला गया।

गुरुरेवं सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः ।
पावयन्वसुधां सर्वां विचचार निरन्तरम् ॥ ५७८ ॥

हो मग्न सच्चिदानंद सागर । करते शुद्ध पृथ्वी निरंतर ।।
करने लगे गुरुदेव विचरन । धर हृदय नाम श्री भगवन ।। (५७८)

भावार्थ: सच्चिदानंद सागर में मग्न, पृथ्वी को निरंतर शुद्ध करते हुए, प्रभु का नाम हृदय में धारण कर गुरुदेव तब विचरण करने लगे।

७४. अनुबंध चतुष्टय

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्ष्यणम् ।
निरूपितं मुमुक्षाणां सुखबोधोपपत्तये ॥ ५७९ ॥

मध्य गुरु शिष्य यह सम्भाषन । हेतु मुमुक्ष पा सकें मोचन ।।
किए यह आत्मज्ञान निरूपन । हो ताकि सुगम ब्रह्म बोधन ।। (५७९)

भावार्थ: मुमुक्ष मोक्ष पा सकें इस हेतु यह गुरु और शिष्य के मध्य संवाद है। आत्मज्ञान की यहां विवेचना की गई है ताकि ब्रह्म ज्ञान सुलभ हो।

हितमिममुपदेशमाद्रियन्तां विहितनिरस्तचित्तदोषाः ।
भवसुखविरताः प्रशान्तचित्ताः श्रुतिरसिके यतयो मुमुक्षवो ये ॥ ५८० ॥

हुए नष्ट जिनके मन दुरित । करें श्रवण वेदांत विहित ।।
हैं जो मुमुक्ष शांत चित्त । रसिक श्रुति रहस्य विरक्त ।।
जो करें मान इन शुभ वचन । पाएं निर्मोचन वह यतिजन ।। (५८०)

भावार्थ: जिनके मन से दुर्भावनाएं नष्ट हो गईं हैं, वह शांत चित्त, श्रुति रहस्य प्रेमी, विरक्त मुमुक्ष इन वेदांत आदेशित वचनों को सुनें। जो इन शुभ वचनों का सम्मान करेंगे, वह योगी मोक्ष पाएंगे।

७५. ग्रन्थ प्रशंसा

संसाराध्वनि तापभानुकिरणप्रूद्भूतदाहव्यथाखिन्नानां
जलकाङ्क्षया मरुभुवि श्रान्त्या परिभ्राम्यताम् ।
अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं ब्रह्माद्वयं दर्शयन्त्येषा
शंकरभारती विजयते निर्वाणसन्दायिनी ॥ ५८१ ॥

भटकते थके मांदे भूजन।जो कर रहे खोज जल आर्तन।।
दुःखी व्यथित हेतु दाह द्युवन्।झेलते नाना कष्ट पथ भुवन।।
हेतु उन यह विलक्षण वचन।सम सोम उदधि ब्रह्म वर्पन्।।
दें यह सुख मोक्ष ज्ञान आत्मन।जब करें श्रवण पठन यतिजन।।
अवतार श्री भूतेश्वर भुवन।दिए शंकराचार्य प्रवचन।।
कर रहे जय जयकार सब महन।हुए हम कृतार्थ श्री भगवन।।(५८१)

भावार्थ: थके मांदे भटकते प्राणी जो मरुस्थल में जल खोज रहे हैं, सूर्य के तपन की व्यथा से दुःखी हैं, संसार मार्ग में अनेक कष्ट झेल रहे हैं, उनके लिए यह अद्वितीय वचन ब्रह्म स्वरुप सागर में अमृत समान हैं। यह सुख, मोक्ष और ब्रह्म ज्ञान देते हैं जब योगी इसका पठन और श्रवण करते हैं। शिव शंकर के अवतार शंकराचार्य ने यह प्रवचन दिए हैं। सब महात्मा जय जयकार कर रहे हैं कि हे ईश्वर, हम कृतार्थ हुए।

इति श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकर-
भगवत्कृतो विवेकचुणामणिः समाप्तः।।

श्री राम कथा संस्थान उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करता है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करता रहता है।

श्री राम कथा संस्थान
३५, मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com

कवि: डॉ यतेंद्र शर्मा

एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
Web https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com
WhatsApp: +61 410 641 543